सुशीला टाकभौरे के साहित्य में दलित महिला चेतना

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

की

पीएच. डी. (हिन्दी) उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध–प्रबंध

कला संकाय

शोधार्थी

सरिता

शोध निर्देशक

डॉ. रमेश चन्द मीणा

(एसोसिएट प्रोफेसर)

हिन्दी विभाग

राजकीय महाविद्यालय, बून्दी

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

2018

CERTIFICATE

I Feel great pleasure in certifying that the thesis entitled ''सुशीला टाकभौरे के साहित्य में दलित महिला चेतना'' by Sarita under my guidance. she has completed the following requirements as per Ph.D regulations of the university.

A. Course Work as per the University rules.
B. Residential requirements of the university. (200 Days)
C. Regularly submitted annual progress report
D. Presented his work in the departmental committee.
E. Published/accepted minimum of the research paper in a referred research journal.

I recommend the submission of thesis.

Date

(Dr. Ramesh Chand Meena)
Associate Professor
Department of Hindi
Govt. College Bundi (Raj)

प्राक्कथन

सुशीला टाकभौरे दलित साहित्य की महत्वपूर्ण कवयित्री, लेखिका एवं विचारक हैं। उनके लेखन में साहित्य और समाज के बुनियादी सरोकारों पर बल दिखाई पड़ता है। सुशीला जी दलित समाज व स्त्री का उत्थान चाहती हैं। इनके साहित्य में दलित समाज, दलित स्त्री व हाशिए पर रहें लोगों का मार्मिक यथार्थ दृष्टिगत होता है। सुशीला जी के विचारों में दलित व स्त्री की समानता का स्वर दिखाई देता है। यथार्थ को प्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्ति करने में सुशीला जी सिद्धहस्त हैं।

दलित व स्त्री विमर्श के साहित्यकारों में सुशीला जी ने अपनी उपस्थिति दर्ज करवायी है। सुशीला जी का व्यक्तित्व बहुआयामी प्रतीभा और विलक्षणा से युक्त है। इनकी रचनाओं में 'शिकंजे का दर्द', कविता संग्रह 'हमारे हिस्से का सूरज', 'तुमने उसे कब पहचाना', नाटक 'नंगा सत्य', 'रंग और व्यंग्य', कहानी संग्रह 'संघर्ष', 'टूटता वहम', 'अनुभूति के घेरे', उपन्यास 'तुम्हें बदलना ही होगा' आदि का विशेष महत्व है। सुशीला जी स्वयं दलित समाज से होने के कारण दलितों की व्यथा को नजदीक से देखा और भोगा है। यही कारण है कि इनके साहित्य में यथार्थ प्रकट हो सका है। सुशीला जी की यह विशेषता है कि वे दलित शोषित वर्ग प्रति सहानुभूति नहीं दिखाती बल्कि शोषण के विरूद्व आवाज उठाने की, संघर्ष करने की प्रेरणा देती है।

वर्तमान सन्दर्भ गद्य साहित्य का दौर है क्योंकि भागदौड़ भरी जिन्दगी में काव्य के भाव समझने के लिए लोगों के पास समय नहीं रहा। तो मैंने भी गद्य साहित्य को ही चुना है। मैनें 'सुशीला टाकभौरे के साहित्य में दलित महिला चेतना' शीर्षक से एक सारगर्भित शोध प्रस्तुत करने का श्रम किया है, जो अपनी महत्ता व मौलिकता को प्रकट कर विद्वतजनों के चिन्तन का विषय बनेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। यह शोध कार्य श्रद्धेय गुरूवर डॉ. रमेश चन्द मीणा के निर्देशन और आशीर्वाद का प्रतिफल है जिनके बिना मेरे लिए यह असंभव था। गुरूवर के सानिध्य का मुझे दुहरा लाभ प्राप्त हुआ, प्रथम आपकी गहन रूचि व सिद्व हस्तता। इसके फलस्वरूप मुझे दलित साहित्य की बारीकी व जटिलता को समझने में अकथनीय सहायता मिली गुरूवर ने न केवल अपना अमूल्य समय देकर मुझे प्रोत्साहित किया। अपितु मेरे इस लघु प्रयास का आलोचनात्मक दृष्टि से देखकर विद्वतापूर्ण सुझाव भी दिये। गुरूवर से प्राप्त शोध निर्देश के लाभ का वर्णन करना मेरे लिए दुष्कर है।

सुशीला जी के साहित्य में दलित चेतना मुझे प्रारम्भ से ही आकर्षित करती रही है प्रस्तुत शोध प्रबंध को हमने उपसंहार सहित नौ अध्यायों में विभक्त किया है और प्रत्येक अध्याय सुशीला जी के साहित्य का सटीक एवं तथ्यात्मक विशेषण प्रस्तुत कर दलित समाज में इनकी महत्ता को प्रकट करता है। सुशीला जी दलित साहित्य व महिला चेतना के कारण प्रसिद्ध है।

प्रथम अध्याय में सुशीला जी के व्यक्तित्व व कृतित्व की जानकारी का बड़ा रोचक अनुभव रहा, साथ ही दलित साहित्य के इतिहास व स्वरूप से रूबरू होने का भी अवसर प्राप्त हुआ। सुशीला जी की दृष्टि से दलित साहित्य को समझने में काफी सहायता मिली।

द्वितीय अध्याय में सुशीला जी के काव्य संग्रह में दलित चेतना, व महिला चेतना सम्बन्धी विचारों से अवगत होने का अवसर प्राप्त हुआ। तृतीय अध्याय सुशीला जी के उपन्यासों से सम्बधित है इनके उपन्यासों का मूल आधार जातिगत भेदभाव को मिटाना है 'नीला आकाश', 'तुम्हें बदलना ही होगा' उपन्यास में अन्तरजातीय विवाह पर जोर दिया गया है। चतुर्थ अध्याय में कथा साहित्य में दलितों के संघर्ष शोषण, रीतिरिवाज और दलित साहित्य के स्वरूप को समझने का परिश्रमी प्रयास है।

पंचम् अध्याय में सुशीला जी के नाटकों में दलित महिला चेतना के स्वरूप की जानकारी प्राप्त करते हुए नाटक में दलित चेतना के महत्व को समझना एक नया अनुभव रहा। दलित साहित्य में सुशीला जी के नाटक चेतना की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं इनके नाटकों में दलित पिछड़ों के सामाजिक, शैक्षणिक आर्थिक शोषण को दिखाने के लिए सफल दृश्य योजना व पात्र योजना की गई है। षष्टम् अध्याय में निबंधों द्वारा दलित महिला की समाज में उपस्थिति, उसका स्थान और दलित स्त्री दलित कब तक रहेगी आदि पर विचार किया गया है। दलित और स्त्री के विभिन्न पहलुओं की सुशीला जी के निबंधों में खोज की गई है।

सप्तम् अध्याय में दलित आत्मकथा सम्बन्धी तथ्यों का विश्लेषण किया गया है। आत्मकथा में अपने भोगे हुए यथार्थ के साथ अनुभूति की जानकारी की गई है। दलित स्त्री के के प्रति लेखिका की भावाभिव्यक्ति बड़ी मार्मिक बन पड़ी है। दलित आत्मकथाओं के तुलनात्मक अध्ययन से दलितों के प्रति सामाजिक रवैये को भी पहचान पाये हैं। अष्ठम् व अन्तिम अध्याय में यथार्थ के साहित्य में भाषा शैली का सन्दर्भ एक नया अनुभव बड़ी सटीकता, लाक्षणिकता, सपाटबयानी, बातचीत की सहजता व सुगमता का अद्भुत समावेश है। अतः कहा जा सकता है कि दलित साहित्य व स्त्री चेतना में सुशीला जी का प्रसंशनीय योगदान रहा है और नवम् उपसंहार से सम्बधित है जिसमें शोधसार निहित है।

प्रस्तुत शोध ग्रन्थ के निर्माण में गुरूवर की विद्वता, कुशल निर्देशन और समय–समय पर दी गई प्रेरणा व पितातुल्य स्नेह के प्रति मैं हृदय के अन्तस्तल से श्रद्धावनत हूँ। इस शोध कार्य हेतु यथावसर प्राप्त सुझावों के लिए मैं डॉ. विजयलक्ष्मी सालोदिया (विभागाध्यक्ष, हिन्दी)

डॉ. सीयाराम मीणा, डॉ. विकास शर्मा, डॉ. अनिता यादव, प्रो. गुरूमीत सिंह सोढ़ी के प्रति भी अपना आभार व्यक्त करना चाहूंगी जिन्होंने मेरा मार्गदर्शन किया है। साथ ही अपनी साथी डॉ. सत्यप्रकाश सैन को भी धन्यवाद देना चाहूंगी, जिन्होंने हमेशा मेरी सहायता की।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की पूर्णता एंव शिक्षाध्ययन हेतु अवसर उपलब्ध कराने में मेरे पिता श्री रामगोपाल बुनकर और स्नेहमयी माँ गीता देवी का प्रोत्साहन एवं आशीर्वचन मेरी प्रेरणा रहे हैं। पूज्य माता–पिता के साथ मेरे पति श्री ओमप्रकाश बुनकर की अहम् भूमिका रही है। इनके बिना यह शोध कार्य पूर्ण नहीं हो पाता। मेरे बेटे एनिश (अयान) का भी प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष सहयोग का अंश भी इसमें छिपा है साथ ही मेरे सास–ससुर, देवर–देवरानी, ननद और नन्ही परी (भविष्यका) का भी आभार व्यक्त करना चाहूंगी और छोटे भाई डॉ. जोगेन्द्र पाल के प्रति भी मैं अपना स्नेह अर्पित करती हूँ, जो इस शोध पूर्णता के प्रति सदैव प्रतिक्षारत दिखाई पड़ा। साथ ही बड़ी बहन अनिता छोटी बहन सरोज व उषा को भी याद करना चाहूंगी जिन्होंने मुझे स्नेहमय योगदान दिया। परिवारजनों के प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष सहयोग व प्रेरणा के लिए मैं उनके प्रति कृतज्ञ हूँ।

हिन्दी के उन सभी विद्वतजनों के प्रति भी मैं अपना आभार प्रकट करती हूँ, जिनकी अमूल्य कृतियों का मैनें इस शोध प्रबन्ध में उपयोग किया है। शोध कार्य हेतु उपलब्ध साहित्यिक सामग्री की दृष्टि से 'राजकीय महाविद्यालय बून्दी' के पुस्तकालयाध्यक्ष श्री रामस्वरूप मीणा के प्रति भी हार्दिक आभार प्रकट करना चाहूंगी जिन्होंने मुझे पुस्तकालय की सामग्री के उपयोग की अनुमति प्रदान की। मैं टंकण कर्ता श्री मनोज कुमार नैनावत (शाहपुरा) की भी आभारी हूँ। जिन्होंने निर्धारित समय में बड़ी कुशलता से टंकण कार्य सम्पन्न किया। शोध प्रबन्ध में कहीं किसी भी प्रकार की कोई त्रुटि हो तो विद्वतजन मुझे क्षमा करेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

अन्त में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के प्रति भी अपना विनम्र आभार करना चाहूंगी जिसमें आर्थिक अनुदान देकर मेरी बुनियादी आवश्यकता को पूरा किया है, जिसके बिना यह शोध संभव नहीं था।

शोधार्थी

सरिता

Condidate's Declaration

I, hereby, Certify that the work, Which is being Presented in the thesis, entitled ''सुशीला टाकभौरे के साहित्य में दलित महिला चेतना'' in partial fulfilment of the requirement for the award of the Degree of Doctor of philosophy, carried umder the supervision of Dr. Ramesh Chand Meena Associate Professor Department of Hindi, Government Collage Bundi (Raj.) and Sabmitted to the university of Kota, Kota represents my ideas in my on words and where others ideas or words have been included. I have adequately cited and referenced the original sourcas. The work prasented in the thesis has not been submitted elsewhere for the award of any other aegree of diploma from any Institutions. I also declare that I have adhered to all principals of academic hanesty and integrity and have not misrepresented or fabricated or falsified ant idea/data/Source in my Submission. I understand that any violation of the above will Cause for disciplinary action by the university and can also evoke penal action form the sources which have thus not been properly cited or from whom proper permission has not been takan when needed.

Date_____

Sarita
Research sholar

that is certify that te above statement made Sarita (enrolment No._____) is correct to the best of my knowledge.

Date_____

Dr. Ramesh Chand Meena
Associate Professor
Department of Hindi
Govt. College Bundi (Raj.)

विषय सूची–

प्राक्कथन– (i-iii)

प्रथम अध्याय– सुशीला टाकभौरे का व्यक्तित्व और कृतित्व–

1–14

(अ) व्यक्तित्व

(ब) कृतित्व

(स) महिला चेतना का उद्‌भव व विकास– स्त्री सशक्तिकरण से दलित व आदिवासी महिला

(द) सुशीला टाकभौरे के लेखन में महिला चेतना

द्वितीय अध्याय– सुशीला टाकभौरे के काव्य संग्रहों में दलित महिला चेतना– 42– 88

(अ) हमारे हिस्से का सूरज

(ब) यह तुम भी जानो

(स) तुमने उसे कब पहचाना

(द) स्वाति बूंद और खारे मोती

तृतीय अध्याय– सुशीला टाकभौरे के उपन्यासों में दलित महिला चेतना– 89–110

(अ) नीला आकाश

(ब) तुम्हें बदलना ही होगा

(स) वह लड़की

चतुर्थ अध्याय– सुशीला टाकभौरे के कथा साहित्य में दलित महिला चेतना–

111–128

(अ) 'अनुभूति के घेरे' कथा संग्रह

(ब) 'टूटता वहम्' कथा संग्रह

(स) 'संघर्ष' कहानी संग्रह में दलित महिला चेतना

पंचम् अध्याय– सुशीला टाकभौरे के नाटकों में दलित महिला चेतना– 129–141

(अ) नाटक 'रंग और व्यंग्य' में दलित महिला चेतना

(ब) नाटक 'नंगा सत्य' में दलित महिला चेतना

(स) नाटक 'व्हील चेयर' में दलित महिला चेतना

षष्ठम् अध्याय– सुशीला टाकभौरे के निबन्धों में दलित महिला चेतना– 142–156

(अ) दलित स्त्री और साहित्य लेखन

(ब) नारी जीवन दोहरी जिम्मेदारी कब तक

(स) नारी दलित क्यों और कब तक

(द) स्त्रियों के उत्थान में डॉ. अम्बेडकर का योगदान

सप्तम् अध्याय– सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा में दलित महिला चेतना– 157–188

(अ) 'शिकंजे का दर्द' की महिला चेतना

(ब) 'दोहरा अभिशाप' (कौशल्या बैसंत्री) से तुलना

(स) दलित आत्मकथाओं की महिला चेतना और 'शिकंजे का दर्द' का तुलनात्मक अध्ययन

अष्ठम् अध्याय– सुशीला टाकभौरे के साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र– 189–214

(अ) यथार्थ बोध

(ब) दलित विमर्श में सुशीला टाकभौरे का स्थान

(स) भाषा शैली और शिल्प

(द) सुशीला टाकभौरे के साहित्य के विविध आयाम

नवम् अध्याय– उपसंहार 215–220

शोध–सारांश–

साक्षात्कार– 221–226

परिशिष्ट– सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

आधार ग्रन्थ

सहायक ग्रन्थ

कोश ग्रन्थ

पत्र–पत्रिकाएं

प्रथम अध्याय

सुशीला टाकभौरे का व्यक्तित्व कृतित्व

1. सुशीला टाकभौरे का व्यक्तित्व और कृतित्व–

(अ) व्यक्तित्व–

डॉ. सुशीला टाकभौरे का जन्म मध्यप्रदेश के, जिला होशंगाबाद की, तहसील सिवनी मालवा के एक छोटे से गांव 'बानापुरा' में हुआ है। उनकी जन्म तिथि चार मार्च उन्नीस सौ चौवन (04.03.1954) है। उनकी माताजी के अनुसार उनकी सही जन्म तिथि 1954 के आषाढ़ माह की शुक्लपक्ष की नवमी है। स्कूल में नाम लिखवाते समय सही जन्म तारीख याद न रखने पर 4 मार्च लिखवा दी गई। जन्म तिथि और जन्म समय के अनुसार उनका नाम कुछ दूसरा बताया गया था। मगर उनके पिताजी को सुशीला नाम पंसद था। अतः सुशीला नाम रखा गया।

उनकी माताजी का नाम श्रीमती पन्ना घांवरी और पिताजी का नाम रामप्रसाद घांवरी है। पिताजी ज्यादा पढ़े लिखे नहीं थे बस अक्षरज्ञान–भाषाज्ञान था। माताजी अशिक्षित थी। वे कभी स्कूल नहीं गयी, फिर भी बच्चों की पढ़ाई के प्रति वे हमेशा सचेत रही। उनकी प्रेरणा से सभी बच्चे आगे पढ़ते रहे।

सुशीला की माताजी अपनी मां की एकमात्र जीवित सन्तान थी। विवाह के बाद वे अपनी ससुराल नेमावार (निमाड़) गांव में रही। पिता का पैतृक गांव हनूदा से आगे नेमावर गांव है। नेमावर गांव में प्रतिवर्ष नर्मदा की बाढ़ का प्रकोप गांव वालों पर होता है। प्रतिवर्ष के आर्थिक नुकसान और जीवन की अस्त–व्यस्तता को देखते हुए सुशीला जी के पिता रामप्रसाद जी पत्नी पन्नाबाई को साथ लेकर ससुराल बानापुरा में आ गए। यहां उन्हें रेलवे में नौकरी मिल गई। इस तरह श्रीमती पन्ना घांवरी पति और बच्चों के साथ अपनी मां के पड़ोस में अलग रहने लगी थी।

सुशीला जी चार भाई और तीन बहनें हैं। दो भाई और दो बहनें उनसे बड़े हैं। दो भाई छोटे हैं। बहनों में छोटी होने के कारण वे अपने माता–पिता, नानी और सभी भाई बहनों की लाड़ली रही। छः वर्ष की आयु होने पर उनका नाम स्कूल में लिखवाया गया।

उनकी प्राथमिक शिक्षा 'गंज प्राथमिक शाला' बानापुरा में हुई। 'उच्चतर प्राथमिक शाला' से आठवीं की बोर्ड परीक्षा उत्तीर्ण करके हाई स्कूल में आई। हाई स्कूल का नाम था– 'शासकीय नेहरू स्मारक उच्चतर माध्यमिक शाला'। उस समय वहां 10वीं एस.एस.सी और 11वीं एच.एस.सी थी। 11वीं उत्तीर्ण करके कॉलेज में पढ़ी। कॉलेज का नाम 'कुसुम महाविद्यालय'

सिवनी मालवा था। यह महाविद्यालय सागर विश्वविद्यालय से सम्बद्व है बानापुरा सिवनी रोड़ पर स्थित ''कुसुम महाविद्यालय' से सन् 1974 में उन्होंने बी.ए.की डिग्री प्राप्त की।

सुशीला जी वाल्मीकि जाति की हैं। वर्णवादी, जातिवादी, विषमतावादी समाज रचना के अनुसार उन्हें अछूत माना जाता था। उस समय दलित पिछड़ी जातियों के घर सवर्ण समाज की बस्तियों से दूर, गांव के बाहर रहते थे। सुशीला जी का घर भी गांव से अलग दूर था। वहां वाल्मीकि जाति के केवल दो घर थे।

1960–70 के बीच दलित समाज में लड़कियों का विवाह 15–16 वर्ष की आयु में कर दिया जाता था। जाति समाज के लोग उनका विवाह कम उम्र में जल्दी कर देने के लिए कहते थे। रिश्तेदारों की बातों और जाति समुदाय के रिवाज को देखते हुए, 11वीं के बाद उनकी पढ़ाई रोकने का विचार पिताजी ने किया था। तब सुशीला जी ने भूख हड़ताल कर दी थी। उनकी जिद्द को देखते हुए पिताजी ने उन्हें पढ़ने की अनुमति दे दी थी। मां के अनुरोध पर पिता और भाईयों ने उनका एडमिशन कॉलेज में करवाया था। घर के काम और छोटे भाई बहन को संभालने के कारण दोनों बड़ी बहनें ज्यादा नहीं पढ़ सकी थी। बड़ी बहन दूसरी कक्षा तक पढ़ी थी। उसके बाद की बहन चौथी तक पढ़ी थी। सुशीला जी अपनी जिद्द, विश्वास, लगन और मां के सहयोग से आगे तक पढ़ी। बी.ए. की परीक्षा के बाद उनका विवाह नागपुर निवासी श्री सुन्दरलाल के साथ सम्पन्न हुआ। वे नागपुर के 'प्रकाश हाईस्कूल' में शिक्षक थे। बी.ए. पास के बाद उनके पति ने टीचर ट्रेनिंग के लिए उनका एडमिशन नागपुर के बी.एड कॉलेज (वानखेड़े टीचर ट्रेनिंग कॉलेज) में किया। इस तरह उन्होंने 1975–76 में नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर से बी.एड. की परीक्षा उत्तीर्ण की और 1976 के दीक्षान्त समारोह में उपाधि प्राप्त की। 1977 में पति की स्कूल 'प्रकाश हाई स्कूल' में शिक्षक का पद खाली होने पर साक्षात्कार के बाद, वे वहां शिक्षिका के पद पर नियुक्त की गयी। जुलाई 1977 से जुलाई 1986 तक उन्होंने वहीं अध्यापन कार्य किया।

1986 में एम.ए. की डिग्री प्राप्त की। उसके बाद 'राष्ट्रसन्त तुकडोजी महाराज नागपुर विश्वविद्यालय नागपुर से पी.एच.डी. की उपाधि हेतु शोधकार्य शुरू कर दिया। इनके शोध का विषय था– 'अज्ञेय के कथा साहित्य में नारी'। शोधकार्य की मार्ग दर्शिका डॉ. योगेश्वरी शास्त्री, अध्ययन हिन्दी विभाग, एल.ए.डी. कॉलेज नागपुर थी। 1990 में शोधकार्य पूर्ण करके परीक्षण के लिए प्रस्तुत किया। नागपुर विश्वविद्यालय से उन्हें पीएचडी की उपाधि 1991 में प्रदान की गई। 1992 में नागपुर में दीक्षान्त समारोह में यह उपाधि उन्हें दी गई 1986 में कॉलेज में प्राध्यापिका पद पर कार्य शुरू किया। तब से मार्च 2012 तक कॉलेज में अध्यापन का कार्य कराती रही।

उनके साधारण रहन–सहन को देखकर कोई सहज ही यह नहीं कह सकेगा कि वे कॉलेज की प्राध्यापिका हैं। सादगी सरलता विनम्रता उनके स्वभाव में है। वे गंभीर चिन्तन–मनन

के साथ अध्ययन अध्यापन करते हुए, लेखन कार्य भी कर रही हैं। उनका आन्तरिक व्यक्तित्व चिन्तनशील है। इनको संगीत से भी बहुत प्रेम है। संगीत सुनकर उनका मन भावनाओं की गहराइयों में उतर जाता है। वे उत्तम संगीत की प्रशंसक और रसिक है। बचपन में इन्हें पेंटिंग का भी शौक था। सुविधाएं न मिल पाने के कारण वे संगीत और चित्रकला सीख नहीं पायी, फिर भी वे इन कलाओं में अपनी गहरी रूचि रखती हैं।

लेखन के प्रति रूचि बचपन से है। छठवीं–सातवीं कक्षा से ही कविता और कहानी पढ़ाए जाने पर वे उसके कथ्य और भाव में डूब जाती थी। साहित्य के प्रति उनकी गहरी रूचि का प्रमाण है कि 1968 में कक्षा आठवीं पढ़ते समय उन्होंने अपनी पहली कहानी लिखी थी। जिसे बाद में 'व्रत और व्रती शीर्षक से 'टूटता वहम्' कहानी संग्रह में छापा गया। 'सिलिया' कहानी 1971 में लिखी थी।

(ब) कृतित्व–

सुशीला टाकभौरे हिन्दी दलित साहित्य की अग्रणी महिला साहित्यकारों में से एक है। अनेक अवरोधों, बाधाओं चुनौतियों के बावजूद दलित साहित्य पर अपना लेखन जारी रखा। इनके साहित्य में दलित नारी मुक्ति के स्वर सुनने को मिलेंगे।

सुशीला टाकभौरे जी ने साहित्य की विभिन्न विधाओं जैसे कविता कहानी, नाटक, उपन्यास, आत्मकथा, निबन्ध, वैचारिक लेखों के माध्यम से स्वयं को अभिव्यक्त किया है। 'स्वाति बूंद और खारे मोती, 'यह तुम भी जानो' 'हमारे हिस्से का सुरज' 'तुमने उसे कब पहचाना' (काव्य संग्रह) परिवर्तन जरूरी है। (वैचारिक लेख) 'हाशिए का विमर्श' (निबन्ध) 'वह लड़की' 'तुम्हें बदलना ही होगा' 'नीला आकाश' (उपन्यास) 'शिकंजे का दर्द' (आत्मकथा) 'हिन्दी साहित्य के इतिहास में नारी एक नजर' (लेख) 'दलित साहित्यः एक आलोचना दृष्टि' (आलोचना पुस्तक) 'मेरे साक्षात्कार' 'कैदी न. 307' इत्यादि इनकी प्रमुख व प्रसिद्ध रचनाएं हैं।

आपका प्रारम्भिक लेखन संघर्ष भरा रहा। वे फुले और अम्बेडकरवादी अर्थात बहुजन दलित साहित्य से जुड़ी रही है। साहित्य में उनकी पहचान कवयित्री व कहानीकार के रूप में होती है। सुशीला जी आठवी कक्षा में पढ़ती थी तब उन्होंने अपने छोटे भाई मोहन के द्वारा कृष्ण जन्माष्टमी का व्रत रखने पर, एक कहानी लिखी– 'व्रत और व्रती' चूंकी यह कहानी उनके कहानी संग्रह 'अनुभूति के घेरे' (1997) में प्रकाशित है। यह संग्रह आपसी प्रेम से ओतप्रोत है और ये भी एहसास कराती है प्रेम पाने का नहीं त्याग की भावना का नाम है। कहानी 'भूख' और 'दिल की लगी' यही दर्शाती हैं।

1997 में उनका दुसरा कहानी संग्रह 'टूटता वहम्' प्रकाशित हुआ। इस कहानी संग्रह में 'मन्दिर का लाभ' कहानी अंधविश्वास को दर्शाती है 'सिलिया' 'मेरा समाज' 'मुझे जवाब देना है' 'झरोखे' 'मेरा बचपन' इत्यादि कहानियों का स्वर जातिवाद और स्त्रीवादी विचार विमर्श का है। इनका तीसरा कहानी संग्रह 'संघर्ष' (2006) में प्रकाशित हुआ। इसकी कहानियां दलितों के संघर्ष से भरी हुई है। इन कहानियों में बदले की भावना भी है। कहानी 'संघर्ष' का शंकर और 'बदला' का कल्लू सवर्णों के व्यवहार का बदला मार–पिटाई से लेते हैं। 'जन्मदिन कहानी में अम्बेडकरवादी विचार धारा का विस्तार है।

दलित और श्रमिक वर्ग की उपेक्षा के प्रश्न और नारी का विद्रोह 'स्वाति बूंद और खारे मोती' जैसे काव्य संग्रह में मुखरित हुए हैं और यह काव्य संग्रह उनका पहला काव्य संग्रह है, जो सन् 1993 में प्रकाशित हुआ। यह दलित स्त्री लेखन में पहला काव्य है इस संग्रह में 61 कविताएं संग्रहीत हैं। इस काव्य संग्रह की कुछ कविताएं जैसे– 'धर्म' 'विद्रोहिणी' 'उम्मीद' 'दस्तक' कड़वी बात' 'जरिया' 'पहचान' अपनी राह इत्यादि में स्त्री प्रतिरोध दिखाई देता है।

सुशीला टाकभौरे का दूसरा काव्य संग्रह 1994 में प्रकाशित हुआ 'यह तुम भी जानों। यह काव्य दलित और नारीवादी है। इस काव्य संग्रह पर अपना मंतव्य प्रकट करते हुए डॉ. सरजूप्रसाद मिश्र ने लिखा है कि श्रीमती टाकभौरे के इस काव्य संग्रह में प्रणय, श्रृंगार और प्रकृति अनुपस्थित है। अक्टूबर 1993 में नागपुर में आयोजित 'हिन्दी दलित लेखक साहित्य सम्मेलन' के बाद उनकी सोच में काफी परिवर्तन आया। यह उनके काव्य 'यह तुम भी जानो' से स्पष्ट होता है। 'यह तुम भी जानों' सुशीला जी के अम्बेडकरवादी सोच और दलित सरोकारों का पहला काव्य संग्रह है। इसमें संकलित कविताओं में उन्होंने 'स्वयं को पहचानो' 'युग चेतना' नया इतिहास' 'यह तो शर्म की बात है, 'यह कौनसा समाज है, 'मील का पत्थर' वाल्मीकि आदि कविताओं के द्वारा दलित समाज की सोई हुई चेतना को जगाया है।

सुशीला जी का नया काव्य संग्रह 'हमारे हिस्से का सूरज' (2005) है। नये काव्य संग्रह में जो कविताएं हैं। उनमें सुशीला जी की दलितों के अतीत और वर्तमान की गहरी समझ की अभिव्यक्तियां मिली हैं। इस काव्य संग्रह की कविता 'सच' 'अभावों की दुनिया' 'भ्रमजाल' 'यातना के स्वर' 'हम दलित' 'जयभीम' आदि में दलितों, पिछड़ों का ध्यानाकर्षण किया है। दलितों को बुद्व अम्बेडकर, फूले आदि के बारे में जानकारी मिली है।

हाशिए का विमर्श' (परिवर्तन जरूरी है– 1997) इनका निबन्ध संग्रह है। इस निबन्ध संग्रह में सुशीला जी वाल्मीकि जाति की जीवन शैली से दुःखी है' अफसोस इस बात का है कि युवा पीढ़ी अपनी ताकत से बेखबर है वह चुपचाप पुरानी पीढ़ी के संरक्षण में उनके बताए मार्ग पर अंधों के समान चली जा रही है। इस तरह सदियां बीत गई।

सुशीला जी का जितना अनुराग अपने सामाजिक सरोकारों को लेकर है उतनी ही निष्ठा नारी विमर्श के प्रति भी रही है। इसका आभास इसी बात से होता है कि उन्होंने इसके लिए अलग से दो निबंधकीय पुस्तकें लिखी और प्रकाशित कीः–

1. हिन्दी साहित्य के इतिहास में नारी।
2. भारतीय नारीः समाज और साहित्य के ऐतिहासिक संदर्भों में।

इसी तरह इनके नाटक संग्रह भी दलितों को जाग्रत करने वाले है। 'नंगा सत्य' (2007) 'जीवन के रंग' रंग और व्यंग' नाटक संग्रह में समाज की पुरानी परम्पराओं एवं पोंगा पंडितों के विरूद्ध आवाज उठाई है। इन नाटकों में सामाजिक विद्रुपताओं, विषतमाओं, दलितों के शोषण व अत्याचार समाज में फैला पाखंड का जमकर विरोध हुआ है।

सुशीला जी के 'नीला आकाश' 'वह लड़की' 'तुम्हें बदलना ही होगा' उपन्यास भी समाज को एक नई दिशा देते नजर आते हैं। इन उपन्यासों में अम्बेडकरवारी विचारधारा को अपनाकर दलित सदियों के दलन से उद्धार करते नजर आते हैं 'नीला आकाश' दलितों की आशाओं और एकता का उपन्यास है 'तुम्हें बदलना ही होगा' उपन्यास में जातिवाद को जड़ से मिटाने के लिए अंतरजातीय विवाह को जरूरी बताया है।

सुशीला जी की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' (2011) में प्रकाशित हुई। इस आत्मकथा में इनके जीवन के कड़े अनुभव का विवरण हैं। 'शिकंजे का दर्द' में संताप है दलित होने का, स्त्री होने का। इसमें शोषित, पीड़ित, अपमानित, अभावग्रस्त दलित जीवन की व्यथा है। दलित साहित्य एक आलोचना दृष्टि (2016) पुस्तक में आलोचनात्मक लेख लिखे गये हैं। 'मेरे साक्षात्कार' (2016) में संकलित साक्षाकार दलित एवं स्त्री विमर्श से साक्षात्कार है। विशेष रूप से सुशीला टाकभौरे के जीवन लेखन दलित समाज और दलित स्त्री को केन्द्र में रखकर किए गए विचार विमर्श और बातचीत का निष्कर्ष हैं।

साहित्य की विभिन्न विधाओं में सुशीला जी लिख रही हैं। उनका साहित्य कथ्य और शिल्प की दृष्टि से मंजा हुआ हैं। दलित एवं स्त्री विमर्श पर उन्होंने पर्याप्त मात्रा में लिखा है ऐसा लगता है एक उद्देश्य को सामने रखकर उन्होंने पात्र व परिस्थितियों को गढ़ा है। सुशीला जी की सभी रचनाएं चाहे वह दलित विमर्श से सम्बधित हो या नारी विमर्श से। उच्च आदर्शों एवं समतामूलक समाज के गठन से संबंधित है।

अन्त में कहा जा सकता है कि महिला दलित लेखकों में सुशीला टाकभौरे जी निश्चित ही एक बड़े स्थान की अधिकारी है एवं भविष्य में भी वे अपनी कलम से दलित समाज का मार्ग प्रशस्त करती रहेंगी।

(स) महिला चेतना का उद्‌भव व विकास–स्त्री सशक्तिकरण से दलित व आदिवासी महिला–

प्राचीन समय से ही स्त्री को हाशिये पर धकेला जा रहा हैं। दुर्भाग्य की बात ये है कि भारत जैसे देश में जहां स्त्रियों को देवी का दर्जा दिया गया है। आज भी स्त्रियां पुरूष के बन्धनों में जकड़ी हुई हैं। नारी आर्थिक एवं शैक्षिक रूप से कितना भी सक्षम क्यों न हो, उन्हें किसी न किसी रूप में पुरूष मानसिकता का शिकार होना पड़ता है।

भारतीय नारी का कल जो स्वरूप था वह आदेशों और विश्वास से लदा था। पौराणिक मान्यताएं स्त्री को स्वतन्त्र सत्ता प्रदान नहीं करती अपितु उसे जन्म जन्मान्तर तक गुलाम बनने के लिए बाध्य करती थी। इस कारण कुंठा और घुटन की परिस्थितियों में जीवन बिताने को वह बाध्य हो गयी थी। नारी उपयोग की वस्तु नहीं है, यह सत्य पुरूष को स्वीकार करना होगा। स्त्री मुक्ति, स्त्री चेतना और शिक्षित स्त्री ये सब वास्तव में सशक्तिकरण क्या है। निर्बल का सबल बनने का प्रयास सशक्तिकरण है या शोषण के विरूद्ध आवाज उठाना सशक्तिकरण है। महिला सशक्तिकरण का अर्थ है महिला को आत्मसम्मान, आत्मविश्वास प्रदान करना। यदि कोई महिला अपने अधिकारों के बारे में सजग है, यदि उसका आत्मसम्मान बढ़ा हुआ है तो वह सशक्त है, समर्थ है।

वर्तमान समय में महिला सशक्तिकरण पर विभिन्न विचार मिले हैं। परन्तु सशक्तिकरण से समाज में एक जागृति देखने को मिलती है। लेकिन इन सब के बावजूद महिलाएं सबसे अधिक उपेक्षा की शिकार है और भय के साये में हैं। महिला सशक्तिकरण के संबंध में परिभाषा विस्तृत है अपने हितों के प्रति जागरूक हो तथा वे किस प्रकार अपने हितों को दूसरों के हितों के साथ जोड़ती है ताकि यह प्रक्रिया अपने तथा दूसरों के ज्ञान पर आधारित हो।

गांधीजी के मानस पटल पर यह बात स्पष्ट थी कि ''महिला सशक्तिकरण केवल नैतिक अनिवार्यता नहीं है बल्कि लोकतांत्रिक परमम्पराओं को सुदृढ़ करने तथा अन्याय व उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष करने की पूर्ण शर्त भी हैं। गांधीजी ने जिस बात का स्वप्न देखा था, वह अधिकारों, समान अवसर और समान भागीदारी वाली अधिक न्यायोचित और मानवीय दुनिया की दिशा में की जा रही यात्रा का एक कदम भर है।''[1] क्योंकि जब किसी महिला का विकास होता है तो उसके परिवार–समाज का भी विकास होता है।

महिला सशक्तिकरण की शुरूआत संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 8 मार्च 1975 को अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस से मानी जाती है। महिला सशक्तिकरण की पहल 1985 में महिला अर्न्तराष्ट्रीय सम्मेलन नैरोबी में की गई। भारत सरकार ने समाज में लिंग आधारित भिन्नताओं को दूर करने

के लिए एक महान नीति महिला कल्याण नीति 1953 में अपनाई। महिला सशक्तिकरण का राष्ट्रीय उद्देश्य महिलाओं की प्रगति और उनमें आत्मविश्वास का संचार करना है।

लेकिन पुरुष अपने पुरुषत्व को कायम रख महिलाओं को हमेशा अपने से कम होने का अहसास दिलाता आया है। वह कभी उसके सम्मान के साथ खिलवाड़ करता है इज्जत से खेलता है तो कभी उस पर हाथ उठाता है। समय बदल जाने के बाद भी पुरुष आज भी महिलाओं को बराबरी का दर्जा देना पसंद नहीं करते, उसकी मानसिकता आज भी पहले जैसी ही है।

आज के माहौल में महिला सशक्तिकरण की बात करने से पहले हमें इस सवाल का जवाब ढूंढ़ना जरुरी है कि क्या वास्तव में महिलाएं कमजोर है? कहीं ऐसा तो नहीं कि अनजाने में या स्वार्थ के लिए उन्हें किसी साजिश के तहत कमजोर दिखाने की कोशिश हो रही है। इतिहास गवाह है कि मानव सभ्यता के विकास के साथ–साथ ताकतवर को ही अधिकार मिला है। धीरे–धीरे इसी सिद्धान्त को अपनाकर पुरुष जाति ने अपने शारीरिक बनावट का फायदा उठाते हुए महिलाओं को निम्न स्तर पर ला कर खड़ा कर दिया और औरतों ने भी उसे अपना नसीब व नियति समझकर स्वीकार कर लिया। भारत में ही नहीं दुनिया भर में महिलाओं के खिलाफ भेदभाव और शोषण की नीतियों का सदियों से ही बोलबाला रहा है। इतना जरूर कह सकते हैं कि मापदंड व तरीके अलग–अलग रहे हैं।

सही मायने में देखा जाये तो महिला सशक्तिकरण का अर्थ यही है कि महिला को आत्म सम्मान देना और आत्मनिर्भर बनाना। ताकि वो अपने अस्तित्व की रक्षा कर सके। नारी सशक्तिकरण का मतलब नारी को सशक्त करना नहीं है। नारी सशक्तिकरण का मतलब प्रसिद्धि भी नहीं ये सब महज लोगों के दिमाग में बसी भ्रांत्तियां हैं। नारी सशक्तिकरण का बहुत सीधा अर्थ है कि नारी और पुरुष इस दुनिया में बराबर हैं और ये बराबरी उन्हें प्रकृति से मिली है। महिला सशक्तिकरण के तहत कोई भी नारी किसी भी पुरुष से कुछ नहीं चाहती और ना समाज से कुछ चाहती है केवल वह अस्वीकार करती है कि पुरुष उसका मालिक है।

''महिला सशक्तिकरण एक गतिशील व बहुपक्षीय प्रक्रिया है जिसके द्वारा महिलाओं के जीवन के प्रत्येक पक्ष में अपनी शक्ति व पहचान की अनुभूति होती है।''[2]

महिला सशक्तिकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जहां महिलाएं अपने स्वयं के लिए समय तथा स्थान खोजती हैं। सशक्तिकरण ने महिलाओं को इस योग्य बनाया है कि महिलाएं अपनी पुरानी समस्याओं का नए तरीके से समाधान कर सके।

अतः कहा जा सकता है कि सशक्तिकरण एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा महिलाओं को बराबरी एवं समानता का दर्जा मिले। इसके लिए यह आवश्यक है कि समाज की मानसिकता में परिवर्तन आए व पुरुष वर्ग आगे आकर इस कार्य में महिलाओं की मदद करें।

उनके प्रति अपनी जिम्मेदारी को समझे मानव जीवन के प्रारम्भ में स्त्री–पुरुष की क्षमताएं शक्तियाँ एवं गुण एक दूसरे के पूरक रहे हैं। किन्तु सभ्यता के विकास के साथ–साथ 'पुरुष प्रधानता' बेहद जटिल होती गई है।

भारत में महिलाओं का इतिहास काफी उतार–चढ़ाव का इतिहास रहा है। प्राचीनकाल में स्त्रियों को सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। समाज में उनका विशिष्ट स्थान था। वैदिक काल में महिलाओं को जीवन के प्रत्येक स्तर पर पुरुषों के समान अधिकार और स्वतन्त्रताएं प्राप्त थी। स्त्री पर मनु की यह पंक्ति अक्सर उदाहरणार्थ प्रस्तुत की जाती हैं–

''यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवताः
यत्रैतास्तु न पूज्यते र्सवास्त जाफलाः क्रिया।''

महिला सशक्तिकरण के लिए काफी प्रयास किए जा रहे हैं। महानगरों में महिलाओं की स्थिति को देखकर लगता है कि महिलाएं काफी विकसित हो गयी है। लेकिन वास्तविकता क्या है, यह सभी जानते है। सवाल यह है कि क्यों महिलाएं आगे नहीं बढ़ पा रही हैं, क्यों वे समाज और राजनीति में स्वतंत्र अस्तित्व नहीं बना पा रही हैं।

लेकिन यह सच नहीं है। वास्तव में आम महिलाओं के लिए विकास अब भी बहुत दूर है। दूर दराज के ग्रामीण इलाकों की महिलाओं की स्थिति तो और भी खराब है। महिलाओं की इस बदहाल स्थिति का बस एक ही कारण है शिक्षा की कमी, जागरूकता की कमी। महिला सशक्तिकरण की दिशा में सबसे बड़ा रोड़ा महिलाओं में शिक्षा और जागरूकता की कमी तो है ही कुपढ़ता और अशिक्षा मुख्य कारक है। यदि महिलाओं को शिक्षित बना दिया जाए तो वे सामाजिक और राजनैतिक अधिकारों के प्रति जागरूक हो जायेगी और फिर ऐसी जागरूक महिलाओं को दबाना किसी के लिए भी संभव नहीं रह पायेगा। आज अगर औरतें समाज और राजनीति में सबसे पिछले पायदान पर खड़ी दिखायी देती हैं तो इसका सबसे प्रमुख कारण है औरतों के बीच शिक्षा की समुचित व्यवस्था का न होना है।

''आज के आधुनिक युग में महिला शिक्षा का अत्यन्त महत्त्व है लेकिन फिर भी हमारे देश में महिला शिक्षा की स्थिति बेहद खराब है भारतीय महिलाओं के बीच शिक्षा का बेहद अभाव हैं जिस कारण वे लगातार हर क्षेत्र में पिछड़ती जा रही हैं। शिक्षा के बिना न तो महिला जागरूक हो सकती है और न ही सशक्त।''[3]

''शिक्षा एक ऐसा सशक्त उपकरण है जो नई समाज व्यवस्था का सृजन करने के लिए महिलाओं को सक्षम बनाता है।''[4]

महिलाओं में शिक्षा की कमी के कारण ही उनके साथ अनेक प्रकार के अत्याचार और दुर्व्यवहार होते हैं। महिलाओं को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करने के लिए भी शिक्षा की महती आवश्यकता है। यद्यपि भारतीय संविधान और कानून नारी शक्ति को समान अधिकार

प्रदान करते हैं। किन्तु अधिकांश महिलाओं की स्थिति आज भी शोचनीय बनी हुई है। आज भी हम सदियों पुरानी उन सड़ी–गली रूढ़ियों एवं परम्पराओं में जी रहे हैं। जो नारी की ही प्रगति में नही वरन् सम्पूर्ण देश के विकास में बाधक होने के साथ–साथ घातक भी सिद्ध हो रही हैं।

''स्त्रियों के अधिकारों के सवाल पर मैं किसी तरह का समझौता नहीं कर सकता। मेरी राय में उन पर ऐसा कोई कानूनी प्रतिबन्ध नहीं लगाना चाहिए जो पुरुषों पर न लगाया गया हो। पुत्रों और कन्याओं में किसी तरह का भेद नहीं होना चाहिए। उनके साथ पूरी समानता होनी चाहिए।''[5]

विश्व की आबादी का एक चौथाई ग्रामीण महिलाएं एवं बलिकाएं हैं। लेकिन वो सभी आर्थिक सामाजिक ओर राजनैतिक सूचकांक के निम्नतम स्तर पर है। आय शिक्षा, स्वास्थ्य आदि से बेहद कमजोर है। ग्रामीण स्त्रियां तो अभी भी शोषण को ही अपना भाग्य मानकर जीती है और भाग्य मान कर ही मर भी जाती हैं। शहरों में भी आजाद होने की असफल कोशिशों के चलते आजकल जान देने वाली, रेल की पटरियों पर कट कर मरने वाली, आग से जल जाने वाली स्त्रियों की संख्या तेजी से बढ़ी है। आज के समाज में समानता के बर्ताव को विकसित करना बेहद जरूरी है।

महिला सशक्तिकरण के लिए शिक्षा बेहद आवश्यक है इसलिए शिक्षा के कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। भारत ही नहीं समूची दुनिया में आज महिला सशक्तिकरण का दौर है। इस विषय पर सेमीनार हो रहे हैं। कार्यशालाएं आयोजित की जा रही हैं। अब सवाल यह है कि महिला सशक्तिकरण के मामले में हम कितना सफल हुए हैं। क्या हम महिला सशक्तिकरण के अर्थ को समझ पाएं।

दुर्भाग्य की बात हैं नारी सशक्तिकरण की बातें और योजनाएं केवल शहरों तक ही सिमटकर रह गई हैं। शिक्षा स्त्री सशक्तिकरण के लिए बेहद जरूरी कारक रहा है। किन्तु शहरी स्त्री और ग्रामीण स्त्री की शिक्षा में रात दिन का अन्तर रहा है। इस बिन्दू पर विमर्श करते समय इस अन्तर को नजर अंदाज नहीं किया जाना चाहिए। मानाकि इक्कीसवीं सदी में शिक्षा का औसत बढ़ा है पर ग्रामीण स्त्री शहरी स्त्री की तुलना में बहुत पीछे ठहरती है। न केवल ग्रामीण अपितू जातीय ढांचे में झांक कर देखा जाए तो दलित और आदिवासी महिला की स्थिति बेहद चिंतनीय ठहरती है। दलित प्ररिप्रेक्ष्य से देखने पर स्त्री सशक्तिकरण के मायने ही बदल जाते है।

एक ओर बड़े शहरों और मेट्रो सिटी में रहने वाली महिलाएं शिक्षित व स्वतंत्र सोच वाली महिलाएं हैं जो पुरुषों के अत्याचारों को किसी भी रूप में सहन नहीं करना चाहती। वहीं दूसरी तरफ गांवों में रहने वाली महिलाएं हैं जो न तो अपने अधिकारों को जानती हैं और ना

ही उन्हें अपनाती हैं। वे अत्याचारों और सामाजिक बंधनों की इतनी आदी हो चुकी हैं कि वे उसी को अपनी नियति समझती हैं।

राष्ट्रीय महिला आयोग की महिला सशक्तिकरण के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इसके गठन के पश्चात से महिलाओं की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक वैधानिक प्रत्येक क्षेत्र में भागीदारी बढ़ रही हैं। महिलाएं पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने में सफल रही है। उनकी जागरूकता का स्तर विस्तृत हुआ है। महिला आज अपनी एक खास पहचान बनाने में कायम रही हैं।

''भारतीय नारी के परिप्रेक्ष में 20 वीं सदी के आखिरी पांच दशक खास महत्त्व रखते हैं। शिक्षा के प्रसार के साथ ही व्यापक साक्षरता आन्दोलन, सूचना प्रौद्योगिकी और संचार माध्यमों में आयी क्रान्ति के तहत भारतीय नारी समाज में भी सजगता आयी।''[6]

महिला सशक्तिकरण की इतनी उपलब्धियों के बावजूद हमारे इतने बड़े देश में महिलाओं का प्रतिशत ज्यादा नहीं है। भारत की आम महिलाओं का बहुसंख्यक हिस्सा आज भी अपने को पुरुष वर्ग की दासता से मुक्त नहीं कर पाता है।

गांधीजी ने कहा था कि–''महिलाओं के अधिकारों के विषय में समझौता नहीं कर सकता। शारीरिक बनावट और लिंग भेद पुरुष और महिलाओं के कार्यों में अन्तर को दर्शाता है। उनके स्तर के अन्तर को नहीं। महिला पुरुष की पूरक है उनसे कम नहीं।''[7]

राष्ट्रीय महिला आयोग की महिला सशक्तिकरण के संदर्भ में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसके गठन के पश्चात से महिलाओं की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक वैधानिक प्रत्येक क्षेत्र में भागीदारी बढ़ रही है। महिलाएं पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने में सफल रही है। उनकी जागरूकता का स्तर विस्तृत हुआ हैं। महिला आज अपनी एक खास पहचान बनाने में कायम रही हैं।

आदिकाल से लेकर आज तक नारी को पुरुषवादी मानसिकता से दो चार होना पड़ा हैं। हर युग में पुरुष के वर्चस्व की कीमत औरतों ने चुकाई है या उसे चुकाने पर मजबूर होना पड़ा हैं। यही वजह थी कि ढोल गंवार शुद्र, पशु, नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी और नारी तेरी यही कहानी आंचल में दूध आंखों में पानी जैसी रचनायें रची गई। ये साबित करने के लिए काफी है कि हमारे देश में देवी समान पूजनीय नारी के आदर और सम्मान में काफी हद तक पतन हुआ हैं।

आज नारी विमर्श पर महिला चेतना से सम्पन्न हिन्दी उपन्यास लिखे जा रहे हैं। जिसमें महिला चेतना की आत्मा, स्व और अहं ध्वनित है। वास्तव में चेतना का अर्थ विचारों अनुभूतियों, संकल्पों की आनुशांगिक दशा, स्थिति से है। जिसका संबंध नारी की स्वयं की पहचान या किसी भी स्तर पर विषय अनुभवों के संगठित स्वरूप से होता हैं।

नारी विमर्श और चेतना के विकास का ही परिणाम है कि नारी आज सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व्यावसायिक और वैज्ञानिक क्षेत्र में पुरुष के समान ही नहीं बल्कि पुरुष से आगे बढ़कर अपनी सेवाएं दे रही हैं। नारी चेतना का ही चरम है जहां वह यह कहती है– उन औरतों में नही हूँ। जो अपने व्यक्तित्व का बलिदान करती हैं जिनकी कोई मर्यादा और शील नहीं होता है। मैं न उनमें हूँ, जिनके चरित्र पर पुरुष की हवा लगते ही खराब हो जाते है न पति की गुलामी मानती हूँ। मुझमें आत्मनिर्भरता भी है और आत्मविश्वास भी। नारी चेतना ने नारी मुक्ति आन्दोलन को संजग और सचेत बना दिया है।

''नारी मुक्ति आन्दोलन के मूल में नारी मुक्ति चेतना है जिसने 17–18 वीं. सदी में (अमेरिका) मुक्ति आन्दोलन को जन्म दिया है और सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित किया है।''[8] अर्थव्यवस्था का असमान स्तर नारी चेतना के स्तर को बदल देता है– ''भारत के शहरों में शायद यही आर्थिक अधीनता और मुसीबत की जड़ मानी जाती है।''[9]

वर्तमान देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक विकास को गति देने में नारी का भी अहम स्थान है। तीव्र गति से विकास में सहायक आज की नारी वैदिक कालीन नारी के समकक्ष पुनः आ खड़ी है। नारी चेतना में भरपूर आत्मविश्वास के साथ नारी, अस्मिता की पहचान के लिए निरंतर संघर्षरत है।

''सामाजिक व सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य के कारण पाश्चात्य जगत के नारी मुक्ति आन्दोलन से इसमें मूलभूत अंतर यह रहा है कि यह लड़ाई भारतीय नारी द्वारा अपने व्यक्तित्व के लिए नहीं बल्कि सामाजिक उत्थान के लिए विविध समाज सुधारकों द्वारा लड़ी गई''[10]

आदिमकालीन नारी से लेकर वर्तमान कालीन नारी की सामाजिक यात्रा अत्यन्त कठिन व बंधनों के जकड़न से युक्त बर्बर मर्यादाओं अत्याचारों और शोषण से युक्त रही है। विभिन्न पड़ाव से गुजरता नारी चेतना आन्दोलन 21वीं सदी तक आ पहुँचा है। नारी चेतना संकल्पनाओं के साथ विकसित हुई पुरातन के साये में नवीनता को अपनाना ही नवीन चेतना के रुप में नारी मुक्ति चेतना बनी।

''चयन और निर्णय की स्वतन्त्रता व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं मनोविज्ञान के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।''[11]

कविताओं में सर्वप्रथम नारी चेतना और समानता का पहला प्रयास सूरदास ने अपने काव्य के माध्यम से किया। ''सूरदास ने अपने काव्य में गोपियों को एक वस्तु के स्थान पर व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है। नारी के स्वाभिमान और गरिमा की रक्षा जिस प्रकार सूरदास ने की है। ऐसे उदाहरण भारतीय साहित्य में बहुत कम मिलते हैं। वे पुरुष के समान ही सामाजिक क्रियाकलापों में हिस्सा लेता है। मेरी दृष्टि में नारी मुक्ति और समानता का यह पहला प्रयास है।''[12]

स्त्री चेतना में महिला रचनाकारों के कारण स्त्री हितों एवं स्त्री मुक्ति को बल मिला है। मीरा नारी मुक्ति का प्रतीक बन कर सामने आई। एक सांमती परिवार में जन्म लेने के बाद भी मीरा ने सांमती नैतिकता और नारी को दासी समझने वाली संस्कृति को सिद्धान्त और व्यवहार में चुनौती दी। मीरा का साहित्य स्त्री साहित्य के शीर्ष पर है। मीरा ने अपने साहित्य से ये सिद्ध कर दिया कि स्त्री हमेशा पुरुष की सहयोगी और साथी के रूप में महत्वपूर्ण थी और है। मीरा का साहित्य नारी चेतना का सबसे जीवन्त उदाहरण हैं।

''हकीकत में स्त्री एक जैसी कभी नहीं रही। एक संस्कृति की स्त्रियों में विभिन्नताएं मिलेगी, एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति के बीच में भी भिन्नता को सहज देखा जा सकता है।''[13]

साहित्यिक विधाओं यथा कविता, उपन्यास, कहानी में नारी संघर्ष का जीवत चित्रण देखने को मिलता है। नारी को वस्तु न मानकर, एक व्यक्तिगत रूप में उसकी चेतना के स्तरों का चित्रण–महिला साहित्यकारों द्वारा किया गया। नारी चेतना का चित्र जीवन तथा साहित्य दोनों में किया गया। धर्म के नाम पर नारी कभी देवदासी तो कभी नगर वधु बनकर प्रताड़ित होती है, कभी गणिका तो कहीं कुटनी बनाकर नारीत्व को निंदनीय बनाया गया। नारी और दलित की श्रेणी को एक समान माना गया। भारतीय इतिहास इस बात का गवाह है। नारी विषयक सिद्धान्तों में नारी को देवी का दर्जा दिया गया, पर स्थिति दासी की ही रही। दास और नारी की स्थिति एक समान थी। नारी पुरुष की अनुचर थी पुरुष उसका स्वामी था। लेकिन नारी चेतना और संघर्ष से सब कुछ बदल रहा है।

आधुनिक काल में नारी के प्रति पुरुष के भाव बदल गये हैं और नारी ने भी अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा करते हुए अपने अधिकारों की मांग की है। शिक्षित होने के साथ ही नारी ने यह जाना है कि वह नारी है और नारी होते हुए उसे पुरुष के साथ खड़ा होने को अधिकार है क्योंकि वह सक्षम है। नारी को पुरुष बनकर पुरुष के समकक्ष खड़ा नहीं होना है बल्कि पूरक शक्ति के रूप में उभरना हैं।

महिला चेतना पर कुछ वर्षों से बहुत चर्चा हो रही है इस पर बहुत कुछ कहा और लिखा जा चुका है। स्त्री चेतना और दलित स्त्री सबलीकरण जैसे विषय 21वीं शताब्दी के प्रमुख विषय हैं। जिन पर लगातार आन्दोलन से जुड़ी सक्रीय कार्यकर्ता महिलाओं ने भी स्त्रियों की स्थिति उनके शोषण और उसके कारणों के विषय पर बहुत कुछ कहा है। यह सब सुन कर पढ़ कर और कुछ कहने पर ये सब बातें छोटी लगती है। फिर भी समाज में पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की स्थिति आज भी कमजोर है। स्त्री पुरुष संख्या के अनुपात में स्त्रियों की संख्या घट रही है। अगर सही मायने में स्त्री की स्थिति को बदलना है तो उसे सबसे पहले यह स्वतन्त्रता देनी होगी कि वह अपना दृष्टिकोण स्वयं बना सके।

''दरअसल स्त्री की सबसे बड़ी त्रासदी उनका स्त्री होना है। नई सामाजिक व्यवस्था में उनका अस्तित्व एक ऐसी स्त्री के रूप में प्रचलित हुआ है कि उन्हें अपने आपको अन्यनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ मान लेने के लिए बाध्य होना पड़ा।''[14]

किसी भी समाज का निर्माण करने में स्त्री पुरुष में बराबर की भागीदारी होना है। इन दोनों के बिना हम समाज की कल्पना नहीं कर सकते। स्त्री –पुरुष दोनों एक दूसरे के पूरक भी है और एक–दूसरे से भिन्न भी। समाज में दोनों का बराबर महत्त्व हैं।

आधुनिक काल में नारी के प्रति पुरुष की सोच में बदलाव आया है और नारी ने भी अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा की है। वास्तव में आज महिला चेतना जाग्रत हुई हैं महिलाओं में संवेदना का अतुलनीय खजाना होता है नारी ने अपनी अनुभूतियों और संवेदनाओं को कलम के माध्यम से उतारा तो सबको चकित कर दिया। महिला चेतना नारी जीवन का स्वांत सुखाय है तो दूसरी ओर जन हिताय। नारी चेतना का यह परिवर्तन युग का शुभचिन्तक है। यद्यपि महिला चेतना आज स्पर्धा के युग में चुनौती है। फिर भी उसे हर स्थिति का सामना करने में उसे किसी बैशाखी की जरूरत नहीं अपितु स्वयं नारी को लड़ना है। वर्तमान परिवेश का सामना करके महिला चेतना की जागृति हो रही है। नारी की घटती गरिमा और बढ़ते अत्याचार पर महादेवी वर्मा ने लिखा है–

''न जाने इन महलों की नींव पर कितनी मीराएं सोई पड़ी है। उनमें यदि कोई एक भी अंगारा दहक उठे तो आप समझिए स्त्री समाज आमूल रूप से परिवर्तन हो जायेगा। राख की ढेर में यदि एक अंगारा ही बचा हो, वह सौ दीयों को जलाने की क्षमता रखता है।''[15]

यदि गहराई से देखा जाये तो धर्म नैतिकता पुरुष समाज से मिलकर नारी के अधिकारों पर न केवल अंकुश लगाया वरन् नारी की अस्मिता एवं अस्तित्व पर भी प्रश्न चिन्ह अंकित किए। स्त्री के प्रति किए जाने वाले अत्याचार अन्याय, देह शोषण, बलात्कार और मान मर्दन एक अलग ही गाथा कहते हैं। साम्प्रदायिक झगड़ों, जातीय हमलों और प्रेम प्रकरणों में दलित, आदिवासी महिला को भेड़ बकरी की तरह समझकर व्यवहार किया जाता है। आये दिन प्रकाशित होने वाले समाचार इस बात के प्रमाण हैं। बर्नार्ड शॉ ने कहा है– ''स्त्री की आत्मा को कुचल कर पुरुष ने अपनी आत्मा को भी कुचल दिया है।''[16]

राष्ट्रीय महिला आयोग की रिपोर्ट के अनुसार देश में प्रत्येक 25 वें मिनट में एक महिला से छेड़छाड़ प्रत्येक 40वें मिनट में बलात्कार प्रत्येक 42वें मिनट में यौन उत्पीड़न किया जाता है। खेदजनक स्थिति है कि आज बड़े–बड़े नेता समाज सेवक, सेविका, नारी उत्थान नारी मुक्ति तथा नारी समानता की बातें करते नहीं थकते। प्रतिवर्श 8 मार्च को महिला दिवस मनाया जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ की ओर से महिला वर्ष भी मनाया जा चुका हैं। फिर भी महिलाओं की स्थिति ज्यों की त्यों बनी हुई है। नारी को उच्च स्थान तभी प्रदान किया जा सकता है तब

पुरुष प्रधान समाज अपनी मानसिकता में परिवर्तन करें। पुरुषों को अपना दृष्टिकोण और अपनी सोच का स्तर ऊंचा उठाना होगा।

भारतीय पुरुष प्रधान समाज में लड़की होना आज भी बर्दाश्त नहीं किया जा रहा है। इसका ज्वलंत उदाहरण है सोनोग्राफी जांच। महिलाओं की संख्या में कमी के लिए गर्भपात कराना तथा कन्या भ्रूण हत्या कराया जाना आदि कारण जिम्मेदार हैं। कवि गोपालदास नीरज की पंक्ति– ''आग लेकर हाथ में पगला जलाता है किसे, जब न ये बस्ती रहेगी तू कहां रह जाएगा।''[17]

आज की महिलाओं का काम केवल घर–गृहस्थी संभालने तक ही सीमित नहीं है। वे अपनी उपस्थिति हर क्षेत्र में दर्ज करा रही है। हर वह काम करके दिखा सकती है जो पुरुष समझते हैं कि वहां केवल उनका ही वर्चस्व है, अधिकार है। जैसे ही उन्हें शिक्षा मिली उनकी समझ में वृद्धि हुई। खुद को आत्मनिर्भर बनाने की सोच और इच्छा उत्पन्न हुई। शिक्षा मिल जाने से महिलाओं ने अपने पर विश्वास करना सीखा और घर के बाहर की दुनिया को जीत लेने का सपना बुन लिया और किसी हद तक पूरा भी कर लिया।

महिला सशक्तिकरण की बात हो तो सशक्त महिलाओं में सानिया मिर्जा को कैसे भूला जा सकता है। सानिया ने तमाम इस्लामी फतवों और कठमुल्लों के फरमानों को धता बताते हुए जिस तरह टेनिस में नए मुकाम को हासिल किया है। यह गर्व का विषय है।

''आधुनिक सामाजिक परिदृश्य में स्त्री केवल पारंपरिक घरेलू भूमिकाएं निभाने वाली स्त्री ही नहीं बल्कि वह शिक्षित और नौकरी पेशा बनकर एक आत्मचेतना संपन्न स्त्री के रूप में परिभाषित हो रही है। बढ़ते हुए जीवन मूल्य के प्रति आकर्षण ने भी स्त्री को बदलाव का रास्ता दिखाया है। वह स्वतंत्र जीवन मूल्य के प्रति आस्थावान हो उठी है।''[18]

''महिलाएं धीरे–धीरे यह महसूस करने लगी हैं कि इंसान के रूप में उनका भी निजी व्यक्तित्व है तथा उनके जीवन का लक्ष्य मात्र अच्छी पत्नी और समझदार मां बन जाने से पूरा नहीं हो जाता, बल्कि वे यह भी मानने लगी हैं कि वे सब भी नागरिक समुदाय और संगठित समाज की सदस्य हैं।''[19]

समय बदल जाने के बाद भी पुरुष आज भी महिलाओं को बराबरी का दर्जा देना पंसद नहीं करते। उनकी मानसिकता आज भी पहले जैसे ही है। विवाह के बाद उन्हें ऐसा लगता है कि अब उन्हें अपनी पत्नी के साथ मारपीट करने का लाईसेंस मिल गया है।

''जब बात महिला सशक्तिकरण की होती है तो इसमें अकेले सरकार ही नहीं समाज और परिवार को भी भागीदार बनना होगा। कन्या को बोझ समझने की बजाय भेदभाव की भावना से परे उसे समानता का हक देना होगा। वे आत्मनिर्भर रहेंगी तो शोषण से भी मुक्ति स्वतः मिल जाएगी।''[20]

दलित महिला–

पहले दलित शब्द लोगों के लेखों में विभिन्न सन्दर्भ तक ही सीमित था। परन्तु अब दलित शब्द राष्ट्रीय राजनीति की मुख्यधारा को परिलक्षित करता है। राजनीति में भी इस प्रकार का बदलाव आया है कि दलितों का प्रथम ध्यान दलित जागृति व दलित उभार की ओर जाता है। पुराने समय की अपेक्षा अब दलितों ने अपने विषय में सोचना प्रारम्भ कर दिया है। हमें वर्तमान में दलितों में आयी राजनीति चेतना के उभार का तहे दिल से स्वागत करना चाहिए। दलित के आन्दोलन अपनी एक अलग–अलग पहचान बनाने में सफल रहे हैं। पिछले बीस सालों में दलित साहित्य काव्य पत्रिकाओं व पत्रकारिता की बाढ़ सी आ गई है।

''कांग्रेस और हिन्दू नेताओं ने मुसलमानों के पृथक राजनैतिक अधिकारों तथा हितों को स्वीकार कर लिया था। इस समझौते में यह चिन्ता नहीं की गई कि दलित वर्गो के भी कुछ हित है और उन्हें भी राजनैतिक अधिकार मिलने चाहिए।''[21]

''डॉ. अम्बेडकर ने साउथबरो समिति के समक्ष जिन सुधारों पर अपनी रिपोर्ट दी थी, साक्ष्य में कहा था कि दलितों को प्रायः दया का पात्र समझा जाता पर किसी भी राजनैतिक योजना में उनकी यह कहकर उपेक्षा की जाती है उनके कोई हित नहीं हैं।''[22]

दलित नारी के उत्थान का कार्य सबसे पहले डॉ. अम्बेडकर ने दलित शोषित अछूत समाज में ही शुरू किया। लेकिन उनका नारी उत्थान का यह कार्य दलित शोषित नारी समाज तक ही सीमित नहीं रहा। भारतीय नारी कल्याण के लिए अम्बेडकर का सबसे महान कार्य उसे पुरुष के समान अधिकार दिलाना था।

चौदहवीं धारा कहती है कि ''भारतीय राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समानता से वंचित नहीं किया जायेगा। पन्द्रहवीं धारा के अनुसार राज्य किसी नागरिक के विरूद्व केवल धर्म मूल वंश जाति लिंग, स्थान इनमें से किसी एक के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।''[23]

इन दोनों धाराओं से स्पष्ट होता है कि मूल रूप से नारी पुरुष के समान है। संविधान में समानता मिलने के बाद नारी को अपने विषय में सोचनें और समझने की भावना पैदा हुई और उसमें राजनीतिक चेतना भी बढ़ी है। इस युग में नारी समाज की गुलामी की बेड़ियां काट कर उसे स्वतन्त्र करने का श्रेय अम्बेडकर को ही है।

1909 में विदर्भ गोदिया जिले में कालीचरण नंदा गवड़ी ने अछूत महिलाओं के लिए स्कूल खोलकर दलित मुक्ति की शुरूआत की। दलित स्त्रियों की दासता की श्रृंखला को तोड़ने

के लिए प्रेरित करना उनका उद्देश्य था। इस तरह दलित महिलाओं को गुलामी से निकाल कर सामाजिक क्रान्ति की ओर अग्रसर होने की घटना भारतीय दलित स्त्रियों के आन्दोलन में महत्त्वपूर्ण है। दलित महिलाओं को अपने आप को समझने का अवसर प्राप्त हो।

दलितों के साथ स्त्रियों की दुर्दशा भी गांधी जी का बहुत बड़ा सरोकार रही है। यह उनके सामाजिक सर्वोदय का जरूरी हिस्सा थी, लेकिन गांधीजी दलितों की समस्याओं और यातनाओं के उन आयामों को आत्मसात नहीं कर पाये, जिनसे समाज में दलितों को शिकार बनाया जाता है। दलित स्त्री को स्त्री होने के नाते दुःख तो है ही, उससे अधिक दलित स्त्री होने से उसके नसीब में आया हुआ जन्म दुःख अधिक है। इस पुरुष प्रधान संस्कृति ने उसे अप्रतिष्ठित रखा। भारतीय दलित स्त्री की मुख्य समस्या है, उसका दलित होना। दलित होने के कारण वह उन सभी समस्याओं से जूझती है, जिनसे सम्पूर्ण दलित समाज सदियों से जूझ रहा है। दलित समाज में जागृति की कमी होने के कारण ही दलित स्त्रियों की समस्याएं बढ़ी हैं।

समाज में स्त्रियों को सदियों से उपेक्षित श्रेणी में रखा गया है। इस तरह महिलाओं की समस्या दोहरे पिछड़ेपन की है। वह सामाजिक व मानसिक दोनों रूप से पिछड़ी हुई हैं। जो दलित जातियां डॉ. भीमराव अम्बेडकर के जागृति आन्दोलन से जुड़ी हुई हैं, उन दलित जातियों की स्त्रियों में भी जागृति की कमी है। शिक्षित होने के बावजूद भी स्त्रियों को समाज व परिवार में समानता का अधिकार नहीं दिया जाता। आज भी उनको निर्णय लेने का अधिकार नहीं है। दलित स्त्रियां शिक्षा के अभाव में न तो संविधान से मिले अधिकारों को जानती हैं और न ही अपने मौलिक मानवीय अधिकारों को जानती हैं। कुछ स्त्रियां शिक्षित जागरूक होने के बावजूद भी दलित महिलाओं का सहयोग नहीं करती हैं।

स्त्री सर्वप्रथम स्त्री होने के कारण शोषित होती है। इसके साथ दलित स्त्री होने के कारण दोहरे रूप में शोषण पीड़ा का सन्ताप भोगती हैं। नारी गांव के गैर दलित जमींदार मुखिया प्रधान और सरपंच आदि की गिद्ध दृष्टि मात्र ही नहीं रहती, बल्कि शहरों कस्बों के लाला और सेठों की कुदृष्टि से भी दलित नारी छली जाती रही है।

''सामाजिक व सांस्कृति परिप्रेक्ष्य में विभिन्नता के कारण पाश्चात्य जगत के नारी मुक्ति आन्दोलन से इसमें मूलभूत अन्तर यह रहा है कि यह समाज सुधारकों द्वारा लड़ी गई लड़ाई भारतीय नारी द्वारा अपने व्यक्तित्व के लिये नहीं, बल्कि सामाजिक उत्थान के लिये दलित स्त्री गुलामों में गुलाम है।''[24]

अब वह अपनी वेदना और व्यथा को स्पष्ट करना चाहती है। कल की दलित स्त्री मौन थी। वेदना, अन्याय, अत्याचार सहती रहती थी। आज वह स्त्री डॉ. अम्बेडकर के विचारों को आगे लेकर चल रही है। दलित स्त्री का दुःख चक्रव्यूह जैसा है। इसके पीछे हजारों वर्ष की परम्परा है। अब दलित स्त्री इस परम्परा को नकारती है। समाज में स्त्रियों के अधिकारों का

उसी हद तक समर्थन किया, जहां तक पुरुष वर्चस्व पर आंच न आये। दलित पुरुष जो साहित्य नारी का चित्रण करता है, तो वह अपनी आशा व निराशा के रूप में मानसिक शोषण की अपेक्षा उनके शारीरिक शोषण का चित्रण अधिक करता है।

अधिकतर दलित महिलायें सवर्ण अत्याचारियों का मुकाबला डट कर करती हैं। मगर वे भी अपने वर्ग के पुरूषों द्वारा शोषित पीड़ित रहने के लिये मजबूर रहती हैं। पुरुषों को हमेशा यह लगता है कि वे रोटी कपड़ा देकर ही स्त्री का भला करते हैं या उसका उद्धार करते हैं। इस रोटी कपड़ा के अलावा स्त्रियों को आत्म सम्मान की आवश्यकता है।

''हकीकत में स्त्री एक जैसी कभी नहीं रही। एक संस्कृति की स्त्रियों में भी विभिन्नताएं मिलेगीं। एक संस्कृति से दूसरी संस्कृति के बीच में भी भिन्नता को सहज देखा जा सकता है।''[25]

दलित महिला दलितों में भी दलित मानी गयी है। इसके लिये हमारी सामाजिक व्यवस्था और पुरुष प्रधान समाज जिम्मेदार है। दलित महिला के जीवन का जितना कटु ठोस एवं यथार्थ अनुभव खुद दलित महिला के पास होगा। उतना किसी गैर दलित महिला के पास नहीं हो सकता। आज तक स्त्रीवादी आन्दोलन और उससे जुड़ी संस्थाओं का नेतृत्व सवर्ण स्त्रियों के हाथ में रहा है। इसलिये वहां दलित स्त्री की मुक्ति के मुद्दे केन्द्र में नहीं है। इसलिये दलित स्त्री को आज वो सम्मान नहीं मिला, जो मिलना चाहिये।

कौशल्या बैसन्त्री का 'दोहरा अभिशाप' दलित साहित्य की अनुपम और अद्वितीय कृति है। यह एक पहली आत्मकथा है, जिसे एक दलित महिला लेखिका ने लिखा है। इसमें उन्होंने ईमानदारी और प्रतिबद्धता के साथ दलित महिलाओं के उत्पीड़न और संघर्ष को दिखाया है। दलित महिलायें किस प्रकार मेहनत मशक्कत और समझदारी से घर चलाती हैं यह उसकी आत्मकथा में मौजूद है। सदियों से दलित नारी स्वयं के लिये मानवीय जमीन तलाशती रही है। भारत में महिलायें आज भी पुरुष की बराबरी से वंचित हैं। फिर दोहरे भेदभाव को झेलती दलित महिलाओं की हालत तो ओर भी बदत्तर है। दलित स्त्री हमेशा पुरुषवादी मानसिकता के द्वन्द में उलझी रहती है। भारत में दलित महिलाएं पूरी तरह से हाशिए पर दखेल दी गयी हैं। दलित महिलाएं अब भी हिंसा की शिकार हो रही हैं। उनके साथ होने वाली ज्यादतियों में शारीरिक प्रताड़ना, यौन उत्पीड़न, बलात्कार, घरेलू हिंसा शामिल है। दलित वर्ग की स्त्रियां आज भी शिक्षा व रोजगार से कोसों दूर हैं।

'शिकंजे का दर्द' सुशीला जी की आत्मकथा में इन्होंने दलित स्त्री जीवन के संघर्ष शोषण तथा उनकी मार्मिक संवेदनाओं को उजागर कर समाज में दलित स्त्रियों के जीवन को प्रस्तुत किया है। ''समाज में स्त्री पुरुष में भेद न हो। पुरुषसत्ता का आतंक न हो। स्त्री दोहरे स्थान पर न हो। मान सम्मान और स्थान दोनों का सम्मान हो। वे एक दूसरे के पूरक बनें।

एक दूसरे का आदर करें। एक दूसरे की मदद करें। प्रेरणा बनें। सहयोग दें, तब जीवन कितना शांतिमय और सुखमय होगा।''[26]

दलित समाज अशिक्षा के घोर अंधकार में श्वांस लेता रहा है। जिसमें दलित महिलाओं की स्थिति और भी चिन्ताजनक रही है। अभी भी गांव के अधिकतर परिवारों में दलित लड़कियों को शिक्षा नहीं दी जाती है। जब स्त्री शिक्षित होगी, तब उसे अपने अधिकारों के बारे में जानकारी मिलेगी। कानूनी अधिकारों के साथ ही शिक्षा भी स्त्री के विकास में अहम भूमिका निभाते हैं। ''प्रेमचन्द का मानना था कि स्त्री का पूर्ण विकास तभी सम्भव है, जब उसे पुरुषवत् सारे अधिकार प्राप्त हों।''[27]

भारतीय समाज में दलित होना किसी अभिशाप से कम नहीं और इस पितृ सत्तात्मक समाज में दलित होकर एक नारी तो दोहरा अभिशाप है। डॉ.चमनलाल का मानना है कि ''दलित स्त्रियां तिहरे शोषण की शिकार होती है जबकि दलित पुरुष दोहरा दमन झेलते हैं आर्थिक शोषण व भारतीय जाति व्यवस्था में निम्न जाति होने का सामाजिक दमन दलित स्त्रियों को ये दोनों दमन तो दलित पुरुषों के साथ झेलने पड़ते ही हैं। सामन्ती मूल्य व्यवस्था के चलते वे घरों के भीतर पुरुष दमन का शिकार भी होती हैं।''[28]

दलित महिलाओं के हालात किसी से भी छुपे नहीं हैं। भारत में दलितों को बहुत चौकन्ना होकर अपना जीवन जीना पड़ता है। बाबा डॉ. भीमराव अम्बेडकर के कारण दलितों के हालात बहुत कुछ सुधरे है वर्ना तो जानवरों से भी बदतर हालात थे। जब किसी भी दलित महिला के साथ अत्याचार होता है तब ये मीडिया, नेता, पुलिस, प्रशासन, समाज सेवी संगठन आदि अपनी आंखे बंद कर लेते हैं। इन दलित महिलाओं को न्याय दिलाने के लिए कहीं कोई आवाज नहीं उठाई जाती। अगर ये महिलाएं किसी बड़े शहर, सामाजिक और आर्थिक रूप से सम्पन्न किसी सवर्ण समाज से होती तो क्या तब भी मीडिया, राजनेता और समाज सेवी संगठन इसी तरह की खामोशी लिये होते। दलित महिलाओं के साथ–साथ दलितों का उत्पीड़न भी लगातार जारी है।

अगर दलित महिलाएं अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों का विरोध करती है तो उनको जिंदा जला दिया जाता है, उनके अंग भंग कर दिये जाते हैं, निर्वस्त्र कर गांव में घुमाया जाता है। आजादी के छह दशक बाद भी दलित महिलाओं को भेदभाव हिंसा सामाजिक बहिष्कार का सामना करना पड़ रहा है। देश में करीब 20 करोड़ दलित है, उनमें 10 करोड़ दलित महिलाएं शामिल है। दलित महिलाओं का आर्थिक राजनैतिक व प्रशासनिक तौर पर सक्षम न होना ही उनके साथ होने वाली हिंसा का प्रमुख कारण है। ऊंची जाति के मर्द अक्सर दलित पुरुषों से बदला लेने के लिए उनके समुदाय की औरतों के साथ बलात्कार करते हैं। सरेआम नंगा करके सड़कों पर घुमाते हैं।

जब स्वतंत्रता आन्दोलन में स्त्रियां शामिल होने लगी तो दलित महिलाओं के साथ दुर्व्यवहार किया गया इस विषय पर विमल थोरात ने लिखा है– ''छुआछूत के अभिशाप के कारण सवर्ण स्त्रियों के साथ दलित स्त्रियों की भागीदारी नगण्य ही रही। उनके लिये आत्मसम्मान और समानता का प्रश्न सर्वोपरि था। सवर्ण स्त्री ने दलित स्त्री का हमेशा तिरष्कार किया छुआछूत बरता तब आन्दोलन में शामिल करने का तो सवाल ही नहीं था।''[29]

सवर्ण स्त्रियां दलित स्त्रियां की सामाजिक स्थिति के प्रति न तो चिन्तित थी और न ही संवेदनशील। इसलिए दलित स्त्री को अपनी मुक्ति के लिए डॉ. अम्बेडकर का इन्तजार करना पड़ा।

डॉ. अम्बेडकर दलित स्त्री की सामाजिक स्थिति को लेकर चिंतित थे। उनका विशेष आग्रह था कि दलित मुक्ति कार्यक्रमों में दलित स्त्रियां अवश्य ही उपस्थित रहे। उन्होंने अपने संबोधन में सामान्य व दलित स्त्री के अन्तर एवं उनके अधिकारों को स्पष्ट करते हुए कहा था कि ''आप भी इस देश की नागरिक हैं इसलिए आप उन सभी अधिकारों की अधिकारी हैं जो सवर्ण स्त्री को मिलता है। आपको भी वैसा ही सम्मान और अधिकार मिलना चाहिए जैसे सवर्ण स्त्रियों और उनके बच्चों को हासिल है। आप में और उनमें किसी भी प्रकार का अन्तर नहीं। इसके लिए आप को ही संघर्ष करना पड़ेगा''[30]

आए दिन दलित महिलाओं पर उच्च जाति के समाज द्वारा जुल्म ढाने की घटनाएं सामने आती रहती हैं। जो दलित जातियां डॉ. भीमराव अम्बेडकर के जागृति आन्दोलन से जुडी हैं उन दलित जातियों की स्त्रियों में भी जागृति की कमी है। शिक्षित होने के बावजूद भी अपने अस्तित्व को नहीं पहचान सकी। जो आंदोलन से नहीं जुड़ सकी उन दलित महिलाओं की दशा और भी खराब है। समाज में लगातार हाशिए पर दलित समाज में आज भी जागृति की कमी है और यही समस्या दलित स्त्री की है। जागृति के अभाव में अपनी पिछड़ी स्थिति को समझ नहीं पाती हैं। समाज में स्त्रियों को सदियों से उपेक्षित रखा गया है। इस तरह महिलाओं की समस्या तिहरे पिछड़ेपन की है। वह सामाजिक आर्थिक रूप से पिछड़ी हैं और पुरुष मानसिकता की भी। वह आर्थिक क्षेत्र और राजनैतिक क्षेत्र में भी दलित स्त्रियां दलित पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर काम करती है फिर भी शोषित पीड़ित रहती हैं। दलित स्त्री की वेदना के बारे में सुशीला टाकभौरे जी कहती हैं कि ''मैं स्वयं एक दलित स्त्री हूँ। मैंने अपने जीवन में दलित होने का सन्ताप भोगा है, स्त्री होने की पीड़ा को भी सहा है इसलिए मैं अपनी उन सभी बहनों की पीड़ा और वेदना को जानती हूँ।''[31]

जो पुरुष दलित स्त्रियों के शोषण के विरूद्ध आवाज उठाते हैं वे पुरुष भी अपने घर परिवार समाज में कहीं न कहीं महिलाओं के शोषक हैं। सवर्ण पुरुष की तरह ही दलित पुरुष भी दलित स्त्री को निचले पायदान पर ही रखना चाहता है और उनके समक्ष स्वयं को श्रेष्ठ

मानते हैं। दलित स्त्री मात्र स्त्री होने का कष्ट ही नहीं झेलती बल्कि उसका दलित होना भी समाज में असहनीय है। वैसे तो समूचे भारत में दलितों और दलित महिलाओं पर हो रहे अत्याचारों की चीखें गूजती रहती है। ऐसा नहीं है कि इसकी गूंज संसद के गलियारों में सुनाई नहीं देती है। लेकिन ये सत्य है कि सिर्फ एक फीसदी ही सजा सुनाई जाती है। वहीं दूसरी तरफ अदालत में अपराधियों को सजा से मुक्त करना भी महिलाओं के साथ अत्याचार का बड़ा कारण बनता है।

दलित स्त्री को भारतीय संविधान में समान अधिकार होने के बावजूद समाज की सोच को दर्शाती है। दलित महिलाओं को यातनाएं जाति भेद के कारण ही दी जाती है। दलित समाज में स्त्रियां पितृसत्ता के बोझ के नीचे जी रही है पूरे समाज की स्त्रियां न केवल अपने समाज के बल्कि सवर्ण समाज की पितृसत्ता भी उनका शोषण व दमन करती है। राजस्थान में भी दलित स्त्रियों की दशा दयनीय है अधिकांश दलित महिलाएं दासियां और रखैलों की स्थितियों में हैं। कई राज्यों में तो दलित महिलाओं को विवाह की पहली रात किसी नवाब जमींदार पटेल के साथ गुजारने पर विवश होना पड़ता है। इस प्रथा को नकारने या न मानने वालों को दंड दिया जाता है।

दलित स्त्री की दशा व्यवहारतया इस समाचार की सहायता से समझी जा सकती है– ''दौसा जिले की सिकराय तहसील के ठीकरिया गांव के सरकारी स्कूल में स्वंतत्रता दिवस समारोह के अवसर पर कार्यवाहक महिला सरपंच मिश्री देवी को निर्वस्त्र कर उसके साथ मारपीट करने वाले चार लोगों को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया है। इन पर आरोप था कि महिला सरपंच के दलित होने के कारण वह उनके द्वारा ध्वजारोहण के खिलाफ थे।''[32]

आजादी के इतने वर्षों के बाद भी दलित महिलाओं को हिंसा भेदभाव और सामाजिक बहिष्कार का सामना करना पड़ रहा है। ये सामान्य सी लगने वाली घटनाएं दलित स्त्री के वजूद की चिन्ताएं लिए हुए है। इसकी पुष्टि विमल थोरात अपने एक लेख में करती हुई लिखती हैं–''स्त्री सुधार के अधिक तर प्रयास मात्र सवर्ण स्त्री स्थिति में बदलाव तक सीमित रहे। हाशिये की स्त्री के प्रति सवर्ण वर्ग असंवेदनशील था इसलिए दलित आदिवासी स्त्री आजादी के छह दशकों के बाद भी हाशिये से मुख्यधारा में शामिल होने के लिए संघर्षरत है।''[33]

दलित महिलाओं की समस्याएं आम महिलाओं से बिल्कुल अलग है। दलित महिलाएं ही समाज में सबसे ज्यादा शोषित है। शैक्षिक स्तर से सामाजिक दृष्टि से आर्थिक तौर पर दलित महिलाएं ही सबसे निचले पायदान पर खड़ी है। गरीबी, अशिक्षा, जातिगत भेदभाव के अलावा अनेक प्रकार से शोषण इनकी नियति बना दी गई है। दलित महिलाओं को इस जातिगत

समाज में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व शैक्षणिक अधिकार अब भी ठीक से हासिल नहीं हुए हैं।

सरकारी लाभकारी योजनाओं के द्वारा पहुंचाई जाने वाली मदद भी दलित महिलाओं तक नहीं पहुंचती। बीच में ही पंचायत पंच, सरपंच और प्रशासन के अधिकारी इसे हड़प लेते हैं। दलित महिलाएं इन सरकारी योजनाओं द्वारा मिलने वाले लाभ से वंचित रह जाती है। अधिकतर दलित महिलाओं के बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। इनके लिए अन्न व स्वास्थ्य सुविधाएं पहुंचती ही नहीं है। अनेक दलित महिलाएं स्वास्थ्य केन्द्रों में डॉक्टरों व नर्सों की घृणा के कारण घर में और सड़क पर ही बच्चे पैदा करने पर मजबूर कर दी जाती हैं। जिसमें अक्सर महिला या बच्चे की मौत होना आम बात है।

आजादी के 60 वर्षों बाद भी दलित महिला विकास के सबसे निचले पायदान पर खड़ी है। इसकी प्रगति में जातिगत प्रथा जैसे अनेक बाधाएं खड़ी हैं। स्त्री दलित गरीब होने के कारण वह तिहरे शोषण को झेल रही है। वह समाज की दहशत पुरुषों द्वारा और प्रशासन तथा न्याय व्यवस्था सभी से एक साथ लड़ रही है। दलित महिला का जीवन का संघर्ष अलग और उलझा हुआ है। पुरुष प्रधान समाज में स्त्रियों पर अत्याचार की घटनाएं घटती रहती हैं। स्वतंत्रता, समानता और शिक्षा से वंचित नारी अपनी यथार्थ स्थिति स्वयं भी नहीं समझ पाती। उन्हें अशिक्षित रखने का एक ही कारण था कि शिक्षित होकर कहीं ये अपने अधिकारों की मांग न करने लगे। दलित महिलाओं पर किये जाने वाले अन्याय और अत्याचार की परम्परा इतनी पुरानी है कि इससे छुटकारा पाना आसान नहीं है। दलित स्त्रियों की स्वतंत्रता की मांग आज तक अपना उद्देश्य प्राप्त नहीं कर सकी। दलित नारी अपने स्वतंत्र अस्तित्व को न तो स्वीकार कर रही है और न ही पहचान रही है। इसी संदर्भ में सुशीला टाकभौरे जी कहती हैं कि ''दलित नारी को जिस व्यवस्था ने गुलाम बनाया उस व्यवस्था में आस्था, श्रद्धा के प्रति, उन मूल्यों के प्रति उसके मन में बगावत की भावना ही नहीं है–बल्कि वह उसकी पूजक बन बैठी है।''[34]

जहां दलितों का जीवन पशुओं से भी ज्यादा बदतर है वहां दलित स्त्री और भी अधिक शोषित की जाती है। आज भी देश के गांवों और शहरों में दलित स्त्रियों पर अत्याचार होते हैं। ऐसी घटनाएं हमें रोज अखबारों में पढ़ने को मिलती है। बलात्कार, शारीरिक और मानसिक अत्याचारों से दलित स्त्री को पीड़ित किया जाता है। ग्रामीण क्षेत्र की गरीब अशिक्षित दलित महिला उच्च वर्ग के पुरुषों के हाथ का खिलौना बन कर रह जाती है। दलित स्त्रियों को न तो कभी इंसान समझा जाता है और न ही मानव अधिकारों की अधिकारी। दलित महिला सबकी गुलामी करने के लिए ही पैदा हुई है। उसकी छोटी सी गलती पर मनमाना दंड दिया जाता है।

उसी पर किये जाने वाले अन्याय व अत्याचारों पर कोई भी विचार नहीं करता। उसे न्याय दिलाने के लिए कोई भी आगे नहीं आता।

समाज में दलित स्त्रियों से बलात्कार यौन शोषण जैसी घटनाएं आम बात है। ऐसी घटनाएं होने पर दलित महिला को ही दोष दिया जाता है। पुरुषों को निर्दोष मान लिया जाता है। ऐसी स्थिति में दलित स्त्रियों को न्याय नहीं मिल पाता। पुरुष को दंड न मिलने पर वह निर्भीक होकर समाज में ऐसे अपराध करता रहता है। दलित स्त्री मध्यमवर्गीय हो चाहे निम्न वर्गीय,मजदूर हो चाहे सामाजिक कार्यकर्त्ता अथवा कॉलेज में अध्यापिका, उसे दलित और स्त्री होने की पीड़ा साथ–साथ भोगनी ही पड़ती है। इसी संदर्भ में अध्यापिका रह चुकी सुशीला टाकभौरे की चिन्ता यह है कि ''दलित आंदोलन से जुड़ी महिलाओं के समक्ष यह बहुत बड़ा प्रश्न है कि समाज में महिलाओं के प्रति मानसिकता को कैसे बदला जाएं क्योंकि समाज में इसी मानसिकता के कारण सम्पूर्ण दलित महिलाएं नारी मुक्ति आंदोलनों से जुड़ नहीं पाती हैं। आज भी वे अपने घर के पुरुषों की अनुमति के बिना नारी विकास सम्बधी कार्यक्रमों में जा नहीं पाती।''[35]

उनका कहना है कि नारी के प्रति पुरुषों की मानसिकता बदली जाएं तभी दलित महिलाओं के प्रश्नों और समस्याओं का समाधन हो सकेगा। दलित महिलाओं में स्वावलंबी न होने की समस्या भी है।

'दोहरा अभिशाप' दलित नारियों के शोषण और दुख का हिन्दी में पहला दस्तावेज है जिसे कौशल्या बैसंत्री ने बड़े ही साहस के साथ प्रस्तुत किया है। इसमें दलित स्त्री के जीवन के दुख और शोषण की घटना है। 21 वीं सदी में भी इस देश में दलित महिलाओं की हालत कुत्ते बिल्लियों व जंगली जानवरों से भी बदतर है। इस दौर में भी दलित महिला सरपंच को स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर घोर अपमान सहना पड़ता है। आए दिन समाचार –पत्रों में पढ़ने को मिलता है कि दलित महिला को जिन्दा जलाया। लेकिन कभी ये सुनने को नहीं मिलता कि किसी गांव में किसी ब्राह्मण या बनिया समाज की स्त्री को नंगा करके घुमाया या जला दिया गया। गरीब दलित स्त्रियों के साथ यह अन्याय बिना किसी डर के किया जाता है।

दलित महिला के लिए पहली चुनौती तो यही है कि बदलते परिवेश में सामाजिक मान्यताओं का खण्डन करे। समाज में जो मान्यता उसके हित में हो उन्हें ही स्वीकार करे। समाज में दलित स्त्रियों की दुरावस्था शिक्षा के अभाव के कारण है। अशिक्षा के कारण ही दलित स्त्री गुलामी की स्थिति का विरोध नहीं कर पाती। दलित स्त्रियां शिक्षा व जागृति के अभाव में न तो संविधान में मिले अपने अधिकारों को जानती है न ही अपने मौलिक मानवीय अधिकारों को। न तो ये स्त्री पुरुष की समानता को समझ पाती है और न ही देश–विदेश में चल रहे नारी मुक्ति आंदोलन को ।

कुछ दलित महिलाएं शिक्षित जागरूक होने पर भी दलित महिलाओं की जागृति में सहयोग नहीं देती हैं। दलित महिलाओं में लेखन प्रकाशन करने वाली महिलाओं की बहुत कमी है। दलित स्त्रियों को भी जीवन के हर क्षेत्र में समान अधिकार और अवसर मिलने चाहिए तभी वे समाज में आगे बढ़ सकेगी। दलित स्त्रियां जागृत होगी तभी वे अपने शोषण और अन्याय अत्याचार का जवाब दे सकेंगी।

डॉ. अम्बेडकर दलित समाज व नारी समाज को शोषण से बचाकर उन्हें सम्मानपूर्वक जीवन का अधिकार दिलाना चाहते थे। दलित महिलाओं में जागृति लाने के लिए उनमें शिक्षा का प्रचार प्रसार होना आवष्यक है। शिक्षा के माध्यम से वे अपने स्वतंत्रता के अधिकार और कानून के सुरक्षा कवच को समझ सकेंगी। साथ ही अत्याचारियों से डटकर मुकाबला भी कर सकेंगी। दलित स्त्रियों का जीवन केवल घर गृहस्थी बच्चे संभालना, भोजन पकाने तक सीमित नहीं होना चाहिए। उन्हें भी पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त होने चाहिए। भारत में यह दृष्टि कमजोर है और दलित महिलाओं की स्थिति अधिकारों में बस नाम मात्र की है। दलित महिलाएं आर्थिक व राजनैतिक क्षेत्र में पुरुषों के बराबर भाग लेंगी तभी वे समाज और घर परिवार में पुरुषों के बराबर मानी जाएंगी ।

दलित महिलाओं के साथ किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं होना चाहिए। क्योंकि मानवाधिकारों में महिला व पुरुषों को समान अधिकार मिले हैं और इन अधिकारों का महिलाएं बिना किसी खौफ के उपयोग कर सके। ऐसे ठोस कानून बनाये जाने चाहिए। इनके अलावा जातिगत हिंसा व भेदभाव करने वालों को सख्त से सख्त सजा देने का भी प्रावधान हो। भारत सरकार को ऐसा कानून बनाना चाहिए जिसमें दलित महिलाओं को यंत्रणा, गुलामी, क्रूरता से आजादी मिले। वे जीने के अधिकार का इस्तेमाल कर सकें।

एक दलित महिला की जिदंगी व सम्मान मानवाधिकारों पर बहुत निर्भर करता है। लेकिन इनके मानवाधिकारों का बहुत उल्लंघन है। दलित महिलाओं के बच्चों को न तो गुणात्मक शिक्षा मुहैया कराई जा रही है न ही ऐसी शिक्षा जिसे हासिल कर वे सशक्त बन सके।

इन सभी समस्याओं का उपाय है जागृति। भारतीय दलित स्त्री की मुख्य समस्या जागृति का अभाव है। महिला जागृति शिक्षा, संगठन, संघर्ष से दलित स्त्री विकास के पथ पर आगे बढ़गी। ज्ञान के साथ ही उसे सत्ता का बल भी मिलना चाहिए। अपनी स्थिति को बदलकर प्रगति के साथ कदम से कदम मिलाकर ही दलित स्त्री अपनी समस्यायों से मुक्ति पा सकती है।

डॉ. अम्बेडकर ने हमेशा नारी को स्वतंत्रता, समानता और सम्मान का अधिकार पाने का अधिकारी बताया है। उन्होंने कहा है कि–'' किसी भी वर्ग उन्नति का अनुमान उस वर्ग की

महिलाओं की उन्नति को देखकर ही हो सकता है। शिक्षा, स्वच्छता, महत्वाकांक्षा, आत्मविश्वास, सीमित परिवार, पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलना और बराबरी का अधिकार मांगना–नारी के विशेष कर्त्तव्य है।''[36]

डॉ. अम्बेडकर ने दलित स्त्रियों को अपने अधिकारों के लिए संघर्ष की शिक्षा दी थी। अम्बेडकर ने अबला नारी को सबल व शक्तिशाली बना दिया। आज दलित समाज की स्त्रियां प्रगतिशील हो गई है। दलित महिलाएं की कुछ समस्याएं आम महिलाओं से बिल्कुल अलग है। क्योंकि वे दलित है दलित महिलाएं आर्थिक स्थिति से भी काफी कमजोर है। इसके लिए दलित महिलाओं आर्थिक स्वायत्तता के कार्यक्रमों से जोड़ा जाना चाहिए। आर्थिक स्वतंत्रता के साथ ही सामाजिक–धार्मिक मान्यताओं के शिकार होने से बचाये जाने के लिए कानूनी प्रावधान लागू किया जाना चाहिए। दलित महिलाओं को संगठित करने के लिए इनके संगठनों को मजबूत किया जाना चाहिए। दलित महिलाओं को जागृत किया जाना चाहिए ताकि वे अपने राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक अधिकारों के लिए लड़ सके।

आदिवासी महिला–

आदिवासी समाज वर्षों से शोषण व अत्याचार का शिकार होता रहा है। समाज में इनको हीन तथा निम्न स्तर का समझा जाता है। आदिवासी महिलाओं की स्थिति तो और भी दयनीय बनी हुई है। वैसे तो आदिवासी महिलाओं की स्वतन्त्रता और स्वच्छंदता के झूंठे भ्रम फैलाये जाते है लेकिन समाज में भी कुछ ऐसे कठोर नियम है जो स्त्री को पुरुष से कमजोर समझते हैं।

आदिवासी समाज सामूहिकता और समानता में विश्वास रखता है अंग्रेजों के आने से पहले सम्पत्ति की कोई अवधारणा नहीं थी। गांव की जमीन जंगलों में अवस्थित थी और वह पूरे गांव की होती थी। जिसमें औरत, मर्द, बच्चे बूढ़े सभी बराबर के हकदार थे। आदिवासी समाज में लड़कियां अपने पिता के घर जब तक चाहें रह सकती थी। पति के मरने के बाद में पिता व भाइयों पर इनकी जिम्मेदारी होती थी। आदिवासी समाज हमेशा से ही जंगलों में ही रहता था और उनकी स्त्रियां भी उतनी ही स्वतन्त्र होती थी जितने की पुरुष। आदिवासी स्त्रियां मेहनत करने के मामले में पुरुषों से ज्यादा ही क्षमतावान होती है। चाहे जंगल में लकड़ी काटना हो या खेत का काम या फिर शिकार करना।

आदिवासी समाज की मूल संस्कृति मातृसत्ता प्रधान थी मगर अब हिन्दू मानसिकता से प्रभावित होकर आदिवासी पुरुष भी अपनी स्त्रियों को नैतिकता और व्यवहारिकता के बन्धनों में

बांधने लगे हैं। पुरुष प्रधानता की भावना ने उनके मन से स्त्री पुरुष समानता की भावना दी है। आदिवासी समाज में स्त्रियों को समानता का अधिकार रहकर भी व्यवहारिक जीवन में समानता का अधिकार नहीं है। ''मनुवादी विचारधारा के अनुसार स्त्रियों को अपवित्र अविश्वसनीय और अयोग्य माना जाता है। इसी आधार पर आदिवासी समाज में भी स्त्रियों के प्रति निकृष्ट व्यवहार किया जाने लगा है।''[37]

भारतीय संस्कृति के बिल्कुल विपरीत आदिवासी स्त्री को अपना वर खुद चुनने की इजाजत है। यही इनकी आजादी के स्त्रोत रहे हैं। उनके यहां तो घोटुल प्रथा होती है जहां युवा लड़के लड़कियों को एक साथ रखकर सब प्रकार का ज्ञान दिया जाता है। वह उनका प्रशिक्षण स्थल होता है। इसलिए अन्य स्त्रियों के विपरीत आदिवासी लड़कियां लड़कों को देखकर न तो डरती है न झिझकती है बल्कि वे उनसे बतियाती है परखती है और अगर जीवन साथ निभाते की संभावना दिखे तो ही ब्याह करती है नहीं तो छोड़ने का अधिकार भी प्राप्त है।''[38]

आदिवासी क्षेत्रों में औद्योगिक विकास में आदिवासी स्त्रियां श्रमिक के रूप में कठिन श्रम के कार्य करती है वे अपने परिवार का खर्चा चलाती हैं। प्रो. सच्चिदानन्द लिखते हैं कि ''आदिवासी स्त्रियां पारिवारिक खर्चो में न केवल अपना योगदान ही देती है अपितु कभी–कभी वे अपनी एक मात्र कमाई से सम्पूर्ण परिवार का आर्थिक भार वहन करती हुई दिखाई देती हैं।''[39]

आदिवासी समाज में अलग–अलग जनजातियों में स्त्रियों की स्थिति कार्य और महत्व अलग–अलग हैं। कहीं स्त्रियों को बहुत अधिकार प्राप्त है और कहीं वे समाज और परिवार में शोषण का शिकार भी हैं। फिर भी आदिवासी समाज की सामाजिक संरचना और संस्कृति का निर्माण स्वतन्त्र रूप से हुआ है। सामान्य रूप में स्त्रियों को पुरुषों के समक्ष स्थिति प्राप्त है। वैसे तो आदिवासी समाज में लिंगभेद नहीं माना जाता। पुत्र के समान पुत्रियों को भी समाज में समान रूप से आदर महत्व व अधिकार प्राप्त है। यही कारण है कि यहां बेटा और बेटी में अधिक अन्तर नहीं है। वर्तमान काल में आदिवासी समाज में ऐसी जनजातियां भी है जो स्त्रियों की उच्च सामाजिक स्थिति के लिए जानी जाती है।

हो जनजाति में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां अधिक परिश्रमी होती है वहां जीवनयापन के लिए श्रम स्त्रियां ही करती हैं। अधिकांश पुरुष पत्नी पर ही निर्भर रहते हैं। एन.सी.चौधरी का मत है कि ''जनजातीय समाज में स्त्रियों को एक आर्थिक सम्पदा के रूप में माना जाता है तथा कठोर परिश्रमी एवं कर्त्तव्य परायण पत्नी को पर्याप्त महत्ता एवं सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है।''[40] स्त्री पुरुषों के बीच श्रम विभाजन स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इसके साथ ही यह भी देखा जा सकता है कि पुरुषों के बराबर काम करके भी स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार नहीं है।

''आदिवासी स्त्रियां प्रायःकम कपड़े पहनती हैं। कमर से लेकर घुटने तक वे एक लुंगी जैसी लपेट लेती है कई जनजातियों में आदिवासी स्त्रियां अपना पूरा बदन ढ़कती हैं। आजकल आधुनिक सभ्यता के अनुसार वे भी पूरे कपड़े पहनते लगी है। आदिवासी स्त्रियां सुन्दरता की प्रेमी होती है उनका श्रृंगार दर्शनीय होता है। आदिवासी स्त्रियों में गहनों के प्रति रूचि अधिक रहती है। आदिवासी स्त्रियों में गहनों के प्रति रूचि अधिक रहती है।''[41]

गरीबी और अभाव के कारण सोने–चांदी के गहने नहीं पहन पाती हैं तब वे पीतल गिलट आदि से भी गहने बनाकर पहनती हैं ये गहना जरुरी समझती हैं। सभ्यता से दूर घने जंगलों और पहाड़ों में रहने वाली आदिवासी स्त्रियां वृक्षों की छाल पत्तों फूलों आदि से अपना सिंगार करती हैं।

आदिवासी लड़कियां अपने बालों को कलापूर्ण ढ़ंग से सजाती हैं आदिवासी लड़कियां व स्त्रियां गले में तरह–तरह की रंग बिरंगी मालाएं पहनती हैं। आदिवासी स्त्रियां ताम्बे, पीतल, चांदी के आभूषण हाथों में पैरों में और कमर में पहनती हैं। आदिवासी स्त्रियां गले में तरह–तरह की रंग–बिरंगी मालाएं पहनती हैं। बनजारा आदिवासी लड़कियां हांथीदात के पट्टे–चूड़ियां पहनती हैं हाथ की ऊंगलियों में मुंदरी पहनी जाती हैं।

आदिवासी स्त्रियां स्वावलंबी होती हैं। वे कमाकर अपना व अपने पूरे परिवार का भरण पोषण करती हैं लेकिन सम्पत्ति में हिस्से का अधिकार न होने के कारण परित्यक्ता या विधवा होने पर डायन कहकर अपमानित करना या उसकी हत्या कर देना आदिवासी समाज में आम बात हो गई। डायन प्रथा पितृसत्तात्मक के साथ–साथ स्त्रियों के सम्पत्ति में हक न होने के कारण भी उपजी हैं। ''हाल ही में झारखण्ड के महेश्वरपुर थाना में नारायण किस्कु की 65 वर्षीय विधवा पत्नी को डायन करार कर उसके देवर हरीराम ने उसकी जमीन हड़पने की नीयत से हत्या कर दी''[42]

यदि आदिवासी महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त हो तो वे अपना जीवन यापन आसानी से कर सकती है। आदिवासी और दलित औरतों के साथ अधिकांशतः गैर–दलित आदिवासी ही बलात्कारी होते हैं। आदिवासी औरत पर ज्यादातर बलात्कार गैर–आदिवासी पुरुषों द्वारा ही किये गए हैं। आदिवासी गांव, बस्ती में बलात्कार की घटनाएं आम है। जिनकी रिपोर्ट भी नहीं हो पाती है। आज भी कई ऐसे इलाके हैं जहां आदिवासी शहरी लोगों को देखकर डर जाते हैं। आदिवासी औरतों के साथ लम्बे समय से अमानवीय व्यवहार किया जाता रहा है। उन्हें अपनी अस्मिता के लिए हमेशा लड़ना पड़ता है।

बलात्कार स्त्री के अस्तित्व के साथ इस कदर जोड़ दिया गया है कि औरत में जीने की इच्छा ही नहीं बचती है। राजकिशोर सही लिखते हैं–''कुछ स्त्रियों को बलात्कार और हत्या के बीच चुनने की छूट दी जाये तो वे आत्महत्या को ही चुनेगी।''[43]

एक तरफ तो स्त्री को माता कहकर पुकारा जाता है। वहीं दूसरी तरफ और हत्या बलात्कार, नंगा घुमाना जैसे कई अमानुषिक व्यवहार किये जा रहे हैं। आज भी समाज में कई जगह नारी के साथ यह घटनायें घटित हो रही है। ''समाज की मध्यवर्गीय मानसिकता ने स्त्री के शील को एक ऐसा मामला बना दिया है कि जिसके बाद उसका जीवन ही न के बराबर रह जाता है।''[44] ये सब तानाशाही समाज के कारण ही होता रहा है एक विवादित स्त्री को पुरुष की जागीर बना दिया गया है। यही नजरिया बलात्कार की घटना को भयावह बना देता है। जिसके बाद वह अपने पति से छुपाने की कोशिश करती है।

आदिवासी समाज में औरतों के साथ हर समय समानता का व्यवहार नहीं होता है बिटिया मुर्मु के अनुसार– ''स्त्री और पुरुष की शारीरिक बनावट के आधार पर काम का बंटवारा समझ आ सकता है। लेकिन आदिवासी पुरुष समाज ने कार्य का बंटवारा शारीरिक बनावट या क्षमता के आधार पर न करके स्त्री पर अधिकार जताने के दृष्टिकोण से कड़े नियम–कानून बनाकर उन्हें कुछ कामों से वर्जित कर दिया– जैसे हल चलाना व घर का छप्पर छाना या तीर–धनुष चलाना ताकि जमीन और घर जो आज की परिभाषा में सम्पत्ति के प्रतीक हैं, पर आदिवासी पुरुष का ही अधिकार रहे''[45] यदि कोई स्त्री हल छू दे या छप्पर छा दे तो उसे अपने कंधों पर हल जोतकर जमीन जोतनी पड़ती है

आदिवासी समाज विकास और प्रगति की दृष्टि से पिछड़ा समाज है इस आधार पर आदिवासी औरतों की स्थिति तो और भी खराब है। हिन्दू दलित व पिछड़े समाज की स्त्रियों से भी ज्यादा सोचनीय स्थिति आदिवासी स्त्रियों के साथ समाज में धोखा फरेब छल कपट जैसे व्यवहार करके भी उसे शारीरिक व मानसिक आघात पहुंचाया जाता है।

''आदिवासी महिलाओं की जनसंख्या में अकेला दिल्ली 30 लाख के पार है। मतलब आदिवासी महिलाओं की जनसंख्या पांच करोड़ है। जिनमें से आधी आदिवासी महिलाएं अपने गांव छोड़कर शहरों में आ गई हैं। इन शहरों में वे इसलिए आती है ताकि वे अपना पेट पाल सके। वे शहर की चकाचौंध में इस तरह खो जाती है कि अपने शरीर व अपनी जरूरतों का ख्याल नहीं रख पाती हैं।''[46]

आदिवासी महिलाओं को महानगरों में छोड़ दिया जाता है और ये आदिवासी महिलायें शहरों से बिल्कुल अनभिज्ञ रहती है। इसलिए दलाल द्वारा छोड़ी हुई जगहों पर उस आदिवासी महिला को मजबूरन रहना पड़ता है। उस आदिवासी महिला के साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता। उससे अत्यधिक काम करवाया जाता है और इनका ग्यारह महीने के कांट्रेक्ट पर रखा जाता है। फिर अगले साल अगला घर, जिससे उनका संबध नहीं बन पाता है।

आदिवासी महिलाओं की कमाई का अधिकांश भाग शराब में उड़ेल दिया जाता है जिससे उनकी कमाई का कुछ भी शेष नहीं बचता। किसी बड़ी बीमारी होने की सूरत में एक

दिन भी जीना मुश्किल हो जाता है। इस कर्ज से मुक्ति पाने के लिए ही शहरों की ओर जाना पड़ता है ''ऐसा नहीं है कि ये महिलाएं राजधानी की वासी या शहरों को अपना निवास बना चुकी है। ऐसी महिलाएं लाखों की संख्या में है जिनकी अपने नैसर्गिक गांव से भी नागरिकता चली जाती है वहां न रहने के कारण और शहर ने भी उन्हें अपना पहचान पत्र नहीं दिया होता है। खासकर दिल्ली ने तो अपने जनसामान्य के साथ जोड़ा ही नहीं''[47]

आदिवासी स्त्रियों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। आदिवासी घने जंगलों और दुर्गम पहाड़ों पर निवास करते हैं। यहां आवागमन के लिए न तो अच्छी सड़कें है और न ही साधन होते है। आजीविका के लिए लकड़ी और अन्य वन्य सामग्री लाने के लिए आदिवासी स्त्रियों को मीलों दूर जंगलों व पहाड़ों में भटकना पड़ता है। सरकारी नीतियों पर आधारित आदिवासी विकास योजनाओं का लाभ न तो पूरी तरह आदिवासी ले पाये हैं और न ही उनकी मूल समस्याओं का निराकरण ही पूरी तरह हो पाया है। नगरीकरण और औद्योगिकीकरण से आदिवासी संस्कृति में विद्रुपतायें आयी है। समाज सेवा संस्थाए भी मनमाने ढ़ग से उन्हें दिशा निर्देश करती हैं जिससे वे अधिक भ्रमित होते हैं।

उद्योग कारखानों में काम करने वाली आदिवासी महिलाएं शोषण का अधिक शिकार हुई है। आदिवासी स्त्रियों के आर्थिक क्षेत्र में शोषण के अनेक कारण है अवैज्ञानिक ढ़ग से खेती अस्थायी खेती और छोटे–छोटे भू–भाग में खेती करने से परिश्रम ही अधिक करना पड़ता है। उससे अधिक लाभ नहीं मिल पाता है। खेती के कामों में स्त्रियों को अधिक मेहनत करनी पड़ती है।

अधिक मेहनत करके भी पेट भर भोजन नहीं मिल पाता है। इनकी इस समस्या को लेकर टाकभौरे जी लिखती हैं–''वनों पर आधारित अर्थव्यवस्था में स्थिरता नहीं रहती है। जंगल–पहाड़ों में लगातार भटकने के बाद भी कहीं थोड़ा कुछ मिल पाया है। परिणाम स्वरूप इनके जीवन में संतोष कम और समस्याएं अधिक रहती है।''[48]

ऋणग्रस्तता इनके जीवन की सबसे बड़ी समस्या है। बाजारों में जंगल की वस्तुएं बेचने पर इन्हें सही मूल्य नहीं मिलता। अपनी आवश्यकताओं के लिए महाजनों से ऋण लेते हैं यह ऋण एक बार लेने के बाद कभी खत्म ही नहीं होता है। धूर्त महाजन भोले–भोले आदिवासियों को लूटते रहते हैं। घर परिवार की जिम्मेदारियां स्त्रियों पर होती है। अतः इन समस्याओं का सामना और इनसे प्राप्त संताप स्त्रियों को ही झेलना पड़ता है।

आदिवासी स्त्रियों को पानी लेने के लिए दूर जाना पड़ता है बाजार हाट जाने के लिए मीलों चलना पड़ता है। अधिक परिश्रम से वे थक जाती हैं अधिक श्रम और अभावों से त्रस्त जीवन में आदिवासी स्त्री–पुरुष शराब का सहारा लेते हैं। शराब के साथ तम्बाकू की लत के कारण इनका स्वास्थ्य जल्दी खराब होने लगता है। स्त्रियां शराब का सहारा अधिक थक जाने

के कारण करती हैं वहीं दूसरी ओर पुरुष शराब पीकर महिलाओं के साथ मारपीट करते हैं। आये दिन हम अपने आस–पास ऐसी घटनायें देखते है। महिलाओं के पास जो जमा पूंजी होती है। वो भी छीन ले जाते हैं। पुरुष का शराब पीने का कारण उसकी नशे की लत होती है। इसलिए डॉ. अम्बेडकर ने नागपुर में नारियों को सम्बोधित करते हुए कहा– ''यदि तुम्हारे पति शराब पीकर या जुआ खेलकर आये तो दरवाजा मत खोलो, उन्हें खाना मत दो, क्योंकि वे शराब पीना छोड़कर उतने ही पैसों से बच्चों को तन्दुरूस्त रखने के लिए अच्छा खाना खिला सकते हैं। अच्छे कपड़े पहना सकते हैं।''[49]

आदिवासी विकास के लिए जो योजनाएं बनाई जाती है और आदिवासी जनजागृति के क्षेत्र में जो कार्य किये जाते हैं उनसे आदिवासी स्त्रियों की स्थिति में अधिक परिवर्तन नहीं आ सका है। समाज परिवर्तन की गाति और स्त्री जागृति के साथ उनकी बढ़ती महत्वाकांक्षाओं को देखते हुए आदिवासी स्त्रियों की उन्नती के लिए विशेष सकारात्मक कदम उठाने की आवश्यकता है। आय, स्वास्थ्य और शिक्षा इन सभी क्षेत्रों में स्त्रियों को न्याय मिलना चाहिए। उन्हें स्वतंत्रता और समानता का अधिकार मिलना चाहिए तभी आदिवासी स्त्रियों की प्रगति और विकास हो सकेगा।

इसके साथ ही समाज की वे सब बुराइयां भी मिटानी होगी जो परम्परा के रुप में स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा निम्न या कम बताती हैं। इन बुराइयों और परम्पराओं को समाज से मिटाकर ही नारी के प्रति सम्मान और गौरव की भावना बनाई जा सकेगी। समाज में फैला अंधविश्वास और पुरुषसत्ता की प्रधानता इनसे सम्बधित विचारों को बदलकर ही समाज की मानसिकता को बदला जा सकेगा। तभी आदिवासी स्त्रियों को समाज में पुरुषों के बराबर समानता और स्वतन्त्रता का अधिकार मिल सकेगा। लेकिन इन सबको बदलने के लिए समाज के कड़े तन्त्र को बदलना होगा।

आदिवासी समाज में शिक्षा का बहुत अभाव है संविधान द्वारा अनेक अधिकार मिलने के बाद भी इन्हें अपने अधिकारों का ज्ञान नहीं होता है। कानून के दांव–पेंच नहीं जानने के कारण इनकी जमीन हड़प ली जाती है। आदिवासी समाज को समस्याओं से मुक्त करने के लिए समय–समय पर उनके विकास के लिए अनेक प्रयास किए गए हैं। फिर भी अपेक्षित लाभ और सफलता नहीं मिल पाई है। अनेक सुविधाएं व अधिकार देने के लगातार प्रयत्नों से आदिवासी समाज में कुछ मात्रा में प्रगति हुई है। लेकिन इनका लाभ आदिवासी स्त्रियों को बहुत कम मिल पाया है। कुछ आदिवासी महिलाएं अपने समाज में जनजागृति का कार्य कर रही हैं लेकिन इनकी संख्या कम है। आदिवासी समाज की स्त्रियां सहयोग और प्रेरणा के साथ ही विकास–पथ पर आगे बढ़ सकेंगी।

(द) सुशीला टाकभौरे के लेखन में महिला चेतना–

स्त्री विमर्श पर कुछ वर्षों से बहुत चर्चा हो रही है। इस पर बहुत कुछ कहा और लिखा जा चुका है। स्त्री विमर्श और दलित स्त्री सबलीकरण जैसे विषय इक्कसवीं शताब्दी के प्रमुख विषय हैं, जिन पर लगातार लेखन और भाषण का काम चल रहा है। फिर भी समाज में पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की स्थिति आज भी कमजोर है। स्त्री वर्ग के सम्बन्ध में पुरुष वर्ग की मानसिकता आज भी नहीं बदली है।

सुशीला टाकभौरे जी ने अपने साहित्य में महिलाओं की वास्तविक स्थिति को उजागर किया है। उन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से स्त्री विमर्श पर महिलाओं की स्थिति पर विचार विमर्श किया है। ''स्त्री विमर्श के लिए की जाने वाली यात्राओं के समय मैनें देखा है– देश के लगभग सभी प्रान्तों की दलित महिलाओं की स्थिति लगभग एक जैसी है।''[50] घर के बाहर शोषण है, घर के अन्दर भी शोषण की शिकार है। आज भी छल बल के साथ उन पर अन्याय–अत्याचार किया जाता है।

वर्तमान में शायद ही विश्व का कोई ऐसा क्षेत्र होगा जिसमें स्त्री ने अपनी उपस्थिति दर्ज न की हो। ''स्त्री सदियों से पुरुष की गुलामी में ठीक उसी तरह जकड़ी रही है। जिस तरह भारत अंग्रेजों की गुलामी में''[51] लेकिन समय के साथ–साथ सब कुछ बदल रहा है। पुरुष प्रधान समाज में स्त्री–मुक्ति नारी स्वतन्त्रता तथा उनके अधिकारों को लेकर चाहे कितने बड़े दावे किये जायें, नारे लगाये जायें, सब व्यर्थ है। जब तक नारी स्वयं इस बात को नहीं समझती तब तक उसकी प्रगति हो ही नहीं सकती। नारी को समाज में सुरक्षा कैसे मिले, इससे बेहतर यह है कि वह सुरक्षित कैसे बने।

समय बदल गया है। परिस्थितियां बदल चुकी है। पढ़ी लिखी नारी अब विचारों की दृष्टि से सामर्थ्यवान हो गई है। कलम हाथ में आने से लेखन क्षेत्र में वह नारी जागृति का काम कर रही है। अब वह सभी प्रश्नों पर विचार कर सकती है, सभी बेड़ियों को तोड़ सकती है। ऐसा करने पर वह विवाद के घेरे में भले ही आ जाय किन्तु उसका महिला जागृति का उद्देश्य तो पूरा होगा। जहां कहीं भी स्त्री की स्थिति संतोषजनक रही हो वहां का समाज सभी दृष्टि से सम्पन्न कहलाता है। शायद इसीलिए एनी बेसेंट कहती हैं कि ''किसी भी देश की स्त्रियों की स्थिति से यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि देश कितनी उन्नति कर चुका है।''[52]

सुशीला टाकभौरे की लेखनी की धार तीव्र और तीखी हो चली है। इसका प्रमाण इनकी कृति 'तुमने उसे कब पहचाना' में मिलता है। पहला सवाल तो इनकी इस कृति में ही उठता

है। इसमें भोग्या नारी की दुर्दशा, उसके पैरों में धर्म के नाम पर डाली गई बेड़ियां, समाज में उत्पन्न रूढ़ियों को खुलकर चुनौती दी गई है। समाज में पुरुषसत्ता आदि पर सवाल उठाये गये हैं। इसी सन्दर्भ में उन्होंने कहा है कि– ''उपेक्षा की ठंडक और/आक्रोश के तेजाब से नारी व्यक्तित्व को हमेशा रौंधा जाता है।''[53]

किन्तु आज नारी स्वयं को पहचान चुकी है। अब वह अपने विचारों से अपने मन को रोशन करने लगी है। नारी अब जागृत हो चुकी है तभी तो कवयित्री कहती हैं– ''अब जानकी जान गयी है। अब वह धरती में नहीं आकाश में जाना चाहती है।''[54] यह संदेश सम्पूर्ण नारी जाति के लिए है। आज औरत ने अपने वजूद को पहचाना है इसलिए तो अब वह सजी संवरी मोम की गुड़िया नहीं है न ही पुरुष का खिलौना है बेबस अबला तो बिल्कुल भी नहीं है। अब तो वह स्वयं अपने पांव पर खड़ी है और अपने दृढ़ विचारों की जमीन को समझ रही है। रमणिका जी कहती हैं कि ''भारत का नारीवादी आन्दोलन पुरुष को अपना शत्रु नहीं मानता, वह उस स्त्रीवाद में विश्वास करता है जो पुरुष को अपना साथी मानता है और यह मांग करता है कि पुरुष भी स्त्री को साथी माने।''[55]

वैदिक काल से आज तक नारी को कभी अधिक और कभी कम अधिकार मिलते रहे हैं। मगर ये सभी हमेशा नारी धर्म द्वारा मर्यादित रखे गये हैं। आज भी नारी को जीवन के क्षेत्र में कई अधिकार प्राप्त है, मगर वह मुक्त रूप से उन अधिकारों का उपयोग नहीं कर पा रही हैं। सिमोन द बोडवार लिखती हैं– ''स्त्री और पुरुष एक दूसरे के लिए अनिवार्य होते हुए भी समानता के स्तर पर पारस्परिक नहीं होते क्योंकि औरत जाति ने कभी समानता के स्तर पर पुरुष जाति से कभी अनुबंधन और विनिमय किया ही नहीं। सामाजिक रूप से एक पुरुष बिल्कुल स्वतंत्र है और पूर्ण व्यक्ति होता। पुरुष का अस्तित्व उसके कामों से निर्धारित होता है जबकि औरत प्रजनन तथा गृहस्थी की परिसीमित भूमिका के कारण पुरुष के साथ समानता के स्तर तक नहीं पहुंचती ।''[56] जिस प्रकार से एक पुरुष का अपना मन होता है अपनी स्वतन्त्रता होती है, अपनी भावनाएं अपने विचार आदि होते हैं। ठीक उसी प्रकार स्त्री की भी अपनी भावनाएं होती है, मन होता है, स्वतन्त्रता होती है, स्वतन्त्रता विचार होते हैं। परन्तु इस पुरुष प्रधान सामाजिक व्यवस्था में स्त्री को केवल अबला परावलम्बी, परुष सुख का साधन मात्र माना गया है। ''आज स्त्री के बारे में बहुत कुछ लिखा जा रहा है। स्त्री और उससे
सम्बधित विषय पर इतना ज्यादा लिखा जा चुका है। प्राचीन और आधुनिक नारी की स्थिति में जो अंतर आता है, वो ऐसा जैसे किसी पुरानी किताब पर नया कवर चढ़ा दिया गया हो।''[57]

दरअसल समाज में स्त्री शुरू से ही अपनी अस्मिता, अपनी पहचान को लेकर असुरक्षा की भावना से ग्रसित है। सामाजिक प्रक्रिया के साथ वह अपना सन्तुलन नहीं बना पाती। आज देश 21 वीं सदी के दरवाजे पर दस्तक दे रहा है। समाज में महिलाएं आज भी अपने अस्तित्व

को लेकर संशकित है। इसी संदर्भ में रमणिका गुप्ता लिखती हैं। ''यदि पुरुष मानवीयता के दृष्टिकोण को आत्मसात कर ले तो उसे नारी मुक्ति की मुहिम परिवार मंजक नहीं लगेगी और न ही स्त्री की चाहना में उच्छृंखलता नजर आएगी''[58]

नारी समाज का महत्वपूर्ण आधा हिस्सा है, युग बीत गये हैं। मगर इस नारी वर्ग की आधार भूत स्थिति आज भी नहीं बदली है। दलित समाज में नारियों का शोषण अधिक होता है। दलित और नारी समाज ने इस दुख को सहा है लेकिन कहने का साहस तक नहीं जुटा पाये। पहली बात तो यह पुरुष वर्चस्व वाले इस समाज में स्त्री कहने का साहस जुटा पाये तो इनके लिए असह्य होगा। फिर उसमें अपनी प्रबल इच्छा शक्ति के बल पर स्त्री का पुरुष के कंधे से कंधा मिला कर चलना तो और भी कठिन होगा। इसके बारे में रामविलास शर्मा लिखते हैं– ''औरत के बारे में लिखना बेहद मुश्किल काम है। आम तौर पर हिन्दी के बुद्विजीवी औरत के सृजन को नहीं मानते। वे उसे घर चलाने और बच्चा पैदा करने की मशीन मानते हैं। औरत की स्वतन्त्र सत्ता है, पुरुष से भिन्न जीवन–संदर्भ है, यह बात हमारे अधिकांश लेखकों के गले नहीं उतरती।''[59]

सुशीला टाकभौरे की कृति 'हाशिए का विमर्श' में समाज के शोषित, पीड़ित, दलित समाज का वर्णन है। एक ऐसा समाज जो सदियों से ही हाशिए पर रहा है। ''उत्तर वैदिक काल में महाभारत, रामायण–काल में नारियों को घर से बाहर निकाल देना, जुंए में हार जाना कोई अचम्भे की बात नहीं थी।''[60] इन्हीं बातों से नारियों की दिशा और दशा का अंदाजा सहज रूप से लगाया जा सकता है। नारी को दबाने के अनेक कार्य इस काल में होते रहे हैं। हाशिए के विमर्श में दलित स्त्री पर लेखन कार्य किया गया है। नारी के दोहरे जीवन की व्याख्या की गई है। नारी हमेशा से ही बन्धनों में जकड़ी हुई है। ''परिवार में स्त्रियों को दिन–रात पुरुषों के अधीन रखा जाना सुनिश्चित किया जैसे–आयु के अनुसार पिता, भाई, पति अथवा पुत्र के संरक्षण में नारी हमेशा रहे।''[61] यदि स्त्री की रक्षा नहीं की गई तो माना जाता है कि वे पिता और पति दोनों के परिवारों के निन्दा, क्लेश और अपमान की कारण बनती है।

'हाशिए का विमर्श' लेख में सुशीला टाकभौरे ने बताया है कि दलित नारी दोहरे संताप को झेलती है। एक तो दलित और दूसरा नारी होने का। नारी घर और बाहर की दोहरी जिम्मेदारी उठाती है। इसी कारण अनेक बार संताप भोगना पड़ता है। इन्हीं सब परिस्थितियों से पीड़ित और परेशान स्त्री सोचने लगती है कि यह दोहरी जिम्मेदारी वह क्यों उठाये? महिलाएं आज प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों के बराबर योगदान दे रही हैं। फिर भी वह अंधेरे में ही हैं। आज की यह पूंजीवादी व्यवस्था उसे औरत बनी रहने के लिए अनुकूल वातावरण तैयार कर रहा है जिसे अब पहचानना होगा। अन्यथा स्त्री की तेजस्विता को सदैव के लिए नजर अंदाज किया जाएगा। सिमोन द बोउवार ने एक जगह लिखा है कि– ''स्त्री अपने को स्त्री की नजर से नहीं, पुरुष

की नजर से देखती हैं और इसलिए वह पुरुषों के अधीन में रहते हुए अपने तेज से परिचित नहीं हो पाती।''[62]

नारी वर्ग के लिए सबसे अधिक विपरीत स्थित तब आई जब मनुस्मृति को सामाजिक व विधिक मान्यता मिली। नारियों को उनकी दयनीय स्थिति में पंहुचाने के लिए हिन्दू धर्म ग्रन्थ भी उत्तरदायी रहे हैं। महिलाओं के उत्थान के विरोधी प्रतिबन्धों को धार्मिक रूप दे दिया। इनके भय के कारण नारी आन्दोलनों में भाग नहीं ले सकी। डॉ. अम्बेडकर नारी समाज को सबसे ज्यादा उपेक्षित, अपमानित और प्रताड़ित मानते थे। ''पूंजी के नग्नतम और क्रुर हाथों से जिन दो समूहों को सबसे ज्यादा तबाही का सामना करना पड़ रहा है। उनमें सबसे पहले स्त्रियां है और दूसरे नम्बर पर मजदूर वर्ग है।''[63]

आज की स्त्री अपने सामाजिक एवं पारिवारिक कर्त्तव्यों को पूर्ण करने के पश्चात आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी बनने हेतु घर की चार दीवारी को लांघ रही है। स्त्री– पुरुष दोनों बाहर काम करने जाते हैं। इससे स्त्रियों के मानसिक पक्ष को भावनात्मक प्रबलता मिलने में सहायता होगी। ''रोटी किताब और स्त्री जीवन के ये तीन अनमोल रत्न हैं। रोटी हमें जीवनदान देती है। किताबें पीढ़ियों को जोड़ती हैं महिलाएं हमारे जीवन सूत्र को बांधकर रखने में अहम् भूमिका निभाती हैं। इनमें से किसी एक के बिना भी जिन्दगी बेमानी हो जाती है।''[64]

स्त्री चिंतन का एक नया पर्व वर्तमान समय में शुरू हुआ है। स्त्री जो कभी हाशिए पर थी आज वह अपने सकारात्मक पक्ष को उजागर कर रही है। ग्रामीण महिलाएं शहरी महिलाओं की अपेक्षा अधिक साहस और संकल्प लिए होती है। इस सन्दर्भ में मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं ''गांव की स्त्रियों शहरी मध्यवर्ग की स्त्रियों की तरह अपनी स्वतन्त्रता पर विमर्श नहीं करती, स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न और संघर्ष करती है। इसलिए उनमें संकल्प से उपजी शक्ति का विकास होता है।''[65] ग्रामीण क्षेत्र में सामाजिक चेतना अन्याय के विरूद्ध संघर्ष करने की प्रवृति होती है।

सुशीला टाकभौरे जी की कृति 'रंग और व्यंग्य' में समाज की कुरीतियां, पुरुषसत्तात्मक समाज, स्त्री दास्य परम्परा सड़ी गली प्रथाओं का विवरण है। समाज में फैली अनीति बिखराव, स्वार्थलोलुपता, भौतिकवाद, उपभोक्तावाद ने जीवन के आदर्शों को ध्वस्त कर दिया गया है। इनके नाटक 'व्हील चेअर' में समाज की अपाहिज मानसिकता को उजागर किया है। 'व्हील चेयर' अपंग स्त्री मानसिकता की वास्तविकता है। जो परम्परा, सड़ी, गली प्रथाओं के साथ बंधे रहने की मजबूरी को दर्शाता है। 'चश्मा' नाटक एक प्रतीकवादी नाटक है। जो दृष्टी सोच विचार, नई चेतना, परिवर्तन का पर्याय है। स्त्री मुक्ति के संदर्भ में यह नाटक गहराई से सोचता है। स्त्री अस्तित्व को उजागर करता है। समाज में चश्मा नहीं दृष्टि बदलने की जरूरत है। अपने विचारों को सही दिशा देने की जरूरत है। मानसिकता में बदलाव होगा तो समाज को

सही दिशा मिलेगी। स्त्रियों को समाज में बराबरी का हिस्सा देना होगा ताकि प्रगति कर सके। गांधीजी ने घोषणा की थी कि ''स्वराज की विजय में भारत की स्त्रियों का उतना ही हिस्सा होना चाहिए जितना पुरुषों का''।[66]

नारी जागरण के ये विचार महिलाओं में सगजता और सक्रियता के प्रेरणास्त्रोत बने। स्त्री पुरुष की समानता पर बल देते हुए उन्होंने कहा– ''जिस रूढ़ि और कानून बनाने में स्त्री का कोई हक नहीं था और उसके लिए सिर्फ पुरुष ही जिम्मेदार है, उस कानून और रूढ़ियों ने स्त्री को लगातार कुचला है अहिंसा की नींव पर चले गये जीवन की योजना में जितना और जैसा अधिकार पुरुष को अपने भविष्य की रचना में है उतना और वैसा ही अधिकार स्त्री को भी अपना भविष्य तय करने का है।''[67]

सही मायने में नारी को समाज से समानता और मुक्ति नहीं बल्कि अपने संकीर्ण विचारों से मुक्ति चाहिए। शिक्षित और आधुनिक होने के पश्चात भी वे स्वयं समाज में असुरक्षित अनुभव करती हैं। आज नारी की अस्मिता को दबाया, कुचला जा रहा है। उसी का परिणाम है आज की नारी टूट रही है। नारी पुरुष की पत्नी नहीं वह परिस्थितियों की जननी है। वह धरती है, बिना धरती के कुछ उपजाया नहीं जा सकता। ''स्त्री राष्ट्र का बीज आधार है घर नर्सरी है, देश फसल काटता है।''[68] स्त्री को उस सांस्कृतिक सामाजिक भूमि की जरूरत है जहां वह अपने अस्तित्व का नवोन्मेष महसूस कर सकती है। खुली मानसिकता का अहसास कर सकती है। स्त्री को अपना स्थान, अपना सत्व चाहिए। महादेवी वर्मा के अनुसार ''हमें न किसी पर जय चाहिए, न किसी से पराजय। केवल अपना वह स्थान वे सत्व चाहिए, जिनका पुरुषों के निकट कोई उपयोग नहीं है। जिनके बिना हम समाज का उपयोगी अंग नहीं बन सकेंगी।''[69] स्वतन्त्र जीवन जीने की चाह, उन्नत–केरियर सुखी भविष्य की चाह में स्त्री बहुत बार भावनात्मक संकटों का शिकार हो जाती है।

स्त्री पुरुष की अपेक्षा स्त्री द्वारा कहीं अधिक शोषित है। निःसंदेह पुरुषों के बनाये नियमों के फलस्वरूप स्त्री की यह दशा है। किन्तु किसी भी रोग का निदान करने के लिए उसके मूल कारणों की अपेक्षा उसके लक्षणों व उनसे उत्पन्न हानियों को ही पहले ध्यान में लाना होता है। ठीक इसी प्रकार स्त्री समाज में आन्तरिक सुधार लाए बिना अपने अधिकारों के लिए पुरुष से लड़ने की बात है। श्रीमती व्होरा कहती हैं कि– ''स्त्री द्वारा स्त्री का शोषण असह्य है लांछन अपमान व कटु आलोचनाओं ने ही सदा प्रगति के पैर बांधे हैं। एक स्त्री में दूसरी स्त्री के प्रति सहयोग सहानुभूति की भावना की कमी ही उसके पतन का मुख्य कारण है। परस्पर कलह, द्वेष व ईर्ष्या की भावना से ही वह पुरुष की उपेक्षा व तिरस्कार की पात्र बनती है। अपनी हीन भावना के कारण ही वह अपनी दृष्टि में स्वयं गिरती है।''[70] शिक्षा के प्रसार व

दहेज विरोधी चेतना जागृत कर इस दिशा में एक सार्थक पहल की जा सकती है। इसी सन्दर्भ में सिमॉन द बोअवा कहती हैं कि– ''औरत होती नहीं, बनाई जाती है।''[71]

डॉ. अम्बेडकर के विचार है नारी को सम्माननीय और स्वतन्त्र स्थान दिए बिना भारतीय समाज उठ नहीं सकता, क्योंकि मनु के नियम सत्य से दूर है। जैसे, मनु के अनुसार ''पति अपनी पत्नी को बेच भी सकता है।''[72] यह देखकर ही अम्बेडकर इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ''भारतीय स्त्रियों की स्थिति के पतन के कारण मूलतः मनु है। मनु ने सामाजिक सिद्धान्तों को नियमबद्व करते समय नारी के प्रति न्याय और अन्याय के विषय में बिल्कुल नहीं सोचा। मनु ने भारतीय समाज में नारी की गरिमा को गिराया है और शूद्रों के प्रति अन्याय और दमन के सिद्धान्तों को अपनाया है।''[73] उन्होंने भारतीय समाज में नारी की दयनीय और उपेक्षित स्थिति को सुधारने का प्रयत्न किया। उन्होंने नारी समाज का स्वस्थ्य और शक्तिशाली अंग बनाने का प्रयत्न किया।

सुशीला टाकभौरे जी ने नारी के प्रति मनुवादी व्यवस्था पर सवाल उठाया है। डॉ. अम्बेडकर ने नारी को सशक्त बनाने के लिए 'हिन्दू कोड बिल' बनाया था। सामाजिक समता के आन्दोलन में उन्होंने स्त्री मुक्ति को प्रधान स्थान दिया था। डॉ. ज्योति लांजेवार के अनुसार ''अपने तैतीस कोटि देवी देवताओं के बीच बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर का केवल नाम भी यदि हिन्दू स्त्रियों ने लिया होता, तो उनका उद्धार अवश्य होता।''[74]

उन्होंने स्त्रियों को कर्मकाण्ड और अंधश्रद्धा से दूर रहने की प्रेरणा दी। सामाजिक बुराईयों को दूर करने और शिक्षा का दायित्व समझने वाली नारी की योग्यता को उन्होंने समझ लिया था। यह पुरुषों के साथ उनके प्रति समानता का भाव था। वे स्त्रियों को पुरुषों से अधिक योग्य मानते थे। ''18 जुलाई 1942 को नागपुर में पिछड़े वर्ग की महिलाओं को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा कि– किसी भी वर्ग की उन्नति का अनुमान उस वर्ग की महिलाओं की उन्नति को देखकर ही हो सकता है। शिक्षा, स्वच्छता, महत्वाकांक्षा, आत्मविश्वास, सीमित परिवार, पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलना और बराबरी का अधिकार मांगना–नारी के विशेष कर्तव्य हैं।''[75]

उन्होनें स्त्रियों को अपने अधिकारों के लिए संघर्ष की शिक्षा दी। ये अबला नारी को सबल शक्तिशाली बनाना चाहते थे। सुशीला टाकभौरे की कहानियों (मेरा समाज) में भी नारी शोषण के विविध चित्र देखते को मिलते हैं। इस में बताया गया है कि उस समय समाज में लड़कियों की अवस्था ऐसी थी कि आर्थिक अभाव के कारण वे आगे नहीं पढ़ पाती थी। शादी होने के बाद परिवार का खर्च उठाने के लिए उसको भी नौकरी करनी पड़ती है। कुछ लोग ऐसे भी है जो सारे दिन घर में खुद मौजमस्ती करते हैं और नौकरी के लिए पत्नी और बच्चों को भेज देते हैं। इस प्रकार के नारी शोषण को लेकर लेखिका बताती है– ''बहु नौकरी भी

करती है, घर का पूरा काम–खाना पकाना, खिलाना, मांजना, धोना सब करके अपने बाल बच्चों को संभालने की जिम्मेदारी भी निभाती है। इतना सब करके भी अधिकांश बहुओं को रात दिन पति की मार, सास की गालियां और ननदों के ताने ही मिलते रहते थे।''[76]

पुरुष अपना गुस्सा अपनी पत्नी पर ही निकालते हैं और बेचारी पत्नी पिटती रहती है। इस प्रकार के नारी शोषण के साथ लड़कियों की अवस्था ऐसी होती है कि वह– ''रोते–रोते घर का पूरा काम करती, खाना बनाती, सबको खिलाती कभी थोड़ा स्वयं भी खा लेती नहीं तो भूखी ही रह जाती है। वह अपने अच्छे दिनों की प्रतीक्षा इस तरह करती थी कि एक दो साल में शायद स्थिति बदल जायेगी या एक दो बच्चे होने पर उसे न्याय मिलेगा या बच्चे बड़े होने पर उसके दिन फिरेगें या फिर बहुंए आने के बाद स्थितियां बदल जाएगी– इसी प्रतीक्षा में पूरा जीवन निकल जाता था।''[77] नारी हमेशा से ही मुक्ति चाहती है पर किसी तरह का प्रयास नहीं करती है। ''भारतीय नारी ने आज आर्थिक विषमताओं और सामाजिक विसंगतियों के बावजूद परिवार में अपना निर्णय लिया है, ये बाहर के किसी भी स्त्री मुक्ति आन्दोलन से अलग है''[78]

'शिकंजे का दर्द' में दलित नारी शोषण का संघर्ष है जिस प्रकार कोई जानवर शिकारी के जाल में फंस जाता है और मुक्ति के लिए भीतर से दर्दनाक चीख बाहर निकलती है। वह जितना मुक्त होने के लिए छटपटाता है उतना ही उसमें उलझता जाता है। वैसे ही एक नारी अपने आप को शोषण से मुक्त होने के लिए छटपटाती है तो वह उसमें उतना ही फंसती जाती है। इस कृति में सुशीला टाकभौरे बताती हैं कि दलितों में भी दलित समझे जाने वाली नारी मनुवादी समाज, दलित समाज, मनुवादी मनोवृत्ति वाले समाज के शिकंजे में वह कई वर्षों से फंसी भीतर से मुक्ति के लिए छटपटाती अपने नारी जीवन को कोसने के लिए विवश दिखाई देती है। जन्म से लेकर मृत्यु तक आत्मपीड़न, पीड़ा, संत्रास, घुटन, अन्याय, अत्याचार, दुःख दर्द सहते–सहते आज की दलित नारी में आक्रोश और विद्रोह प्रकट हो रहा है। वह अपनी मुक्ति चाहती है इसी संदर्भ में एक कथन है– ''स्त्री विमुक्ति सामाजिक प्रगति का अनिवार्य हिस्सा है। यह केवल स्त्रियों का मामला नहीं। स्त्रियों की अधिकार सम्पन्नता न केवल स्वयं उनके जीवन को सकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकता है। बल्कि वास्तव में पुरुषों और उनकी संतानों पर भी प्रभाव डाल सकती है। जिन पर हमारे परिवार समाज और राष्ट्र का भविष्य निर्भर है।''[79] शिकंजे से मुक्ति का एक मात्र आधार है शिक्षा।

सुशीला टाकभौरे के समय स्त्रियों को पढ़ाने लिखाने का रिवाज नहीं था। दलितों में लड़का हो या लड़की पढ़ाने की रूचि नहीं थी। लड़कियों को तो पाल–पोसकर उनका विवाह करने तथा ससुराल में पति की सेवा और जाति का काम करना ही कर्तव्य समझा जाता था। सुशीला जी के माता–पिता और नानी ने अच्छी तरह से समझ लिया था कि जातिभेद, छुआछूत, मनुवादी शोषण से मुक्ति पाना है तो सब कुछ भूलकर अपमान उपेक्षा, प्रताड़ना सहते हुए शिक्षा

ग्रहण करनी ही होगी सुशीला जी इसी दर्द को व्यक्त करते हुए कहती है। ''सच यह था–कब आया यौवन, जान ना पाया मन। शिकंजे में जकड़ा जीवन कभी मुक्त भाव का अनुभव ही नहीं कर पाया। जिन्दगी एक निश्चित की गई लीक पर चलती रही। वह उंमग कभी मिली ही नहीं जो यौवन का अहसास कराती। उम्र के कटु अनुभूतियों के दंश महसूस होते रहे। पीड़ा से छटपटाता मन मुक्ति का ध्येय का लेकर आगे बढ़ता रहा। तब मुक्ति का मार्ग मैनें शिक्षा प्राप्ति को ही माना था।''[80] मनुवादी हिन्दु धर्म से सुशीला जी ने अपने जीवन मे बहुत दुःख सहा।

नारी वर्षों से दोहरी जिन्दगी जीने के लिए विवश है। समाज और परिवार दोनों के शोषण के पाटों में वह सदा से ही पिसती चली आ रही है। दलित स्त्री तो इससे भयावह स्थिति से गुजरते हुए दिखायी देती है। सुशीला जी इस कृति में बताती है कि उनका विवाह अपनी उम्र से बड़े व्यक्ति से साथ हुआ था। उम्र में कई साल बड़े होने के बावजूद उन्होंने उनसे आधुनिक विचारों के होने के कारण विवाह किया था। किन्तु जल्द ही उनका भ्रम टुटे हुए काल की तरह चकनाचूर हो गया। वह वही सदियों से चली आ रही पुरुषीय मानसिकता स्वामित्व गुलामी, ताड़ना, मारना, पीटना, पैरों की जूती समझना, नौकर सा बरताव करना आदि का शिकार होती है। वे अपने इस दर्द को व्यक्त करते हुए कहती हैं ''स्कूल से या बाहर से आने के बाद कभी–कभी टाकभौरे जी मेरे सामने पैर लम्बे कर देते। मेरा ध्यान न रहने पर हाथों से ईशारा करके जूते उतारने के लिए कहते। मैं चुपचाप उनके पैरों के पास बैठकर जूते के फीते खोलती, जूते उतारती, मोजे उतारती। यह बात मुझे अजीब लगती थी।''[81]

लेकिन वो उस गुलामी को कहां सहने वाली थी। वे बचपन से ही मुक्ति के लिए संघर्ष कर रही थी। पति द्वारा बार–बार किये जाने वाले अत्याचार से तंग आ चुकी थी। एक बार जब खर्चों के संदर्भ में उनके पति ने चप्पल निकाल कर उन्हें मारने की कोशिश की तक भीतर का आक्रोश, विद्रोह, प्रतिरोध, क्रांति के रूप में भड़क उठा, उन्होनें उसी चप्पल से अपने पति को शांत किया था।

आज भारत के कई घरों में स्त्री पति द्वारा पीड़ित दिखायी देती है। डॉ. सरजू प्रसाद मिश्र इस संदर्भ में कहते हैं– ''ज्यादातर काम–काजी स्त्रियों का स्वयं का अपनी कमाई पर अधिकार नहीं है, उसे खर्च करने का निर्णय उनके हाथ में नहीं है अधिकतर उनकी कमायी पति, पिता या परिवार के पुरुष सदस्य हथिया लेते हैं और बाहर नौकरी करना उनके लिए मजबूरी बन जाती है। इस प्रकार से घर और बाहर के दोहरे काम का बोझ उठाते हुए वे दोहरे शोषण की शिकार होती हैं।''[82]

अंततः हम कह सकते हैं कि दलितों में दलित समझी जाने वाली नारी उपेक्षा प्रताड़ना, पीड़ा, दुख, संत्रास के अन्याय के शिंकजे के दर्द को सहते हुए नारी मुक्ति के लिए भीतर का

आक्रोश प्रतिशोध, विद्रोह के रूप में प्रकट होता है। वह समझ गई कि मनुवादी गुलामी से निकल कर स्वयं और समाज का यदि सही मायने में विकास करना है तो समाज में परिवर्तन की लहर लानी होगी। यह परिवर्तन जल्द ही आयेगा जब शिक्षा आन्दोलन का हथियार हाथ में होगा।

संदर्भ सूची–

1. गांधी और महिला सशक्तिकरण, अंक 27 प्रकाशन विभाग– नई दिल्ली
2. आशा कौशिक नारी सशक्तिकरण पूर्णांक पृ. सं.– 287
3. महिला सशक्तिकरण एवं लिंगभेद (डॉ. ऋचा राज सक्सैना) पृ. सं.– 154
4. वहीं पृ. सं.– 155
5. यंग इण्डिया
6. स्त्री विमर्शः भारतीय परिप्रेक्ष्य (डॉ. के.एम.मालती) पृ. सं.– 74
7. कंवल भारती दलित विमर्श की भूमिका पृ.सं.– 72
8. नारी चेतना और कृष्णा सोबती के उपन्यास, डॉ.गीता सोलंकी पृ. सं.– 14
9. नारी मुक्ति और नारी आन्दोलन, कृष्णा सोबती पृ. सं. –29
10. नारी जैनेन्द्र कुमार– पृ. सं.– 44
11. द एन साइक्लोपीडिया ऑफ फिलॉसॉफी, एच.जे. आइसेंक पृ. सं.–8
12. वर्तमान हिन्दी महिला कथा लेखन और दाम्पत्य जीवन, साधना अग्रभूमि
13. स्त्रीवादी साहित्य विमर्श– जगदीश्वर चतुर्वेदी, पृ.सं.– 07
14. सीमेन द बोडवार स्त्री उपेक्षिता हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा. लिमिटेड, दिल्ली–32 पृ.सं.–32
15. भारतीय संस्कृति के स्वर– महादेवी वर्मा पृ.सं.– 36
16. महिला शोषण एवं मानवाधिकार सुधार– श्रीवास्तव पृ.सं.– 72
17. नारी शोषण एवं समाधान पृ.सं.– 76
18. त्होरा आशारानी (2008) आधी दुनिया का सच, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली पृ.सं.–60
19. राज गोपाल (1936)इंडियन वूमेन इन दी न्यू एज मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली पृ.सं.–195
20. राजस्थान पत्रिका पृ.सं.–07
21. कंवल भारती दलित विमर्श की भूमिका पृ.सं.– 73
22. भारत का संविधान, पृ.सं.– 88–91
23. डी.डी.बसु–भारत का संविधान, पृ.सं.– 88–91
24. नारी मुक्ति और नारी मुक्ति आन्दोलन कृष्णा सोबती पृ.सं.– 29

25. साहित्य विमर्श – जगदीश्वर चतुर्वेदी पृ.सं.– 07
26. दलित शिखरों के साक्षात्कार (डॉ. यशवन्त विरोदय पृ.सं.– 220)
27. प्रेमचन्द के नारीपात्र– ओमप्रकाश अवस्थी।
28. दलित साहित्य का मूल्यांकन – डॉ.चमनलाल नई दिल्ली पृ.सं.– 79
29. दलित स्त्री आन्दोलन का ऐतिहासिक अवलोकन–डॉ. विमल थोरात दलित अस्मिति जनवरी–जून 2012 पृ.सं.– 26
30. दलित साहित्य – डॉ. जयप्रकाश कर्दम पृ.सं.–42
31. दलित शिखरों के साक्षात्कार– पृ.सं.– 211
32. ध्वजारोहण कर रही महिला सरपंच को निर्वस्त्र कर मारा–पीटा, राष्ट्रीय सहारा 19.08.1998
33. दलित स्त्री आन्दोलन का ऐतिहासिक अवलोकन–डॉ. विमल थोरात दलित अस्मिति जनवरी–जून 2012 पृ.सं.– 27
34. दलित स्त्री और साहित्य लेखन (हाशिये का विमर्श) पृ.सं.– 95
35. हाशिए का विमर्श (सुशीला टाकभौरे) पृ.सं.– 135
36. स्त्रियों के उत्थान में डॉ. अम्बेडकर का योगदान पृ.सं.–127
37. आदिवासी साहित्य– डॉ. खन्ना प्रसाद अमीन पृ.सं.– 175
38. आदिवासी साहित्य–डॉ. खन्ना प्रसाद अमीन पृ.सं.– 16
39. आदिवासी साहित्य– डॉ. खन्ना प्रसाद अमीन पृ.सं.– 173
40. हाशिए का विमर्श– डॉ. सुशीला टाकभौरे पृ.सं.– 172
41. आदिवासी समाज में स्त्रियां समस्या और समाधान– डॉ. सुशीला टाकभौरे पृ.सं.– 173
42. आदिवासी संस्कृति में स्त्री का दर्जा – डॉ. अमीन पृ.सं.– 163
43. राजकिशोर–स्त्री के लिए जगह 119 वाणी प्रकाशन
44. आदिवासी विमर्श–डॉ. रमेश चन्द मीणा पृ.सं.– 64
45. आदिवासी संस्कृति में स्त्री का दर्जा–रमणिका गुप्ता पृ.सं.– 161
46. आदिवासी विमर्श– डॉ. रमेश चन्द मीणा पृ.सं.– 61
47. आदिवासी विमर्श–डॉ. रमेश चन्द मीणा पृ.सं.– 76
48. आदिवासी समाज में स्त्रियां, समस्या और समाधान– डॉ. सुशीला टाकभौरे पृ.सं.– 177
49. दलित एवं स्त्री विमर्श का ऐतिहासिक संदर्भ–बयान पत्रिका पृ.सं.–17
50. दलित शिखरों के साक्षात्कार– डॉ. यशवन्त वीरोदय–पृ.स. 209
51. स्त्री विमर्श एक सिंहावलोकन– के. शक्तिराज– पृ.स. 38
52. युद्धरत आम आदमी–पृ.स. 39

53. तुमने उसे कब पहचाना–सुशीला टाकभौरे–पृ.स. 12
54. तुमने उसे कब पहचाना–सुशीला टाकभौरे–पृ.स. 13
55. हंस पत्रिका–दिसम्बर 2012 पृ.स. 79
56. स्त्री विमर्श एक सिंहावलोकन– के. शक्तिराज– पृ.स. 39
57. युद्धरत आम आदमी– दिसम्बर 2015 पृ.स. 51
58. हंस पत्रिका–दिसम्बर 2012 पृ.स. 79
59. स्त्री अस्मिता साहित्य और विचारधारा– जगदीश्वर चतुर्वेदी पृ.स. 298
60. बयान पत्रिका सितम्बर 2012– पृ.स. 17
61. हाशिए का विमर्श–सुशीला टाकभौरे–पृ.स. 93
62. समीक्षा अक्टूबर–दिसम्बर 2010–पृ.स. 45
63. स्त्री अस्मिता साहित्य और विचारधारा– जगदीश्वर चतुर्वेदी पृ.स. 7
64. औरत एक समाज शास्त्रीय अध्ययन–ज्ञानेन्द्र रावत–पृ.स. 11
65. कथा में गांव संवाद– सुभाषचन्द्र कुशावाहा पृ.स. 6
66. यंग इंडिया– 15.12.1929 पृ.स. 127
67. मेरे सपनों का भारत 1995 पृ.स. 236
68. औरत एक समाज शास्त्रीय अध्ययन–ज्ञानेन्द्र रावत– पृ.स. 87
69. महादेवी वर्मा श्रृखला की कड़ियां– पृ.स. 22
70. औरत एक समाज शास्त्रीय अध्ययन–ज्ञानेन्द्र रावत– पृ.स. 19
71. औरत एक समाज शास्त्रीय अध्ययन–ज्ञानेन्द्र रावत–पृ.स. 21
72. स्त्रियों के उत्थान में डॉ. अम्बेडकर का योगदान– पृ.स. 122
73. द राइज एण्ड फाल ऑफ द हिन्दू वूमन– डॉ. अम्बेडकर– पृ.स. 26
74. फुले अम्बेडकर स्त्री मुक्ति हलचल–ज्योति लांजेवार– पृ.स. 1
75. हाशिये का विमर्श–सुशीला टाकभौरे– पृ.स. 127
76. मेरा समाज सुशीला टाकभौरे– पृ.स. 30
77. मेरा समाज सुशीला टाकभौरे– पृ.स. 30–31
78. कृष्णा सोबती, हिन्दूस्तान 16 जनवरी 2000
79. जयन्ती आलम, मेन स्ट्रीम वार्षिकी 1999
80. शिकंजे का दर्द– सुशीला टाकभौरे– पृ.स. 114
81. सुशीला टांकभौरे– शिंकजे का दर्द– पृ.स. 141
82. प्रो. सरजू प्रसाद मिश्र– हिन्दी लेखिकाओं की आत्मकथाएं– पृ.स. 26

दूसरा अध्याय

सुशीला टाकभौरे की कविता में दलित महिला चेतना

2. सुशीला टाकभौरे की कविता में दलित महिला चेतना–

दलित कविता ने जिस मुखरता से और विश्वास के साथ अपनी संघर्ष यात्रा को इस मुकाम तक पहुँचाया है। समाज में व्याप्त हजारों साल के शोषण–दमन की यातना से मुक्ति की छटपटाहट दलित कविता में नजर आती है। यही दलित कविता की पहचान है। दलित साहित्य में दलित कविता समाज में जागृति का संदेश देती नजर आ रही है। दलित साहित्यकार लगातार अपने दलित काव्य संग्रह लिखते जा रहे हैं। इनमें दलित कवि अपनी–अपनी मनोव्यथा वेदना –संवेदना अभिव्यक्त कर रहे हैं। इनमें शोषण, अन्याय के विरूद्व विद्रोह करने का भाव नजर आता है। इनकी कविताओं का विषय वे दलित जातियां है। जो आज भी अज्ञान और भ्रम के अंधेरें में भटक रहे हैं। वे शोषण उत्पीड़न के शिकार है। शिक्षा प्रगति से आज भी दूर दलित शोषित जीवन जीने को मजबूर है। यही हालात दलित स्त्री कविता की ओर ईशारा करते हैं। दलित कविता में नारी का आज भी वही रूप नजर आता है। जो सोलहवीं सदी में था। लेकिन आज नारी शक्ति सम्पन्न होने का अहसास करा रही है। वह अपने आपको शोषण अत्याचार से मुक्ति दिलाने में संघर्षरत है। समाज में उनके खिलाफ पुरुषसत्ता के नियम बने हुए हैं उनका मुंहतोड़ जवाब दे रही हैं।

दलित स्त्री कविता जहां एक ओर दलित स्त्री शोषण की चक्की में पिसती नजर आ रही है। वहीं दूसरी ओर अपने आपको आत्म निर्भर बनाने, सुरक्षित करने में समर्थ हो रही है। वर्तमान में दलित लेखन निरन्तर नये मानदण्ड निर्मित कर रहा है। जहाँ दलित लेखन में जहां पुरुषों की अपेक्षा स्त्री की भूमिका कम नजर आ रही है। दलित लेखकों में श्योराज सिंह बेचैन, अनिता भारती, विमल थोरात, मोहनदास नैमिशराय, सुशीला टाकभौरे, रमणिका गुप्ता आदि नाम उल्लेखित है। इन्होंने दलित लेखन का केन्द्र बिन्दु उन दलितों को माना है जो आज भी हाशिए पर नजर आते हैं। जहाँ तक साहित्य में दलित स्त्रियों की सीधी उपस्थिति का सवाल है वह अभी भी पीछे है। इन कारणों की तलाश करते हुए साहित्यकार श्योराजसिंह बेचैन कहते हैं– ''हिन्दी में दलित लेखन में रचनाशील स्त्रियों की अनुपस्थिति को समझने के लिए भारतीय समाज में स्त्रियों की दशा को जानना जरूरी है। अभी तो दलित साहित्य में दलित ही मुख्य धारा में अपनी जगह बनाने के लिए संघर्ष कर रहा है।''[1] वहीं दूसरी ओर दलित स्थिति को स्पष्ट करती हुई सुशीला टाकभौरे कहती हैं– ''जो दलित रेखा से नीचे के लोग है वो इक्कसवीं सदी के काल में अपनी पुरानी स्थिति से जरा भी ऊपर नहीं उठ सके है। अभी भी उनकी स्थिति वहीं है जो पहले थी''[2] दलित साहित्य लेखन में सुशीला टाकभौरे की अहम भूमिका रही है। वे लगातार दलित और दलित स्त्री जीवन को अपनी लेखनी के माध्यम से

समाज में उजागर कर रही हैं। उनके लेखन में दलित का वही दुख नजर आता है जो उन्होंने स्वयं झेला है। इनके चार काव्य संग्रह है पहला 'हमारे हिस्से का सूरज' में दलित जातियों की यातना, समस्या और उनकी वर्तमान स्थिति कैसी है, का स्वर उभरता नजर आता है। इसी के साथ समाज परिवर्तन का संदेश भी नजर आता है।

दूसरे काव्य संग्रह 'यह तुम भी जानो' में युवा पीढ़ी को रूढ़ि परम्पराओं को तोड़ने का संदेश दिया है। इस काव्य संग्रह में दलित विमर्श और नारी विमर्श का विशेष रूप से अध्ययन किया गया है। तीसरा काव्य संग्रह 'तुमने उसे कब पहचाना' है जो दलित पीड़ित स्त्री का विवरण है। इस काव्य संग्रह में दलित नारी रूढ़ियों को तोड़कर पुरुष सत्ता को खुलकर चुनौती रही है। इनका चौथा काव्य संग्रह 'स्वाति बूंद और खारे मोती' है। इस काव्य संग्रह में समाज और संस्कृति से जुड़े कई सवालों पर गहराई से विचार किया गया है। इनके काव्य संग्रहों में दलित समाज की टीस, पीड़ा, चीत्कार है। इनके काव्य संग्रह में दर्शाया है कि मुख्यधारा की परम्परा और संस्कृति दलितों को कितना पीछे धकेलती है।

हिन्दी दलित साहित्य की सर्वश्रेष्ठ महिला साहित्यकार डॉ. सुशीला टाकभौरे ने अपनी कविताओं के माध्यम से दलितों की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा शैक्षिक चित्रण के साथ उच्च वर्ग के प्रति विद्रोह को स्पष्ट किया है। उनकी अधिकतर कविता अम्बेडकरवादी विचार धारा पर आधारित है। उनकी रचनाओं में शोषण के प्रति अन्याय के विरूद्व आवाज उठाई है। नारी मन के अन्तर्द्वन्द का चित्रण कविताओं का मुख्य विषय रहा है। इनकी कविताओं में समाज में व्याप्त जातिभेद सामाजिक असमानता छुआ–छूत की भावना और दलित समाज के पीड़ित व्यक्ति द्वारा भोगे हुए अनुभवों की धारा है।

आज के इस युग में भी समाज में जातिभेद की भावना पूरी तरह से मिट नहीं पायी है। समाज में जातिवाद के बंधन काफी सुदृढ़ दिखाई दे रहे हैं। सुशीला जी की कविताओं में जातिभेद की समस्या दिखाई देती है। जात–पांत या वर्ण व्यवस्था को जन्म के आधार पर नहीं स्वीकार करना चाहिए क्योंकि मनुष्य जाति है। वर्ण व्यवस्था के आधार पर जिस जाति का सबसे ज्यादा अपमान हुआ है। वह है दलित जाति। दलित जाति का शोषण हर वर्ग द्वारा हुआ है। चाहे– वह ब्राह्मण हो या राजपूत। सामान्य अर्थों में दलित वह है जो भारतीय समाज व्यवस्था में अस्पृश्य माना गया हो। बेगार करते, कम मूल्य पर श्रम करते श्रमिक, बंधुआ मजदूर जिसका आर्थिक शैक्षणिक, सामाजिक, राजनीतिज्ञ, धार्मिक शोषण हुआ है वह दलित परिधि में आता है।

दलित चेतना का सरोकार इस प्रश्न के साथ जुड़ा है कि मैं कौन हूँ? मेरी पहचान क्या है? दलित साहित्य केवल दलितों के अधिकार एवं मूल्यों तक ही सीमित नहीं है। बल्कि समूचे समाज की अस्मिता और मूल्यों की पहचान बनाता है। दलित साहित्य मुक्ति आन्दोलन का एक

हिस्सा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित की पहचान को एक सरल और सामान्य शब्द में परिभाषित करने का प्रयास करते हैं–''दलित शब्द का अर्थ है–जिसका दलन और दमन किया गया है, दबाया गया है। उत्पीड़न, शोषित, सताया हुआ, गिराया हुआ, उपेक्षित, घृणित, रौंदा हुआ, मसला हुआ, विनष्ट मर्दित पस्त, हिम्मत हतोत्साहित वंचित आदि। अगर स्पष्ट कहा जाए तो वर्ण –व्यवस्था ने जिसे अछूत या अंतज्य श्रेणी में रखा है वह दलित है।''[3]

दलित साहित्य की कविता दलित जागृति का संदेश दे रही है। दलित कविता संग्रह लगातार छप रहे हैं। इनमें दलित कवियों की अपनी –अपनी अनुभूतियों और वेदना–संवेदना की प्रस्तुति हो रही है। इनका मूल आधार अम्बेडकर विचारधारा है। इनमें शोषण अन्याय के विरूद्व विद्रोह और दुश्मनों को ललकारने की चेतना है। इनमें कहीं यातना के स्वर है, कहीं चेतना के स्वर हैं। कहीं शोषकों को धिक्कार है तो कहीं अन्याय के विरुद्व अत्याचारियों से बदला लेने की हुंकार है। दलित कविता के विषय, भाव एक जैसे होने के बाद भी वे अलग –अलग क्षेत्रों में अलग –अलग दलित वर्ग को भोगी हुई पीड़ा की जानकारी है। दलित कविता में समाज के दलितों की जो वास्तविक स्थिति है उसको व्यक्त किया गया है।

(अ) 'हमारे हिस्से का सूरज' काव्य संग्रह–

सुशीला टाकभौरे ने अपने कविता संग्रह 'हमारे हिस्से का सूरज' में दलित जातियों की यातनाओं, समस्याओं और वर्तमान स्थिति को स्वर दिया है। हिन्दू धर्म से जुड़ी इन दलित जातियों के समक्ष अनेक प्रश्न उठाये हैं दुर्भाग्य से अपने वाजिब हक पाने के लिए सचेत किया है। उनकी समस्याओं का हल सुझाया गया है। दलित शोषण आज भी जारी है। प्रतिदिन ऐसी घटनाएं घट रही है। सवर्ण जातियां आज भी दलितों को भयभीत रखने के लिए अमानवीय अत्याचार करती है। कहीं उन्हें जिन्दा जलाया जाता है तो कहीं उनकी बस्तियों में आग लगा दी जाती है। कानून और पुलिस की सुरक्षा व्यवस्था सवर्णों की मदद करती है। दलितों को कहीं न्याय नहीं मिलता। भारतीय सामाजिक संरचना में विषमतावादी तत्व के पीछे मनु की स्मृति रही है। टाकभौरे की कविता स्वयं को पहचानों में इसी तरह ईशारा किया गया है।

''हमारी जाति हमारा धर्म हमारा भविष्य
हमारा कर्म।
मनुस्मृति काल से आज तक
अपनी जगह पर अटल''[4]

इसी मनुस्मृति के आधार पर आज तक दलित अपने हक से वंचित रहे हैं। दलितों को वो सम्मान समाज में नहीं मिला जो मिलना चाहिए, जो अन्य समाज को मिल रहा है। दलित इसी मनुस्मृति काल के कारण पिछड़ता रहा है। क्योंकि वह कभी अपने बारे में सोचता नहीं है। जब सोचता है तो यही सोचता है कि हमारे पूर्वजों ने भी इस विषय पर गंभीरता से नहीं सोचा है। 'आक्रोश' कविता में यही बताया है–

''स्मृति काल से जो
उपेक्षित अमानव माना गया
उसे आज तक क्या मिला?
सोचा कभी आपने''[5]

जहां स्वर्ण दलित समाज के साथ अमानवीय व्यवहार करता है। छुआछूत करता है। वहीं पर दलित को अपना छोटा होना महसूस होता है दलित प्रार्थना की कुछ पंक्तियाँ–

''हे प्रभु तेरे स्वर्ण भक्तों के
चरणों से मन्दिर गंदा न हो जाए
इसलिए हम हर रोज सुबह मन्दिर के आंगन को
झाड़– पोंछ कर साफ करते हैं।''[6]

सैकडों वर्षों से सवर्ण सभी अधिकारों, सुविधाओं और संसाधनों के अधिकारी बने बैठे हैं। अधिकारों और धन से सम्पन्न वे किसी भी स्थिति में दलित समाज को अपनी बराबरी पर नहीं आने देना चाहता है। सवर्ण समाज हमेशा से ही अपने को उच्च और शेष सभी को निम्न बनाकर रखना चाहता है। सुशीला टाकभौरे जी इन दलितों को अपनी स्थिति से अवगत करना चाहती हैं। 'यातना के स्वर' कविता की कुछ पंक्तियां–

''दलित–पीड़ित, अपाहिज पीढियां
न कुछ समझ पाई, न कुछ कह पाई
अपना दुख दर्द
अन्याय अत्याचार को समझती रही
जीवन का यथार्थ।''[7]

दलित साहित्य से दलित को अपनी गुलामी का अहसास हुआ है। दलित अपने हो रहे शोषण को पहचानने लगे हैं। दलित साहित्य सत्य समाज का दर्पण है। दलित साहित्य में कहीं शोषकों का धिक्कार है तो कहीं अन्याय के विरूद्व अत्याचारियों से बदला लेने की हुंकार है। सुशीला टाकभौरे की कविता 'भ्रमजाल' की कुछ पंक्तियां–

''जिस धर्म का आधार
अन्याय अत्याचार है

शोषण और आडम्बर है
ऐसे धर्म को धिक्कार है।''[8]

दलित अब तक की सदियों को अपने पूर्वजों की पीठ पर ढ़ोई हुई सदियां मानते हैं। दलित अपने पूर्वजों का ही अनुसरण करते आ रहे हैं। दलित कविता उनके जीवन में एक नया सवेरा जगा रही है। दलित कविताओं के माध्यम से ये अपने सदियों से चले आ रहे शोषण के खिलाफ हो। कृष्ण कुमार भूना की कविता (ढ़ोई हुई सदियां) इसी ओर इंगित करती है।

''मेरे पूर्वज। ब्राह्मणवादी युग
उत्तर वैदिक काल से ढ़ोते आए हैं
सदियां। एक बोझ की तरह।''[9]

दलित जातियां पीढ़ी दर पीढ़ी सफाई के पेशे से जुड़ी हैं। अपने आत्म सम्मान से अनभिज्ञ वे उन्नति का मार्ग समझ नहीं पाती हैं। वे अपनी उन्नति के विरोधी दुश्मनों से ही अपनी प्रगति के लिए मदद मांगती रहती हैं। परिणाम स्वरूप उन्हें प्रगति का मार्ग नहीं दिखाया जाता, मात्र दया सहानुभूति और संवेदना के द्वारा बहला कर अपनी स्थिति पर ही संतोष करने की शिक्षा दी जाती है। 'हमारे हिस्से का सूरज' कविता की कुछ पंक्तियां–

''सदियों की गुलामी है
ऊपर देखने की आदत ही नहीं है
कैसे देखेंगे क्रान्तिसूर्य को
कैसे समझेंगे
जागृति और परिवर्तन के प्रकाश को ।''[10]

इस तरह समय के साथ शताब्दियां बीत रही हैं। मगर दलितों में दलित इन जातियों की सामाजिक आर्थिक, शैक्षणिक, राजनैतिक और धार्मिक स्थिति में परिवर्तन नहीं हो सका। ये दलित जातियां अलग–अलग नामों से जानी जाती है। कहीं इनको अछूत कहा जाता है कहीं इनको वाल्मीकि कहा जाता है। लेकिन ये सब दलित जातियां ही है जो आज भी अपमानित और शोषित है 'अछूत' कविता की कुछ पक्तियां–

''वे अछूत है। उन्हें न हवा हिला सकती है
वे सब जगह हैं। घर में, गली में। गांव में शहर में
जन्मी अजन्मी सोच में। उन्हें कोई छू नहीं सकता
सब जानते है। वे कौन है। पर सब चुप हैं।''[11]

दलितों में अधिकतर ने डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर की विचारधारा को अपनाया है। वे प्रगति के मार्ग पर बहुत आगे बढ़ गये हैं। स्वतन्त्रता के बाद देश समाज व्यवस्था और शासन व्यवस्था में परिवर्तन आया है। 'हम दलित' कविता की कुछ पंक्तियां–

''हम दलित बरसों से
दया सहानुभूति के चिथड़ों में
लिपटे हुए थे। पर उन
चिथड़ों को हमने उतार फेंका है।''[12]

स्वतंत्र भारत के समतावादी संविधान में दिए गये अधिकारों से देश के अछूत, शुद्र, दलितों की स्थिति में बहुत परिवर्तन आया है। लेकिन दलितों में कुछ ऐसी भी जातियां है जो गांधीवादी अछूतोद्वार के भ्रम में फंसकर आज भी अम्बेडकरवादी विचारधारा से अलग है। इसी सन्दर्भ में 'अभावों की दुनियां में' कविता की कुछ पंक्तियां इसी और ईशारा कर रही हैं–

''सदियों से अशिक्षित ये लोग
नहीं समझ पाते हैं
दुश्मनों की कूटनीति की चाल
बेबस रखकर उन्हें नकारना चाहते है वे
बाबा साहब का संघर्ष।''[13]

दलित जातियां और उनका समुदाय प्रगति परिवर्तन से दूर रहा है। वे अज्ञान और भ्रम के अंधेरे में भटक रहे हैं। वे शोषण उत्पीड़न के शिकार, शिक्षा संगठन से दूर, आज भी दलित शोषित जीवन जी रहे हैं। क्यों कि वे समाज में वर्ण व्यवस्था के शिकार रहे हैं। ऊंची जाति के लोग इनको कभी ऊपर उठने भी नहीं देते। हमेशा उनके साथ भ्रमजाल फैलाकर रखते हैं ताकि यथार्थ का अनुभव नहीं कर सके। इसी स्थिति को व्यक्त करती कुछ पक्तियां–

''वश चले तो पेड़ों को भी ब्राह्मण शूद्र बना डाले
पहाड़ घाट और नदियों को भी ऊंच–नीच जना डाले
बंटवारे से राज कर रहा इस देश का शैतान''[14]

गांधीजी के प्रभाव के कारण जो डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा से नहीं जुड़े उनमें वाल्मीकि जाति और अन्य सभी सफाईकर्मी जातियां है। उनके बहुत कम लोग शिक्षित होकर अच्छे पदों पर पहुंचते हैं। शेष सम्पूर्ण समाज अपनी पुरानी स्थिति की दलदल में फंसा दिन–प्रतिदिन अधोगति की ओर बढ़ रहा है। ये उसी गांधीवादी और मनुवादी सोच का अनुसरण कर रहे हैं। वे इस बात से अनजान है। इसी को स्पष्ट करती हुई 'मनु का मकसद' कविता की कुछ पंक्तियां–

''मनु का मकसद मैं दलितों में रोटी बाटूं
अम्बेडकर का मकसद कोई हाथ न फैलाए''।[15]

दलित समाज के लोग अभावों में जीते हैं। अन्याय और अपमान सहन करते हैं। छुआछूत भी इनकी जिन्दगी के अंग की तरह ही है। इसी छुआछूत के खिलाफ डॉ. बाबा साहेब

अम्बेडकर ने बौद्व धर्म का रास्ता दिया था। लेकिन फिर भी दलित जातियां हिन्दू धर्म से मुक्त नहीं हुई, हिन्दू धर्म की गलत धारणाओं से मुक्त नहीं हुई। दलित समाज इनसे मुक्त होने की कोशिश करता है। उतना ही गहरा इनमें डूबता जाता है। इसको स्पष्ट करती सुशीला टाकभौरे की कविता 'सच' की कुछ पंक्तियां–

''सागर बड़ा है
उसका तट बड़ा है
उसी तरह
गुलामी की हमारी बेड़ियां
अन्याय अत्याचार की रूढ़ियां बड़ी हैं।''[16]

दलित साहित्य का उद्देश्य रहा है– दलितोत्थान। दलित चिन्तन को लेकर विमल कीर्ति लिखते हैं–''दलित समाज में सामाजिक क्रान्ति की चेतना की मानसिकता, परिवर्तन की मानसिकता पैदा करना, अन्याय के खिलाफ संघर्ष की भावना पैदा करना, उसी प्रकार सकारात्मक बोध पैदा करना सृजनशीलता को बढ़ावा देना दलित साहित्य का उद्देश्य है।''[17] इसी उद्देश्य को लेकर डॉ. अम्बेडकर दलित जातियों का उद्धार कर रहे हैं। लेकिन दलित समुदाय अपनी स्थिति को समझ नहीं पा रहा है। इसी संदर्भ में कविता 'दलित चेतना' की कुछ पंक्तियां इस प्रकार है–

''दलितोत्थान का लक्ष्य
दलित आन्दोलन की सफलता
तुम्हारे हाथों में है।''[18]

वाल्मीकि व अन्य हिन्दू दलित जातियों में शिक्षा और जागृति का अभाव है। इस कारण वे दलित साहित्य के जागृति का संदेश का लाभ भी नहीं ले पाते हैं। सुशीला टाकभौरे का कविता संग्रह 'हमारे हिस्से का सूरज' में दलितों के लिए संदेश निहित है। इसमें यही कहा गया है कि दलितों जागो अपने जीवन में नयी स्फूर्ती का संचार करो। कविता संग्रह में अम्बेडकरवादी विचारधारा को स्थान दिया है। 'दलितों के मसीहा' कविता में बाबा साहब ने दलितों को मुक्ति का मार्ग बताया है। बाबा साहब मनुवाद से त्रस्त दलितों का उद्धार करना चाहते थे और काफी हद तक सफल भी रहे हैं। इसी को व्यक्त करती कविता 'जयभीम' को कुछ पंक्तियां–

''अर्पित कर अपना जीवन
सबके लिया जिया है आपने
निर्बला को बल, गूंगों को हुंकार
दलितों में चेतना संचार किया है आपने।''[19]

''हमारे हिस्से का सूरज' काव्य सग्रंह में दलित चेतना है लेकिन महिला चेतना नहीं है। काव्य संग्रह का शीर्षक ध्यानाकार्षित करता है। यह याचना के स्वर भरा हुआ है। सूरज जब उगता है तो सब तरफ उजाला हो जाता है कवयित्री दलितों को अपने हकों की याद दिलाती है। उन्हें अब अपना प्राकृतिक ही नहीं कानूनी, सामाजिक और राजनैतिक हक भी चाहिए।

(ब) 'यह तुम भी जानो' काव्य संग्रह–

पुरुष प्रधान समाज में स्त्री मुक्ति, नारी स्वतन्त्रता तथा उनके अधिकारों को लेकर चाहे कितने बड़े दावे किये जाये, नारे लगाये जाये, सब व्यर्थ है। जब तक नारी स्वयं इस तथ्य को नहीं समझती, तब तक उसकी प्रगति नहीं हो सकती। समाज में जो दलित अबला हैं सदियों से 'आंचल में है दूध और आंखों में पानी' की परम्परा को चरितार्थ करती चली आयी है। यह नारी आंसुओं को पीती हुई और पीड़ाओं को भोगती हुई ही सराही गयी है। सोलहवीं सदीं की नारी मन की भावनाएं बींसवी सदी के अन्तिम दशक में भी नारी मन को यही दर्शाती है–

''जो पहिरावै सोई पहिरुँ
जो वे सोई खाऊँ, जहां बिठावे
तित ही बैठूं बैचे तो बिक जाऊँ''[20]

यह भाव आज भी नारी के लिए आदर्श बने हुए है अधिकांश नारियां स्वयं ही इन भावों के बंधनों में बंधी हुई है। आज के युग में संवेदनाएं खत्म हो रही हैं, महत्त्वकांक्षाएं आकाश चूम रही हैं।

सुशीला टाकभौरे के काव्य संग्रह 'यह तुम भी जानो' और 'तुमने उसे कब पहचाना' वर्तमान युवा पीढ़ी को संदेश देते नजर आते हैं। नारी चेतना इनके लेखन का विषय रहा है। लेकिन इनकी अहम भूमिका दलित महिला लेखन पर ही रही है। इनके काव्य संग्रह भोग्या नारी की दुर्दशा, उसके पैरों में धर्मशास्त्रों द्वारा डाली गई बेड़ियां, सामाजिक रूढ़ियां, पुरुष सचा आदि से सम्बन्धित स्थितियां पुरुष समाज को खुली चुनौती देती नजर आ रही हैं। हमारे देश में एक दौर ऐसा भी आया था, जब देश की स्वतन्त्रता के लिए जन–सामान्य नारियां भी अपनी भूमिका निभाती नजर आयी है जुलूस, भाषण, विरोध, प्रदर्शन और सत्याग्रह के साथ उसने क्रान्ति की चिनगारी बनकर बगावत की मशाल जलाई थी। तब देश अंग्रेजों का गुलाम था। अब अग्रेंज नहीं हैं, देश स्वतन्त्र है, मगर नारी क्या स्वतन्त्र है? वह आज भी पुरुष की गुलाम है। पुत्री बहन, पत्नी और माँ के रूप मे आज भी पिता, भाई और पुत्र के समक्ष दयनीय है। उसकी यह स्थिति तब तक यथावत है, जब तक कि समाज में पुरुष प्रधानता को मान्यता प्राप्त है।

सुशीला टाकभौरे के काव्य संग्रह में सहज रूप से नारी की स्थिति का, उसकी वेदना–संवेदना और उसके विरोध का भाव नजर आता है। नारी अपने जीवन को यर्थाथ स्थिति से अनजान रखती है इसी स्थिति को स्पष्ट करती हुई इनकी कविता 'सागर और आकाश' की कुछ पंक्तियां–

''मैं ढूंढती हूँ क्षितिज–रेखा
पूर्व से पश्चिम की ओर
मैं जान लेना चाहती हूँ
क्षितिज के उस पार क्या है''[21]

नारी अपनी स्थिति से अवगत तब होगी जब पुरुष प्रधान समाज में पुरुष उसे अपने हक देगा। उसे आजादी देगा। बात यहां पुरुष प्रधानता को हटाकर स्त्री प्रधानता को मान्यता देने की नहीं है। यहां पर बात है नारी–पुरुष की समानता का भाव रखने की। कई बार पुरुष वर्ग कहता है– ''हम तो नारी स्वतन्त्रता के समर्थक है, इस कार्य में हम पूरा सहयोग दे रहे हैं। नारी का उत्थान ही सामाजिक उत्थान की पूर्णता है।''[22] लेकिन ये पुरुषवादी समाज सिर्फ अपना महत्व ही स्थापित करता है। जब नारी के साथ इनकी समानता की बात आती है तो इनके अहं को चोट पंहुचती है। ये अपने घर की स्त्रियों को उसी स्थिति में वापस पहुंचा देते हैं जहां से उनके उत्थान की कोशिश हुई थी।

समाज सुधारकों ने नारी जागृति के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा–उसका असर नारी पर भी पड़ा है। वह अपनी स्थिति को समझने लगी है। इसी स्थिति को व्यक्त करती हैं 'स्त्री' कविता की कुछ पंक्तियां–

''रोक नहीं पाओगे
स्त्री की ऊँची उड़ान को
काट नहीं सकोगे
उसके पंख
बांध नहीं सकोगे
उसके पैरों में परम्परा की बेड़िया।''[23]

नारी वर्तमान समय में आजाद होना चाहती है। अपने पैरों में पड़ी बेड़ियों को तोड़ना चाहती है। भारतीय समाज में स्त्री और दलित का बहुत अधिक शोषण हुआ है। युवराज सोनटक्के 'माँ' कविता में स्त्री पीड़ा को खुलकर उजाकर किया है–

''तू सिसकती रही निराशा के जंगल में
तन्हा होकर फिर भी रखा तूने परिवार को
विश्वास की दृढ़ता से बांधकर

तू बनी रही माँ शान्त निश्चल।''[24]

कवि स्त्रियों के दुख को उजागर कर रहे हैं। स्त्रियां अपने दुखों में भी अपने परिवार को टूटने नहीं देती हैं। ओम प्रकाश वाल्मीकि अपने एक इन्टरव्यू में कहते हैं कि ''स्त्री दलितों में भी दलित है।''[25] वे स्त्री के दोहरे अभिशाप को पारम्परिक व्यवस्था से जोड़ते हैं। इसी सोच के कारण ही स्त्री दूसरे दर्जे का नागरिक ही नहीं पांव की जूती समझी जाती रही है। इसलिए इनको अपनी स्थिति से बाहर निकालने के लिए सुशीला टाकभौरे अपनी कविता 'साहस' में कहती हैं–

''हमें
सागर के पल्लर की तरह
लाट की तरह
हर क्षण
अपनी बेड़ियों को काटना है।''[26]

इस कविता के माध्यम से कवयित्री ये संदेश देना चाहती हैं कि समाज में बेड़ियां तुम्हारे मार्ग में बांधा उत्पन्न करे तो ऐसी बेड़ियों को काट डालो और अपने पथ पर अग्रसर हो।

भारतीय समाज में दलित स्त्री का पिछड़ना उसका पितृसत्तात्मक समाज भी जिम्मेदार रहा है। पितृसत्तात्मक समाज में सारी सत्ता पुरुषों के हाथ में होती है। नारी उसके हाथों की कठपुतलियां होती है। समाज में इनका अपना अस्तित्व नहीं होता है इनकी जिन्दगी की डोर पुरुषों के हाथ में होती है। इनकी स्वतन्त्रता छिन जाती है। इसी को व्यक्त करते हुए 'यह कौनसा समाज है' कविता की कुछ पंक्तियां हैं–

''यह कौनसा समाज है
बरसों से ठहरा है
बरसों से उसके पैंरो में
वहीं हाथों में
व्याप्त, अपवित्रता का बोझ
दासता लाचारी बेबसी
कोई परिवर्तन नहीं''[27]

यह स्थिति एक दलित स्त्री की बरसों से है उसको बन्धनों में बांध के रखा है वह अपना दर्द भी व्यक्त नहीं कर सकती। सुशीला टाकभौरे अपने काव्य संग्रह में उनके उत्थान और उनको जाग्रत करने की बात करती है उनकी कविता 'आग का धर्म' की पंक्तियां–

''तुम्हें सचेत रहना है

प्रभावित होना अभ्युदय है,
जलना–जलाना जीवन का संदेश नहीं
'अच दीप भव' का संदेश पहुंचाना है।''[28]

इस पुरुषवादी समाज में बेटियों के अरमानों की कद्र करने की बात तो दूर समाज के ठेकेदारों को उनके पतन में भी उत्थान दिखाई पड़ता है। उन्हें किसी नारी को आगे बढ़ता देखना सुहाता ही नहीं है। हैरत की बात तो यह है कि ऐसे लोग अपनी संकीर्ण मानसिकता का दोषी भी स्त्रियों को ठहराते हैं। सच्चाई ये है कि यह पितृसत्तात्मक समाज नारी एवं उसकी भावनाओं को आज तक समझ ही नहीं पाया शीलबोधि की 'कोलार जल रहा है' कविता इसी बात को उजागर करती है–

''मैं खड़ी रही
तुम्हारी थोपी गई जिम्मेदारियों का बोझ लिए
तुमने सब कुछ बनाया
तब तुमने दायरे भी बनाया मेरे लिए
अपने लिए क्यों नहीं।''[29]

उपरोक्त कविता पुरुष अथवा पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा स्त्रियों पर थोपी गई गुलामी की बेड़ियों को तोड़ती है, बेनकाब करती है और स्त्री–पुरुष की समानता को बढ़ावा देती है। पुरुषवादी समाज अब तक नहीं समझ पाया नारी शब्द ही संस्कार एवं सम्मान का असली हकदार है। वेदना संवेदना नारी ही इंसान को सिखाती है। फिर भी भावनाओं की इस प्रतिमूर्ति को गलत ठहराया जाता है। लेकिन वह अपना अस्तित्व जताने से डरती है। वह समाज का एक हिस्सा बताने से डरती है। उसमें इतना साहस नहीं कि वो अपनी चेतना को जागृत कर सके। इसलिए सुशीला टाकभौरे अपनी कविता 'साहस' में कहती हैं–

''चेतना है हमारे बीच
सदियों से पर
साहस का अभाव हैं।''[30]

महिला अपने आपको साबित करने में असमर्थ रही है। वे रूढ़ियां तोड़ने की बात करती है पर साहस नहीं दिखा पाती। ''झारखण्ड की निरूपमा पाठक की हत्या भी ऑनर किलिंग ही मानी जा रही है। निरूपमा पेशे से एक पत्रकार थी और एक दलित लड़के से शादी करना चाहती थी। लेकिन दलित समाज का लड़का होने के कारण दोनों की हत्या कर दी गई''[31] ये तमाम घटनाएं पुरुष प्रधान समाज की रूढ़िवादी मानसिकता को उजागर करती हैं इन घटनाओं से साबित होता है कि आज भी भारतीय नारी अपनी मर्जी से अपनी जिन्दगी नहीं जी सकती

है। यह स्थिति सदियों से लेकर आज तक बनी हुई है। इसी बात को अन्य दलित कवयित्री स्पष्ट करते हुए (अनिता भारती) अपनी कविता 'लौ' में लिखती हैं–

''इतिहास से भी हमारा नाम गायब है
बेदखल है हम उससे
फाड़ दिया गया है
हमारे संघर्ष का पन्ना।''[32]

यह कविता भारतीय इतिहास पर भी प्रश्न चिन्ह खड़ा करती है। इतिहास में भी स्त्री संघर्ष का पन्ना लिखा ही नहीं गया। इसलिए स्त्री को अपनी मुक्ति सहज नहीं लगती।

दलित स्त्री केवल ब्राह्मणवाद से ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण साम्राज्यवाद के खिलाफ खड़ी होना चाहती है। दलित स्त्री षड़यंत्रकारियों की खोखली मानसिकता की असलियत को उजागर करना चाहती है और अपने आप को विनाश के दलदल में जाने से रोकना चाहती है इस अर्थ में कवि शीलबोधि की 'कोलार जल रहा है' कविता संग्रह की कविता 'शब्दों का खेल' विचारणीय है–

''मुर्दा हैं वे लोग
जिनके दिमाग में
शब्द नहीं होते।''[33]

ये कविताएं स्त्री की पक्षधर है। पुरुष सत्ता को चुनौती देते हुए भीषण यथार्थ को पाठकों के सामने रखते हुए स्त्री स्वतन्त्रता को रेखांकित करती है। दलित स्त्रियों को समाज आदर की दृष्टि से नहीं देखता। समाज में तो क्या वे अपने परिवार में भी सम्मानित नहीं है। कहीं इनको स्त्री होने के कारण कहीं परम्परा के कारण अपमानित होना पड़ता है। आखिर परम्परा के बंधनों में कब तक जकड़ी रहेंगी ये दलित स्त्रियां। इसी भाव को व्यक्त करती हुई कविता 'साहस' में लिखा हैं–

''सागर बड़ा है
उसका तट बड़ा है
उसी तरह
हमारी बेड़ियां
हमारी रूढ़ियां भी बड़ी है।''[34]

उपरोक्त कविता में दलित स्त्रियां समाज में व्याप्त रूढ़ियों का विवरण सागर से कर रही हैं। सुशीला टाकभौरे ने इस कविता में यही बताया है सामाजिक बेड़ियों के कारण इनको आजादी बहुत कठिन लगती है। दलित स्त्रियां अपने वजूद के लिए हमेशा से ही संघर्षरत रही हैं। समाज से ये निष्काषित मानी जाती रही हैं। लेकिन जब भी ये अपने अस्तित्व की बात

करना चाहती है। पुरुषवादी समाज अपना वर्चस्व बनाये रखने के लिए इनका दमन करता रहा है। इसलिए अनिता भारती अपनी कविता 'लौ' में दलित स्त्रियों का स्वर उजागर करती हैं–

''हमें शिकायत है
उस अबोध निर्मम इतिहास से
कि जिसके लिए
हम दिन–रात
सुबह–शाम
आंधी तूफान में लड़ते रहे।''[35]

उपरोक्त कविता में अनिता भारती के यहां दलित स्त्रियां जो सदियों से अपने वजूद के लिए लड़ रही हैं। वो शिकायत करती हुई नजर आती है। वे अपने हक के लिए संघर्ष करती नजर आती है। ऐसे में निराला की कविता 'वह तोड़ती पत्थर' में दलित स्त्री का ऐसा चित्र खींचयो है जिसमें वह अपने हथौड़े से सत्ता पर प्रहार करती नजर आती है–

''वह तोड़ती पत्थर
देखा उसे मैंने इलाहाबाद पथ पर
नहीं छायादार पेड़ वह
जिसके तले बैठी हुई स्वीकार।''[36]

उपरोक्त कविता में दलित स्त्री मानो कलेजे पर रखा हुए पत्थर हो दलित स्त्री के मुक्ति संघर्ष में समाज का आड़े आना स्वाभाविक है। इसलिए दलित स्त्री एक तरफ संस्कृति से संघर्ष कर रही है वहीं दूसरी ओर पुरुष वर्चस्व के खिलाफ संघर्ष करती हुई उसके मन के कालेपन को उजागर कर रही है। दलित स्त्री संघर्ष की अवधारणा को व्यक्त करती है इसी संघर्ष को स्पष्ट करती हुई कुन्ती अपनी कविता 'यह तुम ही हो' में जब कहती है, पुरुष तुम चाहते ही हो–

''स्त्री का दोहरा स्वरूप
परिचित भी अपरिचित भी
सेविका। मन्त्र मुग्ध प्रेमिका भी।''[37]

उपरोक्त कविता पुरुष समाज के दोहरे मानदण्ड को ही दिखाने की कोशिश करती है। यह एक ऐसे पुरुष की मानसिकता पर प्रहार है जो स्त्री को दोनों ही रूपों में देखना चाहता है। यह कविता पुरुष के मन को ठीक से पहचानती हुई उसका प्रतिरोध रचती है। दलित स्त्री पुरुषवादी समाज को मुंहतोड़ जबाव देने का साहस करने लगी है जो समझने लगी है जब तक प्रहार नहीं करेगें मुक्ति संभव नहीं है इसलिए वो कहती है–

''अब मैं शर्मिन्दा नहीं होती

क्योंकि मुझे लगने लगा है
मैं भी
मील का एक पत्थर हूँ
जो टेकरी ही नहीं पहाड़ों से भी
अधिक महत्व रखता है।''[38]

उपरोक्त कविता में दलित स्त्री अपने आप को मील का पत्थर कह रही है जिसका मतलब है अस्तित्व की पहचान होना। वह अपने आपको सबल बनाने की कोशिश में है। पुरुषवादी समाज से कहना चाहती है कि मैं समाज में मामूली नहीं हूँ, मैं समाज को ही हिस्सा हूँ। लेकिन यह बात पुरुषवादी समाज का नागवार गुजरती है फिर भी स्त्री अपनी मुक्ति का स्वप्न देखती रहती है इसी दृष्टि को व्यक्त करती 'मुक्ति का स्वप्न' की कुछ पंक्तियां–

''उड़ान का स्वरूप
देखना नहीं छोड़ती
चाहे वह चिड़िया हो
या फिर हो स्त्री।''[39]

कविता में स्पष्ट किया गया है कि स्त्री अपनी मुक्ति के लिए संघर्षरत रही है। पुरुषों की समाज व्यवस्था में निर्णय लेने के सारे अधिकार पुरुषों के पास होते हैं नारी नाम मात्र की स्थिति है। फिर दलित नारी का तो कहना ही क्या? यह वहीं देश है जहां वैदिक ऋषि गर्वोन्नत स्वर में उद्घोष करते थे–''यत्र नार्यस्तु पूजन्ते रमन्ते तत्र देवता''। अब आधुनिक कवि पराजित स्वर में फुसफुसाता है–

''अबला हाय तुम्हारी यही कहानी
आंचल में है दूध और आंखों में पानी।''[40]

दोनों स्थितियों में कितना अंतर दिखाई देता है। एक तो आगे बढ़ने की प्रेरणा है तो दूसरे में हताशा होने की स्थिति का स्वर। हम यह कहते नहीं थकते कि पुरुष और स्त्री एक ही तुला के दो पलड़े हैं। दोनों परस्पर पूरक हैं। पर सामाजिक जीवन के व्यवहार में जब हम देखते हैं। तो विपरीत परिस्थिति दिखाई देती है। समय के प्रवाह के साथ सब कुछ बदलता रहता है। स्त्री ने अपने अस्तित्व की लड़ाई खुद के बलबूते लड़ी है। आज वह अपने आप को 'नीर भरी दुःख की बदली' कहलाने को कतई राजी नहीं है। वह अपने ऊपर डाली गयी हरेक पाबन्दी को अपनी इच्छाशक्ति एवं दृढ़ संकल्प से दूर हटा रही है–

''शब्द कभी भी
नहीं मरते
शब्दों में रहती है

अंतत गूंज
उसी तरह प्रेम
हममें बाकी है।''[41]

उक्त कविता में स्त्री उम्मीद से भरी है इससे स्पष्ट है कि वह परिवर्तन चाहती है। वह ऐसी दुनिया नहीं चाहती जहां उसका वजूद ही ना हो। दुनिया उसकी हंसी छीन सकती है, आजादी छीन सकती है, पर उसकी उम्मीद व उड़ान नहीं छीन सकती। इसी को स्पष्ट करती 'रोज गूंथती हूँ पहाड़' कविता की कुछ पंक्ति–

''वह स्त्री
बादलों की पीठ पर
हो चुकी है सवार
घूमना चाहती है
सूर्य का आंगन
उसे उम्मीद है
वह छू लेगी
सूरज की छत।''[42]

यह कविता स्त्री के लिए उम्मीद से भरी है वह कहना चाहती है कि हमारा सब कुछ छिन जाने के बाद भी हममें उम्मीद बाकी है।

दलित महिला का उत्पीड़न चाहे घर में हो या बाहर, सवर्ण पुरुषों द्वारा हो, चाहे गैर सवर्ण पुरुषों द्वारा। महिला उत्पीड़न की बातों को पुरुष तो छिपाते हैं ही साथ ही महिलाएं भी छिपाती हैं। परिवार समाज में सभी छिपाते हैं। ये बाते अधिकतर उजागर नहीं हो पाने के कारण महिलाएं अधिक कष्ट और उत्पीड़न का जीवन जीती हैं उसी को व्यक्त करती कुछ पंक्ति–

''दलितो में भी दलित है
एक स्त्री
शायद इसलिए ही
सुख से नहीं जी पाई
इस बर्बर समाज में
वह कभी भी।''[43]

दलित उत्पीड़न के रूप में भी दलित पुरुषों की अपेक्षा दलित नारी समाज में वर्णभेद, जातिवाद के अपमान तिस्कार के साथ अन्याय, शोषण और हिंसा अधिक सहती है। पुरुष की अपेक्षा नारी अपने जीवन में अधिक समस्याओं का सामना करती है। नारी किसी भी जाति, धर्म

की हो, वह कष्टों से घिरी होती है। सुशीला टाकभौरे की कविता 'गाली' की कुछ पंक्तियां यही दर्शाती हैं–

''पुरुष प्रधान समाज में
चाहे समर्पण हो
या विद्रोह
दुर्गुण का दोष नारी पर है।
मनु नाम की
चादर डाली जाती है।''[44]

मनुवादी व्यवस्था के अन्तर्गत महिला चाहे जिस वर्ण व जाति व धर्म की हो, शूद्रों की श्रेणी में ही आती है। तुलसी के रामचरित्र मानस की चौपाई –''ढोल, गंवार, शूद्र पशु नारी। ये सब है ताड़न के अधिकारी।''[45]

कितना बड़ा प्रमाण है जो समाज में औरत की हैसियत व मर्यादा को व्यक्त करता है। हमारे समाज में अन्याय का सिलसिला अनादि काल से चला आ रहा है लेकिन अब इसमें बदलाव आ रहा है औरत अपने अत्याचार और शोषण के खिलाफ उठ खड़ी हुई है। वर्तमान में नारी चेतना प्रबल है। 'भरोसा उधार' कविता में यही अनुभव होता है–

''अब कुछ–कुछ सूझने लगी हूँ।
किससे कितना और
क्या–क्या छुपाना है।''[46]

इस कविता में बताया है कि हम ऐसे समय से गुजर रहे हैं जिसमें सत्य और मिथ्या में अंतर करना दुष्कर है। नारी अपने रिश्तों की साजिश से शिकार हो रही है। ऐसे समय में नारी अपने आस्तित्व और अपने होने के प्रमाण की तलाश कर रही है। आज नारी परम्परागत बंधनों को तोड़कर नई हवा में सांस लेना चाहती है। वह अपना जीवन अपनी ही शर्तों पर जीना चाहती है सुशीला टाकभौरे अपनी कविता 'खोज की बुनियाद' में यही व्यक्त कर रही है–

''यह
रहस्य तो नहीं
खोज की बुनियाद है
आज फिर
मैं
उड़ने लगी हूँ बेपर।''[47]

कविता नारी में मुक्ति का संदेश है। वह अपने प्रति अबला की मानसिकता को बदलकर सबला रूप में स्थापित होना चाहती है वह अपनी समस्याओं को खुद सुलझा रही है। नारी का प्रतिरोधी व्यक्तित्व उभर रहा है जिसे इन पंक्तियों में देखा जा सकता है।

''इक्कीसवीं सदी की खानाबदोश औरते
तलाश रही है घर
सुना है वे अब किसी की नहीं सुनती
चीख–चीख कर दर्ज करा रही हैं सारे
प्रतिरोध दोष नहीं देती।''[48]

इस नयी चेतना के आर्विभाव से वे अब किस्मत को दोशी नहीं ठहराती। अपना वजूद खुद पहचान रही हैं। धर्मशास्त्रों में महिलाओं को पढ़ाने लिखाने की मनाही थी। सरकार ने भी महिलाओं की शिक्षा पर जोर नहीं दिया, इसका असर दलित और निचले तबके की महिलाओं पर पड़ा आज भी महिलाओं में शिक्षा का स्तर कम है। विमल थोराट ने बुद्व को स्त्री मुक्ति का प्रणेता बताया है। वह लिखती हैं। ''स्त्री स्वतन्त्रता के प्रथम प्रणेता तथागत बुद्व ही थे। जिन्होंने भिक्षुणी संघ में स्त्रियों को प्रवेश देकर पहली बार उन्हें ज्ञान की परम्परा से जोड़ा था''[49] लेकिन ज्ञान का इतना प्रचार प्रसार नहीं था। पुरूषवादी समाज नहीं चाहता था कि स्त्री को शिक्षा मिले। 'यथास्थिति से टकराते हुए' में अनिता भारती यही दर्शाती हैं–

''सुनो मलाला बिटिया
इन जंगली गिद्धों ने जबरन
बंद कराए थे जो चार सौ स्कूल
उनकी नयी चाबी खोजनी है तुम्हें
क्योंकि ये फकत स्कूल नहीं
ये रोशनी की वे मिनारें हैं
जिस पर चढ़ना है तुम्हें।''[50]

भारत में समुचित विकास के लिए स्त्री को शिक्षित होना आवश्यक मानते हैं। यदि एक लड़की या स्त्री शिक्षित होती है तो सारा परिवार शिक्षित होता है। डॉ. अम्बेडकर के युग प्रर्वतक विचारों से प्रभावित कवि 'प्रभात का उजास' कविता के माध्यम से कहता है सभी प्रकार के अनर्थों से बचाव के लिए शिक्षा जरुरी है–

''मेरी बहन कह रही थी
मुझे क्यों रोकते हो
पढ़ने से आगे बढ़ने से
उस समय पीपल के पेड़ पर चिड़िया

अपने बच्चों को
उड़ने का हुनर सिखा रही थी।''[51]

आधुनिक युग की नारी शिक्षा के पर लगाकर पुरुष के बराबर विकास के आकाश में विहार करने लगी है। आकाश से पाताल तक कोई ऐसा छोर नहीं छूटा जहां स्त्री कार्यरत ना हो स्त्री ने आज कठिन से कठिन कार्य पर भी आसानी से काबू पा लिया है। 'बोधिसत्व चिन्तित है' कविता की पक्तियां इसी ओर ईशारा कर रही हैं–

''सत्य की खोज में
बार–बार आना है।
वर्शाकाल से पूर्व
सन्ध्या काल तक
संसार से अज्ञान को मिटाना है।''[52]

क्रांति ज्योति श्रीमती सावित्री बाई फूले ने शूद्रों दलित स्त्रियों के उज्ज्वल भविष्य के लिए केवल शिक्षा ही एक उयाय बतलाया। शिक्षा से मनुष्यत्व प्राप्त होता है और पशुत्व नष्ट होता है। इस श्रृंखला में खुद अछूतों में से आए बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर ने जीवन के सत्व को तीन शब्दों में देकर दलितों एवं नारी जगत को सम्मान और स्वाभिमान से जीने का मार्ग प्रशस्त किया है।

''शिक्षित बनो। संगठित रहो
संघर्ष करो।''[53]

अन्ततः हम यह कह सकते हैं कि सुशीला टाकभौरे का काव्य संग्रह 'यह तुम भी जानो' की कविताएं दलित और दलित स्त्री को परिवर्तित और जागरूक करने की साक्षी है। इस संग्रह में दलितों को कहे गये बोधगम्य चेतना का स्वर है। इनकी कविताओं में दलितों की टीस, पीड़ा, बैचेनी और तिलमिलाहट का स्वर नजर आता है जो आज की युवा पीढ़ी को संदेश देता है। इनकी कविताओं का उद्देश्य दलित और दलित स्त्रियों की जड़ मानसिकता से बाहर लाना है।

'यह तुम भी जानो' काव्य संग्रह दलित समाज के संदर्भ में है। इक्कीसवीं शताब्दीं के दौर में भी दलित समाज अपने आपको पहचान ही नहीं रहा है। इनमें शिक्षा और ज्ञान का अभाव है। समाज में अपनी जगह नहीं बना पा रहे हैं। अपने अधिकारों के लिए लड़ना नहीं जानते। दूसरी ओर दलित स्त्री का भी यही हाल है। वह भी समाज में रुढ़ि–परम्पराओं का अनुसरण करती आ रही है। समाज में दलित नारी को सुरक्षित स्थान नहीं मिल पा रहा है। दलित नारी हमेशा से ही हाशिए पर रही है। उसके पैरों में धर्मशास्त्रों द्वारा डाली गयी बेड़ियां है। सामाजिक रूढ़ियां है। वही स्थिति सुशीला टाकभौरे के काव्य संग्रह में उपस्थित हैं।

सुशीला टाकभौरे ने अपने 'निज' को पहचाना है तभी तो नारी को जाग्रत करने का बीड़ा उठाया है। समय बदल गया है। परिस्थितियां बदल चुकी है। इनकी कविताओं की यह विचारधारा ही नारी को आत्मनिर्भर बनाने सुरक्षित करने में समर्थ होगी। नारी अब जाग्रत हो चुकी है तभी तो कवयित्री कहती है–

''विश्वास भक्ति प्रेम की सीता
बार बार धरती में दफनाई जाती है
इसलिए संसार में
पीड़ा की फसल उग जाती है।''[54]

किन्तु अब वह सब जान गयी है। अब वह धरती से आकाश में जाना चाहती है। ऊंचाइयों को छूना चाहती है। यह संदेश है सम्पूर्ण नारी जाति के लिए। तभी तो वे कहती हैं–

''देखो कोई रोक न पाये
बढ़ते कदमों की रफ्तार
भीड़ से अलग
अपनी पहचान बनाना है।''[55]

कवयित्री नारी को अपना अस्तित्व पहचानने का संदेश दे रही है। कि तुम भीड़ से अलग अपनी पहचान बनाओं। अपने पैरों पर स्वयं खड़ी हो अपने दृढ़ विचारों की जमीन को समझो।

नारी जब तक खुद नहीं जागृत होगी तब तक उसे समाज का हिस्सा नहीं समझा जायेगा। नारी जब तक खुद अपनी स्वतन्त्रता अपने अधिकारों को लेकर नहीं लड़ेगी तब तक सब व्यर्थ है। जब तक नारी इस तथ्य को नहीं समझती, तब तक उसकी प्रगति नहीं हो सकती। स्त्री हर समस्या का हल स्वयं करना सीखे तभी वह आगे बढ़ सकेगी। जब तक वह स्वयं जागरूक नहीं होगी– उसे कोई नहीं जगा सकता। सुशीला टाकभौरे का काव्य संग्रह 'यह तुम भी जानो' इसी संदर्भ में है।

(स) 'तुमने उसे कब पहचाना' काव्य संग्रह–

बदलते परिवेश में दलित विमर्श के समान ही नारी विमर्श ने हिन्दी साहित्य में अपना उचित स्थान बना लिया है। नारी विमर्श ने नारी संबंधी ऐसी अनेक समस्याओं को उजागर किया है जिससे समाज अब तक अनभिज्ञ रहा है। नारी विमर्श को लेकर समाज में भ्रातिंया फैली हुई है कि नारी विमर्श अराजक मानसिकता से जुड़ा है और यह स्त्री विमर्श सामाजिक

व्यवस्था को हिला सकता है। स्त्री की लड़ाई पुरुष से नहीं पुरुष वर्चस्व से है। इस वर्चस्ववादी व्यवस्था में स्त्री के प्रति शोषण की जो मानसिकता है संघर्ष उस शोषण और मानसिकता से है।

'तुमने उसे कब पहचाना' काव्य संग्रह सुशीला टाकभौरे का ऐसा काव्य संग्रह जिसमें नारी ने पुरुष समाज को खुलकर चुनौती दी है। पुरुषवादी समाज से अपने अस्तित्व की मांग की है। सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ने का साहस किया है। वह सदियों से अपने पैरों में पड़ी परम्परा की बेड़ियों को तोड़ना चाहती है। वह स्वयं अपनी पहचान बनाना चाहती है। दलित स्त्री सदियों से ही हाशिये पर रही है और समाज व्यवस्था द्वारा कुचली जाती रही है। दलित शोषित स्त्रियों के मन में सदियों से मथे जा रहे सवालों के जवाब मांगना चाहती है। इसी संदर्भ में सुशीला टाकभौरे की कविता 'तुमने उसे कब पहचाना' की पंक्तियां यही व्यक्त कर रही हैं–

''तुमने उसे कब पहचाना
क्यों कहते हो नारी को
मानव समाज का गहना।''[56]

अपने हिस्से की बात रखना भारतीय दलित स्त्री के लिए कभी भी आसान नहीं रहा। फिर भी वो इस समाज व्यवस्था को तोड़ने का साहस करती रही है। 'तुमने उसे कब पहचाना' काव्य संग्रह समाज व्यवस्था की पड़ताल करते हुए दलित स्त्री द्वारा प्रस्तुत ज्वलंत दस्तावेज है इसी को व्यक्त करती हुई कविता 'जानकी जान गई' की कुछ पंक्तियां–

''आज जानकी जब जान गयी है,
अब वह धरती में नहीं
आकाश में जाना चाहती है
बिजली सी चमक कर
संदेश देना चाहती है–
पुरुष प्रधान समाज में
स्त्री भी
समानता की अधिकारी है।''[57]

उपरोक्त कविता दलित स्त्री की भावनाओं को जाहिर करती नजर आती है। वह समाज में समानता की बात को उजागर कर रही है।

स्त्री को पारम्परिक रूढ़ियों, मान्यताओं, अन्धविश्वासों के शोषण से मुक्त कर उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व को समाज में प्रतिष्ठित करना ही स्त्रीवाद है। आज की स्त्री का सारा असंतोष इस बात को लेकर है कि मनुष्य रूप में जो अधिकार पुरुष को सहज ही मान्य है उसे उनसे वंचित क्यों कर दिया जाता है? स्त्री को समाज में अधिकार देने की बात तो करते है परन्तु वो अधिकार मिलते नहीं है। इसी को स्पष्ट करती करती हुई 'स्त्री' कविता की कुछ पंक्तियां–

''हे स्त्री
तुम कौन सी नारी मुक्ति का
आन्दोलन छेड़ रही हो
यह बताओ
समाज परिवार से पहले
तुम अपने आप से कितनी
मुक्त हो पायी हो।''[58]

कविता समाज में नारी को अपने आप से मुक्त होने का संदेश दे रही है समाज व्यवस्था के बन्धनों से तो नारी जकड़ी रहती है साथ ही वह अपने त्याग और आदर्श के उसूलों से भी बन्धी हुई होती है। उन्हीं बन्धनों से मुक्त होने के लिए सुशीला टाकभौरे अपनी कविता 'चलो तुम्हें मेला दिखाएं' में कह रही हैं–

''नारी कुल के शान की
लेकर ध्वजा
बढ़ती रहो तुम
बढ़ती रहे कीर्ति तुम्हारी।''[59]

कविता में नारी का अपना सम्मान बढ़ाने की ओर संकेत है। समाज में हर तरह से व्यवस्थाएं पुरुषों के हक में ही बनाई गई है। नारी को वंचित रखा गया है। अब नारी उन सारे हकों और अधिकारों की मांग करती हुई नजर आती है अनिता भारती की कविता 'आंखों में भर लूँ आसमान' में यही कहती नजर आ रही है–

''दौड़ जाऊं इठलाकर
बादलों पर।
सारी दुनियां मेरी है
मन की कलियां
सतरंगी सपने बुन रही है
सूरज की चमक आंखों में
भर रही है।''[60]

जैसे परम्परा वर्चस्व की शिकायत करता दलित सहज लगता है वैसे ही अस्मितावादियों को व्यथा में डूबी दलित स्त्री की आवाज स्वीकार्य लगती है। लेकिन यह स्त्री जब स्वयं कदम उठाती है, बाहरी और भीतरी हिंसा के खिलाफ संघर्ष में उतरती है। न्याय की मांग करती है, अपनी शर्तों पर जिन्दगी जीने के ख्वाब बुनती है उसका संघर्ष और संकल्प कविता 'नयी दलित स्त्री' की कुछ पंक्तियों में अभिव्यक्त होता है–

''एक दिन आऊंगी मैं
दबावों के चलते नहीं
न किसी की दासी बनकर
तनी हुई रीढ़ के साथ
किसी के सामने झुकती हुई नहीं
बगैर किसी चूक के।''[61]

आज दलित स्त्री खुद अपने पैरों पर खड़ा होना चाहती है। अपनी जिम्मेदारियों से वाकिफ और अपने अधिकारियों के प्रति सचेत है। उनका संघर्ष उनके भविष्य के निर्माण के लिए बेहतर है। लेकिन पुरुषसत्तावादी समाज इसके लिए तैयार नहीं है। स्त्री को व्यक्ति के तौर पर नहीं देखना चाहता। वह या तो देवी या भोग्या, बहिन या वेश्या आदि रूपों में ही देखना पसन्द करता है। लेकिन इन सब जिम्मेदारियों का बोझ निभाते–निभाते वह थक चुकी है इसलिए 'औरत नहीं मजबूर' कविता में कहना चाह रही है–

''औरत नहीं है मजबूर
मजबूरियां है रीतियां
ढ़ोते हुए अपना सलीब
अब वह थक गयी है।''[62]

औरत अब अपने आप को मजबूर नहीं समझना चाहती है। वह हर तरह से आजाद होना चाहती है। भारतीय नारी की स्वतन्त्रता का हनन वर्चस्ववादी विचारधारा ने संस्कृति और भुलावें में रख कर स्त्री को शिक्षा सम्पत्ति के सारे अधिकारों से वंचित कर गुलाम रखा है। हीरा बनसाडे की कविता 'गुलाम' में सांस्कृतिक गुलामी देखी जा सकती है–

''जिस देश में घर के दरवाजों को
फूल मालाओं से सजाया जाता है
और घरों को दीप ज्योति से
अलंकृत किया जाता है
उस देश में नारी आज भी
गुलाम है।''[63]

हमारी सारी परम्पराएं, रूढ़ियां और रीति–रिवाज स्त्री को आदर्श स्त्री ढ़ांचे में ही ढ़ालने का काम किया है जिससे उसकी मौलिकता अधिकार व स्वतन्त्रता छिनती रही। हमारे सारे धर्मशास्त्रों सामाजिक आचार अंहिसा, मनुस्मृतियों, पुराणों में स्त्री को परतंत्र बनाने की कलाएं बताई गई और स्त्री उसके बिना सोचे समझे अनुसरण करती रही। पुरुष को अपना भगवान मान कर, उसके अंहकार को सह देती रही इसी बात को स्पष्ट करती हुई कुछ पंक्तियां–

''औरत
पुरुष के अहंकार को बनाए रखती है
उसे बना देती है अपना मसीहा
गुरू, बाप, भाई, मित्र
कभी उसकी सहायता से बन जाती है
खुद पुरुष
वह अभी पहचान नहीं पाई है।''[64]

दरअसल स्त्रियों के लिए सारे नियम पुरुषों ने अपनी सुविधा व स्वार्थ के हिसाब से गढ़े हैं। लेकिन अब वह इन नियमों को पहचान चुकी है। समझ चुकी है कि समाज में पुरुषसत्ता का वजूद बढ़ाने के लिए उस पर नियमों का ढ़ेरा लगाया गया है। अब वह ऐसे नियमों को नकारने लगी है। सुशीला टाकभौरे की कविता 'आज की खुद्दार औरत' में वर्तमान में बन रही औरत की पहचान बताई गई है–

''आज यह खुद्दार औरत
अपने आप को पहचान गई है
इसे यूं न सताओं
वरना यह भी
तुम्हारे सर्वस्व को नकार कर
तुम्हें नीचा दिखायेगी।''[65]

दलित स्त्री परिवार व समाज में अपनी पहचान बनाने लगी है वह सवर्ण समाज से तो पीड़ित है ही वह अपने समाज में भी शोषित और कम पीड़ित नहीं रही है। रजतरानी मीनू अपनी कविताओं में दलित स्त्री के यथार्थ को उजागर करती है। इनकी कविताओं में स्त्री मुक्ति का स्वर है। दलित स्त्री के यौन शोषण और उत्पीड़न के खिलाफ जो गहरी पीड़ा है, उसे निम्न पंक्तियों से समझा जा सकता है–

''हमारे साथ जब होता है बलात्कार
सामूहिक बलात्कार
तब हिलता क्यों नहीं एक पचा भी
और जब तुम्हारे साथ हुआ बलात्कार
तब क्यों हिल गई संसद भी।''[66]

महिला सशक्तिकरण के मुद्दे पर लगातार बातें की जाती रही हैं लेकिन उसमें दलित स्त्री के मुद्दे, समस्याएं शामिल नहीं होते। वास्तव में आजादी का अर्थ उन तक कभी नहीं

पहुंचा। हाशिए पर धकेली इन स्त्रियों के लिए 8 मार्च जैसा दिन कोई मायने नहीं रखता है क्योंकि उनमें मूलभूत प्रश्नों को इसमें शामिल ही नहीं किया गया है–

''जिनके लिए पैंसठ बार आया यह
प्रकाशमान दिन
किंचित भी
कम नहीं कर सका
अंधकार, अंधकार, अंधकार।''[67]

दलित स्त्री स्वयं पहचान चुकी है कि इस अंधकार की मुक्ति का मार्ग सिर्फ शिक्षा ही है। क्योंकि बिना शिक्षा के व्यक्तित्व की सार्थकता एवं परिपूर्णता संभव नहीं। शिक्षा स्त्री सशक्तिकरण की कुंजी है। शिक्षा स्त्री जीवन की पूंजी है इसलिए सुशीला टाकभौरे की कविता 'वह मर्द की तरह जी सकेगी' में कहना चाह रही हैं।

''मान सम्मान में
ज्ञान विज्ञान में
पीछे नहीं है औरत
पूरे विश्व को मुठ्ठी में रखकर समझेगी
तभी वह मर्द की तरह जी सकेगी।''[68]

इसी तरह रजत रानी मीनू अपनी कविताओं में स्त्री के यथार्थ में शिक्षा का महत्त्व करते हुए नजर आती है–

''यदि वह
सवर्ण होती
तो क्या अपढ़ होती
यदि वह
पढ़ी–लिखी होती तो
क्या यही होता?''[69]

नारी शिक्षा की ज्योति से जागृत हुई है और अपनी समग्र स्वतन्त्रता के लिए संघर्षरत होने का दृढ़ निश्चय कर चुकी है। हीरा बनसोडे की कविता 'गुमशुदा सूरज' में विद्रोही तेवर स्पष्टता से दिखाई देते हैं–

''सभी के जख्मी दिलों में
क्रान्ति की विजयी सुलग रही है
यह युद्व अटल है
विद्रोह नसों में उछाले मार रहा है

अब युद्व विराम असंभव है
विजय प्राप्त होवे
या ना होवे
हमें परवाह नहीं।''[70]

दलित स्त्री अपनी बेहतर जिन्दगी के लिए संघर्षरत नजर आ रही है। अपनी मुक्ति का बिगुल बजा चुकी है। शिक्षा के क्षेत्र मे भी दलित स्त्रियां आगे बढ़ रही हैं। दलित स्त्री आन्दोलन का आंकलन करते हुए विमल थोरात ने लिखा है–''वह स्त्री पुरुष सम्बन्धों की समतावादी व्याख्या करने के साथ ही दलित स्त्री के तिहरे शोषण की अभिव्यक्ति द्वारा दलित स्त्री के प्रति नारी मुक्ति आन्दोलन के संकीर्ण मध्यवर्गीय नजरिए को भी कुछ हद तक बदलने में कामयाब हो रही है।''[71]

दलित स्त्री में चेतना से उजाला आ रहा है। रूढ़िवादी विचारों को हर संभव चुनौती दे रही है। दलित स्त्रीवादी स्वर को बुंलदी देती कविता की कुछ पंक्तियां–

''गर उड़ने की चाह हो
तो खोल दो पंख अपने
खुला है पूरा आसमां।''[72]

दलित स्त्री समाज में अपना अस्तित्व बनाने में जुटी है। नारी अब भी कमजोर निर्बल असहाय अधिकारहीन है। लेकिन क्यों? इन सब कारणों को ढूंढ़ना होगा। हम सोचते हैं कन्या भ्रूणहत्या करके समाज में नारी समस्याओं का निराकरण कर रहे हैं। लेकिन अगर समाज में नारी ही नहीं रहेगी तो समाज कैसे चलेगी। नारी की समस्याओं का किस तरह हल किया जाना चाहिए। हमें इस बात पर विचार करना चाहिए ना कि उस पर प्रतिबन्ध लगाना चाहिए। 'तुमने उसे कब पहचाना' काव्य संग्रह दलित और दलित स्त्री के अधिकारों के प्रति सचेत होने का मार्ग है। दलित स्त्री का समाज में जो रवैया है वो कैसा है उसको भी उजागर करता है। समाज उन्नति कर रहा है, देश उन्नति पर है, पर दलित स्त्री समाज में वहीं निचले पायदान पर खड़ी है उसके बारे में न तो समाज और ना ही देश सोच रहा है। समाज सेवक, समाजसेवी संस्था सब कहते हैं दलित स्त्री को उसका हक मिला है लेकिन क्या वास्तव में ही उसको हक मिला है यह जानना अभी भी बाकी है वह अभी भी पिछड़ी हुई क्यों है ऐसे कई कारण है जिन्हें अभी खोजना बाकी है।

(द) 'स्वाति बूंद और खारे मोती' काव्य संग्रह–

आधुनिक युग में दलित साहित्य ने अपनी एक अलग पहचान, अस्तित्व और विशेष स्थान प्राप्त कर लिया है। आधुनिक युग साहित्य में सुशीला टाकभौरे का नाम अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इन्होंने अपनी कविताओं में वर्ण, जातिव्यवस्था पर तीखा प्रहार करते हुए परम्परागत मायाजाल को तोड़ने की कोशिश की है। समाज में जाति की समस्या दलित के सामने सदैव मुंह खोले खड़ी रही है। जाति के नाम पर दलितों को समय–समय पर हर मोड़ पर अपमानित करना, इनका मजाक उड़ाना सवर्ण समाज की परिपाटी हो गयी है। सुशीला टाकभौरे जी ने अपनी जिन्दगी में जातिदंश भोगा है इस पीड़ा को उनसे अच्छे तरीके से भला कौन जान सकता है। 'स्वाति बूंद और खारे मोती' काव्य संग्रह में जो भावों की अभिव्यक्ति है वो उनके खुद के जीवन के अनुभवों से ही रही है। वो कहती हैं कि भाव हमेशा स्वाति बूंद की तरह अनमोल होता है। अगर यही भाव शब्दों में ढल जाये तो सीप का मोती बन जाये और बिखर जाये तो कुछ भी नहीं। इनके काव्य संग्रह में कविताओं के माध्यम से समाज और संस्कृति की संवेदनहीनता प्रकट होती है इनकी कविता इस हिन्दू धर्म की वर्ण व्यवस्था के प्रति विरोध की भावना को व्यक्त करती हुई दिखाई देती है। जिनके अन्तर्गत वे परम्परागत जातीय रूढ़ियों को तोड़ना चाहती है 'कला की पहचान' आज भी इनके अपमान का संकेत देती है–

''नहीं पहचानी इनकी महानता
किसी ने नहीं किया सम्मान
वर्ण जाति से तुच्छ मानकर
करते हैं अपमान।''[73]

उपरोक्त कविता जातिगत भेदभाव की ओर संकेत करती नजर आ रही है। दलित चाहे कितना भी ऊपर उठ जाये जाति के आधार पर उनका हर स्तर पर अपमान होता रहा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविता 'जाति' में व्यंग्य परक शैली में मारक बात कही है–

''स्वीकार्य नहीं मुझे
जाना, मृत्यु के बाद
तुम्हारे स्वर्ग में
वहां भी तुम
पहचानोगे मुझे
मेरी जाति से ही।''[74]

इस कविता के माध्यम से वे तमाम बन्धनों से मुक्त होने की जिस आंकाक्षा को रखते हैं, उससे सच में एक क्रान्ति की लहर फूटने वाली लगती है। दलित साहित्य का एक मात्र उद्देश्य ग्रामीण, पिछड़ा और दलित समाज को सही दिशा दिखाना है। दलित अपनी पुरानी सड़ी

गली मानसिकता को लेकर ही जीते आ रहे हैं लेकिन अब वे संघर्ष करना चाहते हैं 'जरिया' कविता के माध्यम से सुशीला टाकभौरे अभिव्यक्त कर रही हैं–

''संघर्ष की राह
सिखाती है
सम्मान के साथ जीना
युगों–युगों तक''[75]

उपरोक्त कविता संघर्ष ही सम्मान को दर्शाता है। संघर्ष के बिना दलित समाज को कुछ भी हासिल नहीं होने वाला है। जब तक दलित समाज पुरानी रूढ़ व्यवस्था को नहीं नकारेगा उसकी दशा दिनबदिन बदतर होती जायेगी। डॉ. जय प्रकाश कर्दम की कविता इसी ओर इंगित करती हुई दिखाई देती है–

''जब तक स्मृतियां रहेगी
रामायण गीता और वेद रहेंगें
तब तक वर्ण सुचिता रहेगी
समाज को प्रगतिशील बनाना है तो
जाति के जहर को मिटाना है।''[76]

कविता इसी बात को स्पष्ट करती हुई नजर आती है कि जब तक धर्म, शास्त्राधारित पुरानी मान्यताएं रहेगी समाज नहीं बदल सकेगा और ना ही प्रगति हो सकेगी। हमारा समाज पुरानी मान्यता पर ज्यादा जोर देता रहा है। हमारे पुरखों ने क्या किया हम भी वही करते रहें। इसी पीड़ा को व्यक्त करती हुई हरिकिशन संतोषी की कविता की कुछ पंक्तियां–

''वे शबरी के जूठे बेर खा 'राम' हो गए
हम सदियों तक जूठन खाते रहे
और 'बदनाम' हो गए''[77]

कविता दलितों की गहरी अभिव्यंजना को अभिव्यक्त करती हुई दिखायी देती है। सवर्ण समाज दलित को सदियों से जूठन खिलाता आ रहा है और यही कहता रहा है कि यही तुम्हारे पूर्वज करते थे। यही तुम्हारे लिए उचित है, अब इस सोच को नकारने की आवश्यकता है। सवर्ण जाति के लोग निम्न जाति के लोगों से भेदभाव करते रहे हैं 'बिडम्बना' कविता इसी बात को स्पष्ट करती है–

''यहां कीमत है श्रेष्ठता वर्ण और जाति की
हृदय के स्थान पर प्रधानता है भेदभाव की
समझते नहीं समझाने पर कोई
डूबे है अपने अंह में।''[78]

कविता में बताया गया है कि ये बिडम्बना कैसी है कि समाज में श्रेष्ठ उच्च वर्ण जाति के लोग ही है। सब के ह्रदय में भेदभाव की भावना व्याप्त है। समझाने पर भी समझते ही नहीं। सब अंह में डूबे हुए हैं। भारतीय समाज में जातिगत भेदभाव को स्पष्ट करते हुए डॉ. सुखवीर सिंह अपनी कविता के माध्यम से कह उठते हैं–

''ओ मेरे गांव तेरी जमीन पर
घुटी–घुटी सांसों के साथ
पलना पड़ता है, अलग–थलग
लड़खड़ाते कदमों से
चलना पड़ता है, अलग–थलग
मरने के बाद भी
जलना पड़ता है अलग–थलग''[79]

उपरोक्त कविता में समाज में व्याप्त अलगाव पर तीखा प्रहार किया गया है। समाज में निम्न जाति के लोगों को जिन्दा रहने पर घुट–घुट कर जीना पड़ता है और मरने के बाद में भी अलग–थलग व्यवहार ही किया जाता रहा है। समाज में जाति भेद की जड़ें गहरी हो चुकी है। अब इनको उखाड़ने के लिए लगातार संघर्ष करना पड़ेगा। अपने हक के लिए सवर्ण समाज के सामने सीना तानकर खड़े रहना ही होगा।

आजादी के इतने वर्षों के बाद भी समाज जातिभेद, वर्णभेद मनुवादी व्यवस्था का अनुसरण करता रहा है। जहां एक ओर लोग चांद पर पहुंच चुके हैं। दूसरी ओर निम्न वर्ण के लोगों को अपने गांव में रहने के लिए जद्दोजहद करनी पड़ती है। सुशीला टाकभौरे जी का इस दंश से सामना होता रहा है। इन्होंने अपनी आत्मकथा में बताया है कि इनके गांव में सवर्ण लोग दूसरी तरफ रहते थे और दलित जाति के अछूत लोग गांव के बाहर अंधेरी बस्ती में रहते थे। जहां विकास का नामो निशान भी नजर नहीं आता था। इसी को स्पष्ट करते हुए पुनः इस बात को दोहराती हुए अपनी कविता 'जीवन व्यापार' में कहती हैं–

''नहीं हक इसमें उनका कुछ भी
जो है चार वर्ण से बाहर
रह नहीं सकते जो अवर्ण
अपने ही गांव के अन्दर''[80]

कवयित्री ने कविता में साफ जाहिर किया है कि जो चार वर्ण से बाहर है उनको समाज में या गांव में रहने का हक नहीं है। निम्न जाति के लोग अपने घर गांव के बाहर बनाते हैं और वहीं रहते हैं यह समाज की कैसी व्यवस्था है जो निम्न समाज को पीड़ा दर्द संत्रास

अपमान झेलने के लिए मजबूर करती है। दलित हजारों साल से इसी घुटन, भीषण यातना में जीता रहा है।

समाजशास्त्रीय पहलुओं को यदि ध्यान में रखकर देखा जाए तो समूचा दलित अपनी जीवटता के कारण हजारों साल से जूझता रहा है। हिन्दू धर्मग्रन्थों में भी दलितों को मानवीय गरिमा से बाहर रखा गया है। इनकी तुलना कुत्तों और अन्य जानवरों से की जाती रही है। मानवीय अधिकारों से प्रताड़ित करके उसके अस्तित्व पर प्रश्नचिन्ह लगाए गए है। इसलिए दलित चीखकर विद्रोही स्वर में कहता है–

''तुम्हारे रचे शब्द
तुम्हें ही डसेंगी
सांप बन कर।''[81]

दलितों में जातिगत पूर्वाग्रहों के खिलाफ विद्रोह का भाव है। सामाजिक मूल्यों को खण्डित करने की चेतना है। इसलिए लंबी दासता से भरे जीवन की अमानवीय स्थितियों से मुक्त होने की छटपटाहट दलित कविता में बखूबी देखी जा सकती हैं। 'विद्रोहणी' कविता का भाव भी यही कहता है–

''अब जीवन के चढ़ाव पर
बैसाखियां चरमराती है
अधिक बोझ से अकुलाकर
विस्फारित मन हुंकारता है
बैसाखियों को तोड़ दूँ।''[82]

समाज में व्याप्त असमानता और भेदभाव से दलित हमेशा से ही परेशान रहा है। उपरोक्त कविता वही दर्शाती है कि दलितों पर जो असमानता जातिभेद का जो बोझ डाला है अब उससे सामाजिक परिस्थितियों चरमराने लगी है। दलित अब इनको तोड़कर आजाद होना चाहता है। इसलिए अराजकता के सामने जब दलित खड़ा होता है तो इस स्थिति का चित्रण दलित कविता में उत्कर्ष पर होता है–

''अंधेरे में सूर्य देता तब
शब्द गरज उठे
नरक के कैदखाने में
कब तक यहां रहेंगे हम?
सांस घुटते हुए।''[83]

उपर्युक्त कविता में दलितों के नरक समान जीवन से मुक्त होने का आगाज है। दलित अब अपनी अस्मिता का सवाल खुद ही करने लग गए हैं। सवर्ण समाज के सामने सीना ताने

अपने वजूद के लड़ रहे हैं। अब दलित क्रान्ति करना चाहते हैं। ये जान चुके हैं। कि अगर हम जब तक नहीं लड़ेंगे समाज में अस्तित्व भी नहीं मिलेगा। सुशीला टाकभौरे की 'आदत' कविता यही बताना चाह रही है–

''बदलना चाहें अगर
क्रान्ति के साथ
बदल सकता है
सब कुछ।''[84]

जाति विभाजित समाज में दलितों की स्थिति बहुत ही दारूण है। दलितों का जाति के नाम पर हर जगह शोषण होता है। मुख्यधारा की दार्शनिक अस्मिता पर प्रश्न चिन्ह लगाते हुए दलित कवि प्रश्न करता है–

''चूहड़े या डोम की आत्मा
ब्रह्म का अंश क्यों नहीं है
मैं नहीं जानता
शायद आप जानते हैं।''[85]

दलितों को जाति के नाम पर अपमान होते रहना आम बात है। हिन्दू धर्म होने के बाद भी जाति के आधार पर अपमान सहना पड़ता है। समाज की यह धारा अपने आदर्शों मान्यताओं के प्रति गहरी सोच और संवेदनाओं के साथ दृढ़ है, तभी तो कवि कहता है–

''रोक लेती है मेरे कदमों को
बेड़ी बनकर
मेरे पूर्वजों की सीख
हिंसा नहीं है
हिंसा का जवाब।''[86]

क्योंकि यह धारा बुद्ध की मानवीय चिंताओं को अपने भीतर संजोए हुए है। घृणा वालों से भी घृणा नहीं करने की सीख देती है। दलितों में सदियों से चली आ रही सड़ी गली परम्पराओं से बाहर निकलने की छटपटाहट ऊर्जावान धारा को जन्म देती नजर आ रही है। 'दस्तक' कविता की कुछ पंक्तियां–

''खुल गये हैं दरवाजे
सदियों से बन्द
विषमता, शोषण के अंधेरे में थे हम
देख ली है रोशनी हमने।''[87]

दलित सामाजिक व्यवस्था से अब जूझने को तैयार है। अब सदियों की विषमता, शोषण सबको मिटाना चाहता है। दलितों पर असामाजिक संहितायें लाद कर उन्हें अभिशप्त जीवन जीने के लिए विवश किया जाता रहा है। इस विषमता की चक्की में पीसकर दलितों का अस्तित्व ही मिट गया है। डॉ. अम्बेडकर की प्रेरणा से दलित समाज अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ा रहा है–

''विषमता की जुल्म की चक्की में
संकलित किया गया दलितों का जीवन
उन्होंने पिरोई हुई घुमावदार रस्सी से
खूंटे पर टांग कर रखा
तब से मेरे लहू सें भीगे हुए उम्र घाव
आपस में क्रान्ति की भाषा बोलने लगे।''[88]

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने दलितों के अधिकारों की लड़ाई लड़ी है। उन्हीं के चिन्तन के कारण दलित समाज आज प्रगति के पथ पर है। दलितों के प्रेरणा स्त्रोत डॉ. अम्बेडकर और ज्योतिबा फूले रहे हैं। इनके संदर्भ में कुछ पंक्तियां–

''हाथों में अग्निध्वजा
और आंखों में शोषितों के
आंसू लेकर
गर्थस्थ गगन से
बाहर आ संभालकर
ज्योतिबा फूले के फुत्कार से
और अम्बेडकर के आवेश से
मूसलाधार बरस''[89]

दलितों का शोषण सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक विषमता के आधार पर होता रहा है। उन्हें किसी प्रकार के अधिकार समाज में प्राप्त नहीं थे। बाबा साहब ने सामाजिक भेदभाव के खिलाफ जमकर विद्रोह किया था। सुशीला टाकभौरे की कविता 'जरिया' इसी के खिलाफ खड़ी होती नजर आती है–

''आत्मसम्मान के लिए चाहिए
आस्मिता का ज्ञान
समता के लिए चाहिए

मनुष्य होने का मान
स्वतन्त्र नहीं है यदि वह
तो जीना किस काम का?''[90]

उपरोक्त कविता अम्बेडकरवादी होने का समर्थन करती है। अम्बेडकरवादी कविता समाज में शोषण के खिलाफ खड़ी नजर आती है। 'जरिया' कविता में भी अस्मिता, आत्मसम्मान स्वतन्त्रता की ही लड़ाई है। इसके साथ ही दलित कविता ने दलित समाज की चुप्पी तोड़ी है। यह चुप्पी हजारों साल से मूक वेदना बनकर दलित जीवन को हीनता बोध से भर रही थी। दलित कविता ने दलित समाज को मुखर ही नहीं किया बल्कि उसके हीनता बोध को भी तोड़ा है और सवर्ण समाज की कुलीनतावादी प्रवृति को भी झकझोरा है दलित समाज सवर्ण समाज से कहना चाह रहा है–

''यह नियति हमारी नहीं
दुष्ट नीति तुम्हारी
न्याय की तुला में
हमेशा तुम्हारा ही पलड़ा भारी।''[91]

सवर्ण समाज धर्म के नाम पर, समानता और परम्पराओं के नाम पर हमेशा से ही दलितों को धोखा देता आ रहा है। परन्तु अब दलित समझ चुके हैं इसलिए अब अपने हक को पाना चाहते हैं। 'राख' कविता में सुशीला टाकभौरे दलितों का आक्रोश कुछ इस तरह व्यक्त कर रही हैं–

''अंगारा राख बन सकता है
मजा तब है
राख फिर से दहकने लगे
अंगारा बन जाये।''[92]

दलितों में अब आक्रोश नजर आने लगा है समाज की रूढ़ियों को तोड़ने को आतुर है। एक स्वतन्त्र जीवन की मांग करने लगे हैं। दलित उन सिद्धान्तों को भी नकारने लगा है जो इसके विकास में बाधक बनते नजर आते हैं। 'कड़वी बात' कविता की कुछ पंक्तियां इसी संदर्भ को व्यक्त कर रही है–

''मन ही मन रोना
समझदारी नहीं बुजदिली है।
करना है सामना, करो
हुंकार के साथ
अन्यथा

कड़वा सच जीवन भर
रहेगा साथ–साथ।''[93]

समाज में व्यक्त जाति भेद ऊंच–नीच और छुआछूत की भावना ने दलितों को आगे नहीं बढ़ने दिया है। युवराज सोनटक्के ने 'गूंगी हस्ती' कविता में समाज का दुख उजागर किया है–

उनकी बिछाई हुई योजना बद्व राहां पर
उपेक्षित सांस रेगती रही कल तक
उन निराधारों सांसों के झोकों के संग
मूक अस्तित्व मेरा झूलता रहा पेण्डुलम के समान।''[94]

भारतीय समाज में हमेशा नियम, कानून कायदे उच्च वर्ण के लोग ही बनाते रहे हैं। समाज उनके बनाये नियमों को, बखूबी निभाता रहा है। उच्च वर्ग के लोगों ने निम्न वर्ग के लोगों को सिर्फ दिखावे मात्र की आजादी दी है। उनको हमेशा ही परम्परा में बांधे रखा है। सुशीला टाकभौरे की कविता 'दस्तक' सवर्ण समाज का दोमुंहा रूप सामने लाती है–

''दोमुंही बाते हैं दो चेहरे हैं।
चेहरे पर हर वक्त मुखौटे हैं
क्या उम्मीद करें उनसे
उनकी बातें, दिखावे सब झूठे हैं।''[95]

समाज की परम्पराएं दलितों के विकास में बाधक रही है सवर्ण समाज ने अपने लिए कोई परम्परा नहीं बनाई है। दलित इन परम्पराओं से आजाद होने के लिए हमेशा से ही छटपटाता रहा है और काफी हद तक अपनी योजना में सफल भी रहा है। 'उम्मीद' कविता इसी और ईशारा कर रही है–

''मेरी नजर रोशनदान पर है
दरवाजे भले ही बन्द हो
उम्मीद है यहीं से आयेगी
सूरज की किरणें।''[96]

उपरोक्त कविता दलितों के उत्थान को दर्शाती है। इसमें दलित समाज को अपने अस्तित्व की चिन्ता होती नजर आ रही है। सड़ी गली परम्पराओं में भी अपना वजूद तलाश रहा है। वर्तमान समय में दलितों की जो स्थिति है वो सवर्ण समाज की विषमता का ही परिणाम है। दलितों के लिए जात–पांत का भेदभाव अपनाकर इनको निचले पायदान पर पहुंचा दिया है। दलित अब इस पायदान से उठते नजर आते हैं। वे अपनी पहचान बनाने में सड़ी गली परम्परा को नकारते हुए नजर आ रहे हैं। 'पहचान' कविता इसी बात को उजागर कर रही है।

''ऐसे हो काम
जिससे सम्मान
खुद पर हो स्वाभिमान
दुनिया को अभिमान
कुछ ऐसी हो पहचान।''[97]

सवर्ण जातियां आज भी दलितों को भयभीत रखने के लिए अमानवीय अत्याचार करती हैं। इस देश की समाज व्यवस्था मनुस्मृति के आधार पर विषतावादी है। सवर्ण साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति अपनाकर वे अपनी श्रेष्ठता हमेशा बनाये रखना चाहते हैं। लेकिन धीरे–धीरे दलित जागृत होता नजर आ रहा है। वह अपनी समस्या खुद हल करता नजर आ रहा है। क्यों कि उसे आभास हो गया है कि–

''बना सकते हैं लोग
अपनी राह अपनी धरती
पा सकते हैं
अपना आकाश।''[98]

उपरोक्त कविता दलितोत्थान की ओर ईशारा कर रही है। दलित समाज में अपनी जगह बनाता नजर आ रहा है सवर्ण समाज को मुंहतोड़ जवाब देता नजर आ रहा है। सुशीला टाकभौरे ने अपने काव्य संग्रह 'स्वाति बूंद और खारे मोती' में दलित वेदना के साथ नारी वेदना का भी चित्रण किया गया है। सदियों से ही नारी हाशिए पर ही रही है। समाज में नारी का जीवन घुटन भरा संत्रास, पीड़ाओं से भरा हुआ है। 'स्वाति बूंद और खारे मोती' काव्य संग्रह में नारी की जागृति का संदेश दिया गया है। इस काव्य संग्रह में बताया गया है कि नारी की वेदना इतनी गहरी है कि वह समझ ही नहीं पाती कि इनसे बाहर निकलने के लिए संघर्ष कहां से शुरू करुं। 'सागर और आकाश' कविता नारी की वेदना को व्यक्त करती हुई नजर आती है–

''मैने कभी सागर नहीं देखा
तिमिर घन के कूप में हूं
बरसों से
सोचती हूं सागर यही है।''[99]

दलित स्त्रियों का दायरा सीमित ही रहा है। वह उस दायरे को ही संसार समझ बैठी है हर जगह रोक–टोक होती है। दलित स्त्रियां परतन्त्रता भरी जिन्दगी जीती है। दलित स्त्रियों को समाज अपने नियमों में जकड़े रहा है। ये उस जड़कन में बंधी रहती है। सुशीला टाकभौरे की 'मेहन्दी' कविता स्त्रियों के इसी रूप को दर्शाती है–

''त्याग तपस्यारत नारी, सहती है ऐसी ही पीड़ा
पीड़ा में पाती सुख, पीड़ा में सौन्दर्य निहारती
आंकती अपने जीवन का मेहन्दी सा उत्सर्ग
संस्कार वश
बन्दिनी, नारी, पंगुनारी
कितनी महान? कितनी अबला
सहती कितने दुख दर्द।''[100]

दलित स्त्रियों में दोहरे अभिशाप की पीड़ा है। क्योंकि वे दलित होने के साथ–साथ स्त्री जो है। स्त्री अपने आपको अबला भी मानने लगती है क्योंकि समाज के इतने सारे बन्धन है जो वह तोड़ भी नहीं पाती है और सारे दुख दर्द सहती रहती है। इसी तरह के स्वर सुशीला टाकभौरे की कविता 'विद्रोहिणी' में है। उनमें स्त्री स्वातन्त्रय की कामना है। वे कहती हैं–

''मां बाप ने पैदा किया था
गूंगा!
परिवेश ने लंगड़ा बना दिया
चलती रही
निश्चित परिपाटी पर
बैसाखियों के सहारे
कितने पड़ाव आये।''[101]

उपरोक्त कविता में स्त्री अपनी स्वतन्त्रता की कामना करती हुई नजर आती है। वह अपने लिए बने हुए परिवेश में अपने आप को असहाय समझती नजर आती है। दलित स्त्रियों को समाज के हर एक पहलू से अलग–रखा जाता है। दलित के साथ ही दलित स्त्रियों को भी मन्दिर में जाने की इजाजत नहीं है। 'अछूत स्त्रियां मन्दिर में' लेख में मैत्रयी पुष्पा लिखती हैं–

''मन हुआ देखे तो सही
जिन मन्दिरों में जाने से हमें रोका जाता है
वहां है क्या?
वे देवी–देवता कैसे हैं जो हमारे
चेहरे–मोहरे देखे बिना ही
बहिष्कार पर उतर आए
हम बेजुबान रहे,
नहीं कह सके कि यह पक्षपात
आदमी ने बनाया है कि भगवान तुमने।''[102]

इस प्रकार लेखिका ने अपनी कविता के माध्यम से दलित स्त्रियों पर हो रहे अन्याय का यथार्थ पक्ष समाज के समक्ष प्रस्तुत किया है। स्त्री वेदना को व्यक्त करती 'धर्म' कविता की कुछ पंक्तियां–

''कैसा धर्म? कैसा अधर्म?
हत्या बलात्कार, अन्याय, लूटमार
जो तुमने किये
अच्छा सृष्टि संहार का नियम।''[103]

उपरोक्त कविता में स्त्री की वेदना व्यक्त हुई है। वह सवर्ण समाज से प्रश्न करती हुई नजर आती है। सवर्ण समाज द्वारा किये गये अत्याचार शोषण क्या धर्म है। क्या यही सृष्टि का नियम है।

13 दिसम्बर 2012 को जागरण के ऑनलाईन संस्करण में 'दानपेटी में स्त्रियां' में आन्ध्र प्रदेश की लक्ष्मा के बारे बताया गया है। लक्ष्मा अधेड़ उम्र की दलित महिला है। उनके मां–बाप ने उन्हें मन्दिर को देवदासी बनाने के लिए दान कर दिया था। आज इस 21वीं सदी में भी 'देवदासी प्रथा' जिन्दा है। देश की समस्याओं को लेकर बड़ी–बड़ी बैठकें होती रहती है। क्या उसमें देवदासी प्रथा को जड़ से खत्म करने पर विचार नहीं किया जा सकता? क्या वर्ण व्यवस्था के आचरण के पालन हेतु ही धर्म के नाम पर इस 'देवदासी प्रथा' को आज तक जीवित रखा जा रहा है। शायद इसलिए आज भी देवदासी प्रथा बदस्तूर जारी हैं–

''वेदों ने पुराणों ने
नारी को सम्मानीय बताया है
नारी हूं मैं भी
पर दलित भी हूं
क्या इसलिए
मेरा सम्मान गिराया है।''[104]

भारतीय समाज में दलित स्त्री का बहुत शोषण हुआ है। दलित स्त्री को कदम–कदम पर शोषित होना पड़ता है। समाज स्त्री को मानव का दर्जा भी नहीं देना चाहता है और दलित स्त्री इसे आसानी से सहे जा रही है। युवराज सोनटक्के ने 'मां' कविता में स्त्री पीड़ा को खुलकर उजागर किया है–

''तू सिसकती रही निराशा के जंगल में तनहा होकर
फिर भी रखा तूने परिवार के विश्वास को दृढ़ता से बांधकर
आंसूओं को प्रश्न कर बार–बार लगातार
तु बनी रही मां शान्त निश्चल

जैसे करता गगन में विचरण धवल सौम्य बादल।''[105]

उपरोक्त कविता में कवि ने तमाम स्त्रियों के दुख को उजागर किया है। स्त्री चाहे दक्षिण भारत की हो चाहे उतर भारत की हो। सब के दुख दर्द एक जैसे ही रहे हैं। उन्हें सवर्ण समाज से दो–चार होना पड़ता है। वह समाज में अपने वजूद के लिए जद्दोजहद करती रही है। सुशीला टाकभौरे की कविता 'विद्रोहिणी' में इनका विद्रोहित रूप नजर आता है–

''मुझे अनन्त असीम दिंगत चाहिए
छत का खुला आसमान नहीं
आसमान की खुली छत चाहिए
मुझे अनन्त आसमान चाहिए।''[106]

आज की स्त्री अन्याय को देखकर या सहकर चुप बैठने वाली नहीं है वह उसके विरूद्व आवाज उठाने लगी है। अन्याय का मुंहतोड़ जबाव देना सीख चुकी है 'नमूना' कविता में सुशीला टाकभौरे ने यही बताया है–

''मेरा उपयोग
मेरा उपभोग
नहीं सह सकती मैं
सदियों से
शोषित पीड़ित
अब नहीं रह सकती मैं।''[107]

आज की स्त्री उड़ना चाहती है अपने सपनों को साकार करना चाहती है इसलिए वह मांग करती है समानता, बराबरी और संबंधों की–

''मैंने किताब मांगी
मुझे चुल्हा मिला
मैंने दोस्त मांगा
मुझे दुल्हा मिला
मुझे प्रतिबन्ध मिले
मैंने संबन्ध मांगे
मुझे अनुबन्ध मिले।
कल मैने धरती मांगी थी
मुझे समाधि मिली थी
आज मैं आकाश मांगती हूं
मुझे पंख दोगे?''[108]

स्त्री के प्रति समाज के अपना दृष्टिकोण बदलना होगा, उसकी गरिमा, अस्मिता और महत्व को समझते हुए आने वाली पीढ़ी को संजोना होगा। नारी के बिना पुरुष का अस्तित्व अधूरा है। नारी कितने ही रिश्तों को एक साथ त्याग, संयम, प्यार, ममता, सहनशीलता से निभाने में सक्षम है। लिहाजा माता–पिता को चाहिए कि वे लड़की के जन्म पर मन में उदासी न लाकर उसका भी स्वागत करें, ताकि वह स्वयं सुखी हो और समाज को सुख और सम्पन्नता से संवारे।

''लोगों का हाल बुरा है लाडी
पूजते हैं देवी, मारते हैं बेटियां
अमृता, कल्पना, इंदिरा
अब कैसे जन्म लेंगी।''[109]

अन्ततः हम कह सकते हैं 'स्वाति बूंद और खारे मोती' काव्य संग्रह में नारी चेतना का स्वर है। नारी अपने वजूद की तलाश में पुरानी सड़ी मान्यताओं को ठुकराती नजर आती है। दलित स्त्री अब खुद संघर्ष के खिलाफ कदम उठाती है न्याय की मांग करती है। अपनी शर्तों पर जिन्दगी जीने के ख्वाब बुनती है। वह सवर्ण समाज का मनुष्यता विरोधी रूप पहचानने लगी है। सुशीला टाकभौरे ने अपने काव्य में जहां समाज की अन्य परिस्थितियों को उकेरा है। वहीं स्त्री विमर्श से सम्बधित बिन्दुओं पर बहुत तीखी अभिव्यक्तियां की है। जिस संवेदनात्मक ढग से उन्होंने स्त्री प्रश्नों को अपनी कविताओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है। उससे लगता है कि वे स्त्रियों से सम्बधित पहलुओं पर पूर्ण मनोयोग से, न सिर्फ चिन्तन करती हैं। बल्कि स्त्रियों के चंहुमुखी विकास एवं प्रगति की भी प्रबल समर्थक हैं।

निष्कर्ष–

सुशीला टाकभौरे के चारों काव्य संग्रह 'हमारे हिस्से का सूरज' तुमने उसे कब पहचाना 'यह तुम भी जानो' और 'स्वाति बूंद और खारे मोती' साहित्य जगत में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। भारतीय अस्मिता में पिछड़ों और दलितों का स्थान, दलित अस्मिता का आशय परम्परा और दलित चेतना का सम्बन्ध जैसे सवाल इनके काव्य संग्रहों के केन्द्र में रहे हैं। इनके काव्य संग्रह दलितों के जीवन संघर्श व्यथा को प्रस्तुत करते हैं। इनमें सवर्णों के संकीर्ण दृष्टिकोण का प्रमाण भी मिलता है।

'हमारे हिस्से का सूरज' काव्य संग्रह दलितों को जागृति का संदेश देता नजर आ रहा है। इस काव्य संग्रह ने दलित पिछड़े लोगों को रोशनी दिखाने का काम किया है। जो आज भी

अज्ञान के अंधेरे में भटक रहे हैं। उनकी प्रगति और समाज परिवर्तन में यह काव्य संग्रह मील का पत्थर साबित हो रहा है। पिछड़ी दलित जातियां आज भी अपने पैतृक पेशे से जुड़ी हैं। इसी कारण पिछड़ती नजर आ रही है। ना तो उनकी उन्नति हो रही है और ना ही प्रगति का कोई मार्ग नजर आ रहा है। ऐसे में 'हमारे हिस्से का सूरज' कविता संग्रह ने इन जातियों की यातनाओं, समस्याओं, शोषण, पीड़ा, को स्वर दिया है इस काव्य में दलित जातियों के समक्ष अनेक प्रश्न उठाये गये हैं उनकी समस्याओं का हल सुलझाया गया है। दलित जब तक खुद उठकर सवर्ण के खिलाफ आक्रोश व्यक्त नहीं करेगा तब तक इनकी मुक्ति नहीं हो सकती। चूंकि सुशीला जी खुद एक दलित है इसलिए इनकी कविता में दलित स्वर बड़ी बेबाकी से उभरा है। इनकी कविता 'यातना के स्वर' में दलितों के पूर्वजों से लेकर आज तक अत्याचार होते नजर आते हैं। लेकिन अब वे जीवन में प्रगति का मार्ग अपनाते हैं। ऐसे ही इनकी अन्य कविता 'मेरा अस्तित्व' 'यह कौनसा समाज है' 'तभी सफल कहलाओगे' 'यातना से विचलित मन' 'दलितों के मसीहा' 'हम जान गये है, 'बदलते प्रतिमान' 'सृजन और जीवन' आदि हैं। जिनमें दलितों के विद्रोह का स्वर है। एक दलित ही दलितों का इतना करूण चित्र उकेर सकता है गैर दलित नहीं। इसी संदर्भ में मैनेजर पांडेय कहते हैं– ''प्रेमचन्द और निराला की दलित जीवन से जुड़ी रचनाओं को देखा जा सकता है। लेकिन सारी सहानुभूति, करूणा, सहृदयता और परकाया प्रवेश की कला के बावजूद गैर दलितों द्वारा दलितों के बारे में लिखे गए साहित्य में कला चाहे जितनी हो, परन्तु अनुभव की वह प्रमाणिकता नहीं होती है। जो किसी भी दलित द्वारा अपने समुदाय के बारे में स्वानुभूति की पुर्नरचना से उपजे साहित्य में होती है।''[110]

दलितों को जाति के नाम पर हमेशा अपमानित किया जाता रहा है। सदियां बीत चुकी मगर इन दलित जातियों की शैक्षणिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक स्थिति में परिवर्तन नहीं हो सका। ये जातियां पूरे देश में अलग–अलग नामों से जानी जाती है। वाल्मीकि, सुदर्शन, हेला, कुमार, मखियार आदि नाम भले ही अलग हो मगर उनके काम और स्थिति लगभग एक जैसी ही रही है। अर्जुन डांगले ने कहा है– ''दलित एक जाति नहीं बल्कि अनुभूति है। जिसमें समाज के निचले स्तर के लोगों के अनुभव, खुशियाँ और संघर्ष शामिल है। यह सामाजिक दृष्टिकोण से परिपक्व होती है। जिसका सम्बन्ध नकार और विद्रोह एवं विज्ञान के प्रति प्रतिबद्धता से है और जिसकी अंतिम परिणति क्रान्ति में जाकर होती है।''[111] लेकिन उपेक्षित दलित समुदाय अपनी स्थिति को समझने लगा है और बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा को समझने लगा है। अपने भविष्य में विचार करने लगा है। डॉ. अम्बेडकर ने कहा था– ''अछूतों के दुर्भाग्य का मुख्य जिम्मेदार हिन्दू धर्म और उसकी शिक्षा है।''[113] सुशीला टाकभौरे ने अपने काव्य संग्रहों में हिन्दू धर्म से जुड़ी दलित समाज की समस्याओं को उजागर किया है। बाबा साहब के कार्यों और विचारधारा का परिचय देते हुए प्रगति और समाज परिवर्तन के संदेश

से उन्हें अवगत कराया है। ''अभी भी समय है जाग्रत होकर लाभ लेने का अन्यथा भविष्य और अधिक अन्धकार पूर्ण होने की संभावना है।''[113]

'यह तुम भी जानो' काव्य संग्रह में स्त्रियों और दलितों को उनकी दलित स्थिति का भान कराया है। दलित मुक्ति और स्त्री का दामन से मुक्ति का स्वर उभरा है। आज तक दलित ही साहित्य की लड़ाई लड़ते रहे हैं। अब दलितों को अपने विद्रोह का झंडा स्वयं उठाना होगा। इक्कीसवीं शताब्दी दस्तक दे रही है दलित समाज को अपने आपको पहचानना होगा। शिक्षा और ज्ञान के प्रकाश को अपनाकर प्रगति करनी होगी और आगे बढ़ना होगा। इस काव्य संग्रह का एक मात्र उद्देश्य यही है कि नारी जिन दुर्गुणों, बुरी आदतों एवं कुरीतियों की कृत्रिम जंजीरों से जकड़ी हुई है पहले उससे मुक्त हो और काफी हद तक सफल भी रही है। सुशीला टाकभौरे का अतिशय संवेदनायुक्त हृदय नारी की दुर्दशा से क्षुब्ध है और इसलिए नारी के जानने योग्य कथ्य भी इस संग्रह में रहे हैं।

इनकी निम्न कविताओं में दलित दमन विरोधी और दलित चेतना के स्तर उभर कर आये हैं। कविता 'साहस' 'स्त्री' 'खोज की बुनियाद' 'स्वयं को पहचानों' 'आक्रोश' 'सही स्थिति' 'मील का पत्थर' 'आग का
धर्म' 'यह तो शर्म की बात है' 'नया इतिहास' आदि हैं। आज दलित हर तरह के बन्धनों से आजाद होना चाहते हैं। जैसे ही समाज में आगे बढ़ने के लिए कदम उठाते हैं उनको उतना ही पीछे धकेल दिया जाता है खासतौर पर दलित स्त्री को। रमणिका गुप्ता एक जगह लिखती हैं। ''औरत चाहे किसी भी वर्ग की हो, वर्ण की हो, कैसी भी धार्मिक सामाजिक स्थिति की हैसियत वाली हो। उसे अपना फैसला करने का हक देना समाज अपनी तौहीन मानता है। वह उसका पीछा करता है, उसे झुकाने पर मजबूर करता है।''[114] लेकिन अब वह मजबूर नहीं है। नारी अब जागृत हो चुकी है इसलिए कवयित्री कहती हैं। ''अब जानकी सब जान गयी है।'' स्त्री हर समस्या का हल स्वयं करना सीख रही है और आगे बढ़ रही है। लेखिका का यह काव्य संग्रह नारी को आत्मनिर्भर बनाने के में, जागरूक बनाने में सहायक रहा है। नारी के उत्थान की दृष्टि से सराहनीय है।

'तुमने उसे कब पहचाना' काव्य संग्रह नारी की वर्तमान दलित स्थिति का चित्र स्पष्ट करता है। स्त्री वर्ग के सम्बन्ध में पुरुष वर्ग की मानसिकता आज भी नहीं बदली है। इक्कीसवीं सदी में भी नारी में वही श्रृद्धा शरम दया ढूंढते हैं। लेकिन इस काव्य संग्रह में आज की स्त्री अपने इस प्रकार के रूप में संतुष्ट नहीं है। दलित स्त्री जो सदियों से पीड़ित रही है और स्त्री होने की पीड़ा को आज भी भोग रही है, वह सहने के समझौते को तोड़कर विद्रोह करना चाहती है। इस काव्य संग्रह की कविता 'तुमने उसे कब पहचाना' 'आस की पीड़ा' 'जानकी जान गयी है' 'आज की खुद्दार औरत' 'छोड़ दिया बाकी सब' 'लौटा दो मेरा विश्वास'

'विद्रोहिणी' 'वह मर्द की तरह जी सकेगी' आदि नारी का विद्रोहित रूप उजागर करती है। स्त्री अब मुक्ति चाहती है। सुशीला टाकभौरे का यह काव्य संग्रह दलित नारी चाहे ग्रामीण हो या शहरी दोनों को प्रोत्साहित करता रहा है। दलित और दलित स्त्री का जीवन एक जैसा ही रहा है। फिर भी दोनों में काफी अन्तर रहा है। डॉ. विमल कीर्ति इस सम्बन्ध में कहती हैं। ''स्त्री का दलितपन स्त्री पुरुष सम्बन्धों में है और दलित समाज की गुलामी का सम्बन्ध सामाजिक सम्बन्ध यानि हिन्दू धर्म से है।''[115]

'स्वाति बूंद और खारे मोती' काव्य संग्रह में साहित्य समाज और संस्कृति से जुड़े सवालों पर गहराई से विचार किया गया है। सामाजिक कविता के क्षेत्र में 'समर्पित भाव' 'शास्वत सत्य' 'कविता धारा' 'जीवन यथार्थ' 'दस्तक' 'जरिया' 'दिल की आग' 'कितने करीब' 'थकान' 'जीवन व्यापार' 'कड़वी बात' जैसी कविताओं को पढ़ा जा सका है। मानव मूल्य इस काव्य संग्रह की कविताओं में सहजता से मिल जाते हैं और नारी मन की पीड़ा भी व्यक्त हुई है।

साहित्य और धार्मिक ग्रन्थों ने दलित के मन में जो अविश्वास पैदा किया गया था। अब उसको नकारा जा रहा है। दलित धर्म ग्रन्थों को अब अपने विकास में बाधक मानते हैं। उनको अहसास हो चुका है कि

धर्म ग्रन्थों में हमारे हित का कुछ भी नहीं है। अर्जुन डांगले के शब्दों में ''प्राचीन भारत की परम्परा और संस्कृति में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे दलित गर्व से अपना कहे।''[116] समाज व्यवस्था के इस अन्तर्द्वद को जानना, समझना जरूरी है। तभी दलित समाज ऊपर उठ सकेगा। सवर्ण समाज दलित समाज को हमेशा से ही हेय दृष्टि से देखता रहा है। इसलिए दलितों को अपने जीवन में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जिससे वे पिछड़ते जाते हैं। इनकी समस्याएं भी बहुत गहरी है। सबसे अहम समस्या आर्थिक समस्या है। अनिता भारती अपनी पुस्तक बीजबैंक में लिखती हैं। ''भूमण्डलीकरण बाजारीकरण के चलते उसके श्रम की कीमत दिन पर दिन कम होती जा रही है। जिसके कारण उसके परिवार व उस पर सीधा असर पड़ता है। आर्थिक चुनौतियों सुलझने की जगह और उलझ रही हैं''[117] दलित अपने आपको जितना ऊपर उठाना चाहता है आर्थिक बदहाली के कारण इस दलदल में उतना ही फंसता जाता है। सुशीला टाकभौरे का काव्य संग्रह 'स्वाति बूंद और खारे मोती' दलितों में चेतना का स्वर भरता है उत्थान में सहायक सिद्ध रहा है। समाज में दलित और दलित स्त्री दोनों को मुक्ति के लिए संघर्ष करने को प्रेरित करता है। अन्याय के खिलाफ उठ खड़े होने का संदेश देता है। यह काव्य संग्रह काफी हद तक दलित और दलित स्त्री के जीवन को संवारने में सहायक रहा है सुशीला टाकभौरे जी का यह कार्य सराहनीय रहा है।

अंततः हम कह सकते हैं कि सुशीला टाकभौरे की कविताओं में समाज में समानता का स्वर मिलता है तथा वर्णवादी समाज को खुलकर चुनौती दी है। दलित समुदाय को अपनी स्थिति का अहसास कराती है। वहीं दलित स्त्री का भी संत्रास, पीड़ा, टीस से मुक्ति के लिए आह्यान करती है सामाजिक परिस्थितियों का डटकर मुकाबले के लिए प्रेरित करती है। इनके काव्य संग्रह कोई वर्ग विशेष तैयार करने के संदर्भ में नहीं बल्कि समान समाज व्यवस्था को लेकर है। दलित कवि कंवल भारती का आह्वान है–

''रचो ऐसी पारमिताएं
कि हम बन सकें एक राष्ट्र''[118]

सन्दर्भ सूची–

1. दलित स्त्री जीवन– पृ.सं. 23
2. हाशिए का विमर्श– पृ.सं. 40
3. ओमप्रकाश वाल्मीकि– दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र पृ.सं. 13–14
4. हमारे हिस्से का सूरज– पृ.सं. 28
5. वहीं से– पृ.सं. 55
6. युद्धरत आम आदमी– जुलाई 2014, पृ.सं. 64
7. हमारे हिस्से का सूरज–(यातना के स्वर) पृ.सं. 11
8. हमारे हिस्से का सूरज–(भ्रमजाल) पृ.सं. 35
9. बयान पत्रिका– जनवरी 2012 पृ.सं. 44
10. हमारे हिस्से का सूरज– पृ.सं. 1
11. बयान पत्रिका– जनवरी 2012 पृ.सं. 44
12. हमारे हिस्से का सूरज–(हम दलित) पृ.सं. 51
13. हमारे हिस्से का सूरज–(अभावों की दुनिया) पृ.सं. 41
14. बयान पत्रिका– जनवरी 2012 पृ.सं. 44
15. हंस पत्रिका–अगस्त 2004 पृ.सं. 191
16. हमारे हिस्से का सूरज–(सच– कविता) पृ.सं. 72
17. बयान पत्रिका–मार्च 2015 पृ.सं. 31
18. हमारे हिस्से का सूरज– पृ.सं. 63
19. वहीं से– (जयभीम–कविता) पृ.सं. 95
20. तुमने उसे कब पहचाना– पृ.सं. 14
21. तुमने उसे कब पहचाना– (सागर और आकाश– कविता) पृ.सं. 21
22. तुमने उसे कब पहचाना– पृ.सं. 14
23. युद्धरत आम आदमी–अगस्त 2014 पृ.सं. 38
24. युवराज सोनटक्के (कविता–माँ) पृ.सं. 30
25. दलित दखल– पृ.सं. 29
26. तुमने उसे कब पहचाना– (साहस–कविता) पृ.सं. 23
27. यह तुम भी जानो (कविता–यह कौनसा समाज है) पृ.सं. 46
28. वहीं से (कविता–आग का धर्म) पृ.सं. 26

29. कोलार जल रहा है– (कविता–स्तम्भ) पृ.सं. 21
30. यह तुम भी जानो (साहस–कविता) पृ.सं. 22
31. युद्धरत आम आदमी–जुलाई 2015 पृ.सं. 63
32. कविता में स्त्रीवाद (कविता–लौ– अनिता भारती) पृ.सं. 91
33. कोलार जल रहा है (कविता– शब्दों का खेल) पृ.सं. 25
34. यह तुम भी जानो– सुशीला टाकभौरे (कविता–साहस) पृ.सं. 22
35. कविता में स्त्रीवाद–अनिता भारती (कविता–लौ) पृ.सं. 91
36. वहीं से (वह तोड़ती पत्थर– निराला) पृ.सं. 92
37. कविता में स्त्रीवाद (यह तुम ही हो– कविता–कुन्ती) पृ.सं. 93
38. यह तुम भी जानो (कविता– मील का पत्थर) पृ.सं. 24
39. युद्धरत आम आदमी जुलाई 2014 (मुक्ति का स्वप्न) पृ.सं. 43
40. बयान पत्रिका– सितम्बर 2012 पृ.सं. 11
41. युद्धरत आम आदमी– जनवरी 2016 पृ.सं. 72
42. युद्धरत आम आदमी (कविता–रोज गूंथती हूँ पहाड़) पृ.सं. 71
43. बयान पत्रिका– सितम्बर 2012 (कविता–स्त्री) पृ.सं. 34
44. यह तुम भी जानो (कविता–गाली) पृ.सं. 30
45. बयान पत्रिका– सितम्बर 2012 पृ.सं. 12
46. समीक्षा पत्रिका– जुलाई–दिस्तम्बर 2015 (कविता–भरोसा उधार) पृ.सं. 61
47. यह तुम भी जानो (कविता– खोज की बुनिवाद) पृ.सं. 34
48. समीक्षा– जुलाई– दिसम्बर 2015 (कविता–खानाबदोश औरतें) पृ.सं. 61
49. कविता में स्त्रीवाद– पृ.सं. 89
50. वहीं से (कविता– यथास्थिति से टकराते हुए) पृ.सं. 90
51. बयान पत्रिका– 2015 (कविता– प्रभात का उजास) पृ.सं. 37
52. यह तुम भी जानो (कविता–बोधिसत्व चिन्तित है) पृ.सं. 43
53. हिन्दी दलित कविता– एक भाव यात्रा– पृ.सं. 239
54. यह तुम भी जानो– सुशीला टाकभौरे– पृ.सं. 13
55. यह तुम भी जानो– काव्य संग्रह पृ.सं. 13
56. तुमने उसे कब पहचाना– पृ.सं. 60
57. तुमने उसे पहचाना (कविता– जानकी जान गई है) पृ.सं. 66
58. बयान पत्रिका– जुलाई 2012 (कविता– हे स्त्री) पृ.सं. 2012
59. तुमने उसे पहचाना (कविता– चलो तुम्हें मेला दिखाए) पृ.सं. 72

60. एक कदम मेरा भी (2013) अनिता भारती पृ.सं. 152
61. कथा–देश फरवरी 2010 दिल्ली पृ.सं. 66
62. तुमने उसे पहचाना (कविता– औरत नहीं मजबूर) पृ.सं. 78
63. बयान पत्रिका– जनवरी 2012 (कविता– गुलाम) पृ.सं. 36
64. हंस पत्रिका नवम्बर 2013 पृ.सं. 49
65. तुमने उसे कब पहचाना (कविता–आज भी खुद्दार औरत) पृ.सं. 82
66. क्यों नहीं हिलता पचा एक भी, डॉ. रजतरानी मीनू–कादम्बिनी अगस्त 2004 पृ.सं. 74
67. युद्धरत आम आदमी सितम्बर 2015 पृ.सं. 75
68. तुमने उसे कब पहचाना (कविता– वह मर्द की तरह जी सकेगी) पृ.सं. 84
69. युद्धरत आम आदमी सितम्बर 2015 पृ.सं. 75
70. गुमशुदा सूरत– बयान पत्रिका जनवरी 2012 पृ.सं. 48
71. दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर (2008) विमल थोरात– नई दिल्ली पृ.सं. 10
72. युद्धरत आम आदमी सितम्बर 2015 पृ.सं. 78
73. स्वाति बूंद और खाते मोती (कविता– कला की पहचान) पृ.सं. 72
74. ओमप्रकाश वाल्मीकि (कविता– जाति) पृ.सं. 52
75. स्वाति बूंद और खारे मोती (जरिया–कविता) पृ.सं. 33
76. सामाजिक न्याय और दलित साहित्य (हिन्दी दलित कविता) पृ.सं. 34
77. वहीं से– पृ.सं. 35
78. स्वाति बूंद और खारे मोती (कविता– विडम्बना) पृ.सं. 65
79. हिन्दी दलित कविता– स्वरूप और विकास पृ.सं. 34
80. स्वाति बूंद और खारे मोती (कविता–जीवन व्यापार) पृ.सं. 63
81. ओमप्रकाश वाल्मीकि (बस्स बहुत हो चुका–कविता संग्रह)
82. स्वाति बूंद और खारे मोती (कविता–विद्रोहिणी) पृ.सं. 47
83. नामदेव ढ़साल (अंधेरे ने सूर्य देखा तब– कविता)
84. स्वाति बूंद और खारे मोती (आदत–कविता) पृ.स. 40
85. ओमप्रकाश वाल्मीकि (बस्स–बहुत हो चुका कविता संग्रह)
86. जय प्रकाश कर्दम (किले–कविता)
87. स्वाति बूंद और खारे मोती (दस्तक–कविता) पृ.सं. 35
88. अग्नि ध्वाजा– युवराज सोनटक्के (कविता– संग्रह) पृ.सं. 36
89. युवराज सोनटक्के (अग्निध्वाजा–कविता) पृ.सं. 63
90. स्वाति बूंद और खारे मोती (जरिया–कविता) पृ.सं. 33

91. स्वाति बूंद और खारे मोती (धर्म–कविता) पृ.सं. 42
92. स्वाति बूंद और खारे मोती (राख–कविता) पृ.सं. 104
93. स्वाति बूंद और खारे मोती (कड़वी बात– कविता) पृ.सं. 105
94. युवराज सोनटक्के (गुंगी बस्ती– कविता) पृ.सं. 35
95. स्वाति बूंद और खारे मोती (दस्तक–कविता) पृ.सं. 34
96. स्वाति बूंद और खारे मोती (उम्मीद– कविता) पृ.सं. 52
97. स्वाति बूंद और खारे मोती (पहचान–कविता) पृ.सं. 57
98. स्वाति बूंद और खारे मोती (अपनी राह– कविता) पृ.सं. 51
99. स्वाति बूंद और खारे मोती (सागर और आकाश) पृ.सं. 111
100. स्वाति बूंद और खारे मोती (मेहन्दी– कविता) पृ.सं. 110
101. वहीं से (विद्रोहिणी– कविता) पृ.सं. 47
102. खुली खिड़कियां– अछूत स्त्रियां मन्दिर में मैत्रयी पुष्पा पृ.सं. 32
103. स्वाति बूंद और खारे मोती (धर्म–कविता) पृ.सं. 42
104. युद्धरत आम आदमी अगस्त 2015 पृ.सं. 70
105. युवराज सोनटक्के (माँ– कविता) पृ.सं. 30
106. स्वाति बूंद और खारे मोती (विद्रोहिणी– कविता) पृ.सं. 48
107. वहीं से (नमूना– कविता) पृ.सं. 68–69
108. मुझे पंख दोगे? देहरी पृ.सं. 19
109. बयान सितम्बर 2012 पृ.सं. 41
110. मैनेजर पांडेय– दलित चेतना साहित्य, नवलेखन प्रकाशन पृ.सं. 4
111. अर्जुन डांगले– दलित साहित अतीत, वर्तमान और भविष्य जहरीली रोटियां आधुनिक मराठी साहित्य पृ.सं. 264–265
112. मुख्यधारा और दलित साहित्य– ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ.सं. 126
113. हमारे हिस्से का सूरज– मनोगत
114. रमणिका गुप्ता– आदिवासी लेखन (एक उभरती चेतना) सामाजिक प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्करण– 2013
115. 'दलित दखल में सम्मिलित दलितपन सामाजिक व्यवस्था की देन है। डॉ. विमल कीर्ति पृ.सं. 92
116. मुख्यधारा और दलित साहित– ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ.सं. 128
117. समकालीन नारीवाद और दलित स्त्री का प्रतिरोध (2013) अनिता भारती, स्वराज प्रकाशन पृ.सं. 295

118. चिन्तन की परम्परा और दलित साहित्य रमणिका गुप्ता के लेख से उद्घृत पृ.सं. 114

✦✦✦

तीसरा अध्याय

सुशीला टाकभौरे के उपन्यासों में दलित महिला चेतना

3. सुशीला टाकभौरे के उपन्यासों में दलित महिला चेतना–

हिन्दी में दलित उपन्यासों की संख्या बहुत कम है, लेकिन इनकी जड़ें काफी गहरी हैं। सामाजिक यथार्थ को सही रूप में दलित उपन्यासों में प्रस्तुत किया गया है। साक्षान्त मस्के की राय में ''स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात के दलित उपन्यासों में डॉ. रामजीलाल सहाय द्वारा लिखित और सन् 1954 में प्रकाशित उपन्यास 'बन्धन मुक्ति' को आधुनिक काल का पहला दलित उपन्यास कहा जा सकता है।''[1] हिन्दी के दलित उपन्यासकारों में जयप्रकाश कर्दम, मोहनदास नैमिशराय, डॉ. पी. वरूण सत्यप्रकाश, अजय नावरिया, सुशीला टाकभौरे आदि प्रमुख हैं।

सुशीला टाकभौरे द्वारा रचित तीन प्रमुख उपन्यास हैं। 'नीला आकाश' 'तुम्हें बदलना ही होगा' और 'वह लड़की'। 'नीला आकाश' उपन्यास दलितों की वर्तमान दशा, दिशा और भविष्य की आशाओं आकाक्षाओं को व्यक्त करता है। यह केवल दलित व्यथा नहीं बल्कि बेबसी मोहभंग आशावादियों की कथा है। लेखिका ने समाज व्यवस्था की आन्तरिकता दृढ़ता संकल्पशक्ति और अपनी लेखनी से संस्पर्श से अनन्य बना दिया। दूसरा उपन्यास 'तुम्हें बदलना ही होगा' है। इस उपन्यास में दलित जीवन की वर्ण–जातिभेद की समस्याओं को आज के सन्दर्भ में बताया है इस उपन्यास में समाज में व्याप्त छुआछूत की भावना और इससे जुड़े भेदभाव के व्यवहार को ज्यादा न बताकर उसको आगे की समस्या को बताया है। इस उपन्यास के पात्रों का सम्बंध शिक्षा संस्थानों से रहा हो या नहीं, मगर ऐसे अनेक पात्र, अलग–अलग नाम के साथ यहां जरूर मिल सकते हैं। पात्रों को उनकी विशेष पहचान के लिए एक निश्चित नाम दिया गया है। लेकिन जब जाति के नाम पर ही उनकी विशेष पहचान हो, तब नाम का उतना महत्व नहीं रह जाता। नाम भले ही कुछ ओर हो बात वही रहती है।

'नीला आकाश' की कथावस्तु दलित जीवन का यथार्थ है। इसमें सवर्णों के षड़यत्रों के साथ दलितों के शोषण उत्पीड़न और अभावपूर्ण जीवन का चित्रण है। अभी भी दलितों को शिक्षा के लिए जद्दोजहद करनी पड़ती है। सवर्ण और अछूत का भेद दलितों को आपसी एकता संगठन और भाईचारे की भावना से ही मिटाया जा सकेगा। 'नीला आकाश' यही संदेश देता नजर आ रहा है। इस उपन्यास में मातंग और वाल्मीकि जाति की एकता पर विशेष जोर दिया है।

सुशीला टाकभौरे जी का दूसरा उपन्यास 'तुम्हें बदलना होगा' है। इस उपन्यास की कथा में दलित जीवन की वर्ण–जातिभेद की समस्याओं को आज के सन्दर्भ में बताया है। इस

उपन्यास में समाज में व्याप्त छुआछूत की भावना और इससे जुड़े भेदभाव के व्यवहार को ज्यादा न बताकर उसके आगे की समस्या को बताया है। इस उपन्यास के पात्रों का सम्बन्ध शिक्षा संस्थानों से रहा हो या नहीं मगर ऐसे अनेक पात्र, अलग–अलग नाम के साथ यहां जरूर मिल सकते हैं। पात्रों को उनकी विशेष पहचान के लिए एक निश्चित नाम दिया जाता है लेकिन जब जाति के नाम पर ही उनकी विशेष पहचान हो, तब नाम का उतना महत्त्व नहीं रह जाता। नाम भले ही कुछ और हो बात वही रहती है।

तीसरा उपन्यास 'वह लड़की' है। इस उपन्यास में दलित नारी के जीवन की व्यथा उसकी समस्या और जीवन संघर्ष की कथा है। दलित नारी के साथ हो रहे अत्याचार, सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों का कड़वा यथार्थ इस उपन्यास में मौजूद है समाज में इन पर अनेक बन्धन लगाए जा रहे हैं जिससे इनका पूर्ण विकास नहीं हो पा रहा है। इस उपन्यास में नारी मुक्तता और स्वच्छन्दता की मांग नहीं करती बल्कि वे पुरुषों के साथ अपनी बराबरी के अधिकार की बात करती है। सदियों पहले जो मनुवादी विचार और मान्यताएं स्त्रियों के लिए अन्यायपूर्ण थी लेकिन अब समय बदल रहा है। समय के साथ उनके प्रति समाज की अवधारणा भी बदली है।

(अ) 'नीला आकाश' उपन्यास–

भारतीय समाज में वर्णभेद और जातिभेद की भावना वर्षों से चली आ रही है। 'नीला आकाश' की कथावस्तु दलित जीवन का यथार्थ है। इसमें सवर्णों के षड़यन्त्रों के साथ दलितों के शोषण उत्पीड़न और अभावपूर्ण जीवन का चित्रण है। आज भी दलितों को शिक्षा के लिए जद्दोजहद करनी पड़ती है। सवर्ण और छुआछूत का भेद दलितों की आपसी एकता संगठन और भाईचारे की भावना से मिटाया जा सकेगा। 'नीला आकाश' यही संदेश देता नजर आता है। इस उपन्यास में मातंग और वाल्मीकि जाति की एकता एक उदाहरण है।

दलित जातियां एकता और प्रेम के साथ संगठित होगी तो बड़ी ताकत बनेगी। दलित जातियों के बीच अन्तरजातीय विवाह होने चाहिए। जिससे दलित जाति एकता के सूत्र में बंधेगी। दलितों के परिवार छोटे हो ताकि अनावश्यक खर्चे बचाकर बच्चों की परवरिश कर सकें। 'नीला आकाश' इन सभी मुद्दों की ओर संकेत करता है। इस उपन्यास में महिलाओं के पूर्ण व्यक्तित्व विकास को भी माना है।

पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था में स्त्री सबलता जरूरी है, तभी स्त्री पुरुष समानता की भावना आ सकेगी। इस उपन्यास में भीकूजी और चन्दरी जैसे दलित वर्ग के प्रतिनिधि पात्र

केवल स्वयं तक सीमित नहीं है। बल्कि वे अपने दलित शोषित समाज की मुक्ति और उत्थान के लिए प्रयास करते हैं। नीलिमा और आकाश जैसी वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियां दलितों के शोषित जीवन में पूर्ण परिवर्तन लाएगी। 'नीला आकाश' मुख्य रूप से दलितों की व्यथा और एकता की कथा है।

'नीला आकाश' उपन्यास में कन्हान महाराष्ट्र के एक गांव की छोटी–छोटी बस्तियों का विवरण है। यहां की संस्कृति और परम्पराएं देश के अन्य शहरों और गांव जैसी है। सदियों से चली आ रही सामाजिक भेदभाव और छुआछूत की परम्परां यहां भी मौजूद है। पूरा गांव जाति और वर्ण के अनुसार अलग–अलग मौहल्लों में बंटा है। ब्राह्मण, बनिया, तेली, कुनबी सबकी अलग–अलग बस्तियां है। इन सबकी बस्तियों से दूर गांव के बाहर नाले के किनारे अछूत जाति के घर है। थोड़ी–थोड़ी दूरी पर मांग जाति वाल्मीकि जाति, मांगवाड़ा और मेहतर मौहल्ला बसा हुआ है। महात्मा गांधी की प्रेरणा से हरिजन मौहल्ला भी कहा जाता है। लेकिन अब यह सेवाकार कहलाने लगा है।

दलित वर्ग की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं होने की वजह से गरीब व अभावग्रस्त जीवन जीते हैं। औरत और पुरुष पीढ़ियों से चले आ रहे काम ही करते हैं। ''घर की प्रौढ़ और बूढ़ी औरतें दाई का काम करती हैं पुरुष बैण्ड बाजा और शहनाई बजाते हैं सवर्णों के घर आंगन की सफाई पशुओं के बाड़े की सफाई भी करते हैं।''[2]

यह गरीबों की मजबूरी बन जाती है कि कला में भी जाति का दंश है। उच्च वर्ग के द्वारा निम्न जाति के कलाकारों को सम्मान नहीं दिया जाता है। उच्च जाति के कलाकारों को अधिक सम्मान दिया जाता है। जबकि दलित अछूत कलाकारों को निम्न दृष्टि से देखा जाता रहा है दलित होने से जैसे उनकी कला भी निम्न हो जाती है उन्हें कदम–कदम पर अपमानित किया जाता रहा है।

सेवाकार में बसने वाली इन जातियों के बीच आपसी व्यवहार नहीं है। ये अछूत जातियां अपने से दूसरी जाति को छोटा मानती है। गांव के किसी भी अछूत को शिक्षा नहीं मिली, जातिभेद और छुआछूत के कारण कोई भी स्कूल नहीं जा सका। सेवाकार में हर गांव की तरह ही गरीबी और अभाव है जीविका के लिए सुअर पालते हैं सवर्ण समाज की सेवा करते हैं। यहां तक कि पीने का पानी सवर्ण बस्ती के कुंए से दूर खड़े होकर मांगते हैं। अछूत दलितों के पास आजीविका के कुछ भी साधन नहीं हैं। जबकि सवर्णों के पास सुख सुविधा के सारे साधन उपलब्ध है। ''कन्हान में सेवानगर से दूर, सवर्ण हिन्दू महाजनों की धनी बस्ती है। वहां कुआं पनघट, रास्ते चौबारे, मन्दिर खेत–खलिहान बैलगाड़ी हल बैल सब कुछ है।''[3]

दलित लोग इनके यहां घरों में बचा जूठा भोजन रोटी टुकड़ा, फटे पुराने कपड़े मांगकर लाते है। दलित सवर्णों के यहां कड़ी मेहनत करके भी कुछ नहीं कमाते। ''कड़ी मेहनत के बाद

खा पीकर दिल खुश हो जाए। इससे ज्यादा और क्या चाहिए, हमें कौनसा धन जोड़ना है मरने के बाद अपना धन, छाती पर रखकर ले जाना है।''[4]

दलित जाति के लोग मेहनत की कमाई हाथ में आने पर वे कुछ समय के लिए चिन्ता मुक्त हो जाते है ना तो भविष्य की चिन्ता रहती है और ना ही वर्तमान की।

शिक्षा के अभाव में दलित लोग अंधविश्वासी रहे हैं। धर्म के नाम पर पैसे बहाते रहे हैं। उपन्यास में भीकूजी और चन्दरी भी यही करते हैं– ''भगवान का नाम लेने से मोक्ष मिलता है। धर्म से ही स्वर्ग मिलता है।''[5]

धर्मशास्त्रों में दलितों की शिक्षा का प्रावधान नहीं है उनको शिक्षा से हमेशा दूर रखा जाता रहा है। दलित अंधविश्वास जैसी बुराईयों से घिरे रहते हैं सेवानगर के वाल्मीकि परिवार के लोग अंधविश्वास के कारण ग्रामदेवी की पूजा करते हैं। भीकूजी अपने बेटे रामकिशन की नौकरी लगने पर भरई माता और मसान की पूजा घर में रखता है। जहां पशु बलि दी जानी है अशिक्षा के अभाव के कारण इनको सही गलत में फर्क नजर नहीं आता। चन्दरी की सास कहती है। ''पूजा करना, तो अच्छे से करना। खर्च में कमी नहीं होनी चाहिए। भले ही हमें महिना पन्द्रह दिन भूखा रहना पड़े मगर पूजा के दिन कोई कमी नहीं होनी चाहिए।''[6] अंधविश्वास के कारण मेहनत से कमाया पैसा ढोंग में बहाते रहे हैं।

उपन्यास में दलित जाति का दंश सहने पर विवश है। इनका रोजगार भी जाति से जुड़े हैं। मानों रोजगार ही इनकी पहचान हो जाति कभी नहीं जाती लोग किसी का परिचय पाने के लिए पहले उसकी जाति पूछते हैं। भीकूजी हताश भाव से कहता है– ''कितनी भी कलाकारी हो, कितनी भी प्रगति करो, आखिर जात तो वही रहती है। ये जात–पात भेदभाव की बात लोग भूलते क्यों नहीं।''[7] समाज में जातिवादी व्यवस्था फैली हुई है। इससे ही समाज की व्यवस्था नहीं बदल पाती।

भीकूजी ने अपनी बेटियों को स्कूल भेजा। जहां उनके साथ जाति के नाम पर दुर्व्यवहार होता है। सबके पीछे बिठाते, बैठाने के लिए भी दरी या टाटपट्टी नहीं दी जाती। छुआछूत के कारण सवर्ण स्त्रियों द्वारा अपने बच्चों को समझा दिया जाता। ''मांग अछूत जाति के बच्चों के पास नहीं बैठना। इनके हाथ का कुछ खाना नहीं पीना नहीं।''[8] मास्टर जी भी उनसे यही कहते तुम पढ़कर क्या करोगी स्कूल में अछूत बच्चों से ही कमरे की सफाई करवाते। पानी के लिए चपरासी का इंतजार करना पड़ता है। दलितों के साथ उपेक्षा और अपमान का व्यवहार किया जाता रहा हैं उन्हें स्कूल में जातिभेद और छुआछूत का अपमान मिलता रहा है। इस अपमान और उपेक्षा के कारण इनको शिक्षा से दूर रहना पड़ा है। मास्टर जो एक समाज निर्माता होता है उसकी सोच भी छुआछूत और जातिभेद से जकड़ी हुई है। वह अछूत बच्चों से कहता तुमको

पढ़ लिखकर क्या देश का प्रधानमंत्री बनना है? यह हमारे समाज की विडम्बना है कि आजादी के सत्तर दशक बाद भी दलितों की स्थिति ज्यों की त्यों बनी हुई है।

उपन्यास में एक पात्र भीकूजी अपने हालात बदतर होते देख समझ जाता है कि शिक्षा ही है जो दलित समुदाय में प्रकाश ला रही है। वे इस बात को महसूस करने लगे हैं कि–''यदि हम अपने बच्चों को स्कूल पढ़ने नहीं भेजते हैं तो यह अपराध है अब हम अपनी मर्जी से अपने रोजगार भी बदल सकते हैं पढ़ लिखकर हम भी सम्मान की, ऊंचे पदों की नौकरी पा सकते हैं।''[9]

महाराष्ट्र में छपने वाली दलित पत्रिकाओं से दलित वर्ग को जागृति का संदेश मिल रहा है। डॉ. अम्बेडकर से जुड़े लोग अधिक जागृत होकर परिवर्तन के मार्ग पर आगे बढ़कर शिक्षा और नौकरी में प्रगति की ओर बढ़े। मगर मांतग और महतर जाति के लोग हिन्दू धर्म को मानते हुए गांधीजी की दया और सहानुभूति से प्रभावित रहते हुए अपनी पहले की स्थिति में जकड़े रहे हैं।

भीकूजी आशावादी प्रवृति का है इस पूरी समाज व्यवस्था को बदलने के लिए उसका मन छटपटाता है। जिस प्रकार कटे पंख का पक्षी उड़ नहीं पाता सिर्फ छटपटाता ही रहता है। वह सोचने लगा। ''उच्चवर्णी लोगों ने हमें भी इसी तरह अपने आश्रित बनाकर रखा है। हमारी शक्ति को आगे बढ़ने की हमारी क्षमता को उन्होंने हमसे छीन लिया हमें कमजोर असहाय बना दिया। ऐसा क्यों किया हमारे साथ।''[10]

भीकूजी समझ जाता है कि अम्बेडकर के साहित्य से ही दलित जागरूकता आ सकती है। वे दलितों को समझाते हैं। कि ''अपने अण्णाभाऊ साठे और डॉ. भीमराव अम्बेडकर का साहित्य पढ़ो अपने दलित पिछड़े समाज की स्थिति समझकर उनके लिए काम करो।''[11]

सवर्ण समाज द्वारा बहिष्कृत और गांव के बाहर रहने के लिए मजबूर बनाये गये इस दलितों का अपना इतिहास है। वे अपने गौरवमय इतिहास को याद करते हैं कि हमारे पूर्वज भी पहले यहां शासक थे। शासक पीढ़ी के वंशज इतने शोषित और पीड़ित कैसे हो गए। शिक्षा के अभाव में इन्हें अंधेरे में रखा जाता रहा है। उन्हें ऐसे आलोक की आवश्यकता है कि फिर उन्हें कोई भ्रमित नहीं कर पायेगा। दलित जातियां अब गौतम बुद्व और डॉ. भीमराव अम्बेडकर के प्रभावों से प्रभावित है। बुद्व धर्म के सिद्धान्त और गौतम बुद्व की अहिंसा का संदेश दलित समझने लगे हैं। भीकूजी अपने घर में हो रहे पूजा अनुष्ठान में हो रही बलि से दुखी होते हैं और निश्चय करते हैं– ''अब हम इस तरह बलि देने की पूजा नहीं करेंगे। दूसरे लोगों को भी यह बात समझायेंगे। अन्धविश्वास से पूर्ण पूजा अनुष्ठानों का हम विरोध करेगें।''[12]

वे जीव हत्या का विरोध करने लगे हैं डॉ. अम्बेडकर ने बौद्व को अपनाकर अपनी जाति को समता और सम्मान की राह दिखाई है। इसकी पहचान इनको हो गई थी। दलित लोगों से

दान मांगते है भीकूजी कई बरसों से सबको मना करते हैं– ''दान लेने के नाम पर भीख मांगना हमारे स्वाभिमान के विरूद्व है''[13]

अपने मान सम्मान को अपनी खुद्दारी को पहचानों अपने दम पर जीना सीखो। अपने आत्म सम्मान को जगाओ। दान मांगने की परम्परा ही खत्म होनी चाहिए। रामकिशन भी भीख के खिलाफ है वह दृढ़ निश्चय के साथ बोला– ''जब हम सुधरेगें, तभी अपने समाज को भी जरूर सुधार सकेंगे।''[14]

उपन्यास के मुख्य पात्र नीलिमा और आकाश के साथ भी स्कूल में कई तरह ये छुआछूत होती है। सेवानगर के अछूत बच्चे स्कूल में ऐसी प्रताड़ना और अपमान को सहते हुए पढ़ते हैं।

रोजगार का सम्बन्ध भी जाति से जुड़ा रहता है। मानो रोजगार ही इनकी पहचान हो। लोग इनको जाति से छोटा मानते हैं। जाति कभी नहीं जाती है। लोग किसी का परिचय पाने के लिए पहले उसकी जाति पूछते हैं। भीकूजी हताश भाव से निराशा के साथ यही कहता है– ''कितनी भी कलाकारी करो, कितनी भी प्रगति करो, आखिर जात तो वही रहती है। ये जात–पात भेदभाव की बात, लोग भूलते क्यों नहीं।''[15] समाज में जातिवादी व्यवस्था फैली हुई है। इससे ही समाज की व्यस्था नहीं बदल पाती। भीकूजी अपने हालात बदतर होते देख अपने बेटे को पढ़ाने की ठान लेता है क्योंकि वह समझ जाता है कि शिक्षा पाने का अधिकार हमें भी है। वे इस बात को भी महसूस करने लगे थे– ''यदि हम अपने बच्चों को स्कूल पढ़ने नहीं भेजते हैं तो यह अपराध है अब हम अपनी मर्जी से अपने रोजगार भी बदल सकते हैं। पढ़ लिखकर हम भी सम्मान की, ऊंचे पदों की नौकरी पा सकते हैं।''[16]

दलितों पर उच्च जाति के लोगों द्वारा शोषण किया जाता रहा है। तब उनका मन यही प्रश्न करता है–''क्यों हम ऐसा जीवन जीते हैं। क्यों हम सवर्ण समाज से अलग बहिष्कृत अपमानित, दलित, बेबस मानकर जीवन जीते हैं? हमारे लिए ही क्यों ऐसे बन्धन है? हम क्यों ऐसे पराधीन है? स्वतंत्र देश में रहकर भी रूढ़ि परम्पराओं से पराधीन।''[17] उपन्यास का एक पात्र भीकूजी आशावादी है इस पूरी समाज व्यवस्था को बदलने के लिए उनका मन छटपटाने लगता है। जिस प्रकार कटे पंख पक्षी नहीं उड़ पाता सिर्फ वह छटपटाता ही रहता है। वह सोचने लगा– ''उच्चवर्णी लोगों ने हमें भी इसी तरह अपने आश्रित बनाकर रखा है। हमारी शक्ति को, आगे बढ़ने की हमारी क्षमता को उन्होंने हमसे छीन लिया। हमें कमजोर असहाय बना दिया। ऐसा क्यों किया हमारे साथ?''[18] भीकूजी दुखी हो जाता है लेकिन बाद में सोचा ''ऐसी बातें भी भगवान से मांगने से नहीं मिलती जो मास्टर बार–बार हमारे बेटे को फेल करता था, अगर हम एक बार में उसका सिर फोड़कर उसे फेल कर देते, तो कोई दूसरे मास्टर भी हमारे बच्चों को फेल नहीं करते। आज हमारा बेटा रामकिशन भी मास्टर की नौकरी कर रहा

होता।''[19] सेवानगर में रहने वाले दलित जाति के लोग, धर्म के नाम पर होने वाले उत्सवों और कार्यक्रमों को दूर से ही देखते हैं। दलित धार्मिक उत्सवों में भाग नहीं ले सकते क्योंकि वह अछूत है। दलितों को समझ में आता है कि अम्बेडकर के साहित्य को पढ़ने से हमारा उद्धार हो सकता है। ''अपने अण्णाभाऊ साठे और डॉ. भीमराव अम्बेडकर का साहित्य पढ़ो अपने दलित पिछड़े समाज की स्थिति समझकर उनके लिए काम करो।''[20]

दलित जातियों में 'दहेज पद्धति' नहीं है। यहां बेटी परिवार के लिए बोझ नहीं होती। मगर कुछ दलित लोग सवर्णो की नकल करते हुए, अपनी झूठी शान दिखाने के लिए कर्ज लेकर अपनी बेटी को ससुराल भेजते हैं। यह देखकर दूसरे लालची लोग– 'दहेज नहीं दुल्हन चाहिए' की बात छोड़कर 'पहले दहेज बाद में दुल्हन' का व्यवहार करने लगते हैं। ऐसे लोग मूलनिवासी संस्कृति को भूलकर, स्त्री शक्ति का अपमान करते हैं। ऐसे लोगों पर भीकूजी और रामकिशन को बहुत गुस्सा आता था। ''स्त्रियां ही समाज और संस्कृति का आधार होता है। प्यार स्नेह और सम्मान के साथ बचपन से उन्हें सबल बनाकर, अपने समाज और संस्कृति को सबल बनाना चाहिए।''[21] भीकूजी ने अपनी बेटियों की शादी बिना दहेज के की थी। गरीब पिछड़े वर्ग के जाति समाज में दहेज के चक्कर में अनमेल विवाह भी होते रहते हैं। ये सब अशिक्षा और अज्ञान के कारण होते हैं।

नीलिमा और आकाश स्कूल जाने लगते हैं। पहले के शिक्षक छुआछूत ज्यादा मानते थे। अब के शिक्षक बदल गये हैं। फिर भी अछूत जाति के बच्चों से अभी भी स्कूल में छुआछूत और भेदभाव किया जाता है। नीलिमा और आकाश के साथ भी छुआछूत का वैसा ही व्यवहार किया जाता था। सेवानगर के अछूत बच्चे स्कूल में ऐसी प्रताड़ना और अपमान को सहते हुए पढ़ते हैं ऐसे व्यवहार से तंग आकर बच्चे पढ़ना छोड़ देते हैं, मगर आकाश और नीलिमा पढ़ते रहे। छुआछूत और भेदभाव के सम्बन्ध में उसने यह बात अपनी दादी और दादाजी से कई बार पूछी, मगर उसे कभी संतोष जनक उत्तर नहीं मिल पाया। चन्दरी कहती– ''बेटी हम मांग जात के हैं मांग जाति अछूत मानी जाती है। इसलिए हमसे लोग छुआछूत मानते हैं।''[22]

दलित जातियों में आपस में मतभेद होते रहते थे। दलित जातियां एक दूसरे को अछूत समझती थी वे अपने पुश्तैनी धन्धे को लेकर भी झगड़ा करते थे। ''तुम लोगों ने हमारा पुश्तैनी धन्धे हमसे छीन लिया है। हमारे बाल बच्चे क्या करेंगे? कैसे अपना पेट भरेंगे? यह काम सिर्फ हमारी जाति का काम है।''[23]

सवर्ण इनको आपस में झगड़ा करते देख फायदा उठाते थे ये जातियां अपने आप को दूसरी जाति से ऊंचा मानती थी। बुधिया ने समझाया ''अरे जिन्होंने हम सबको अछूत बनाकर रखा है। उनसे जाकर लड़ो। हम सब तो एक जैसे लोग है सबकी सेवा करने वाले, सेवा करके

भी छोटे कहलाने वाले। हमें तो मिलजुल कर रहना चाहिए।''[24] पहले सभी दलित जातियों में जागृति लाना जरुरी है तभी वे अपने अस्तित्व को पहचानकर संगठित हो सकेंगे।

सेवानगर में एक संस्था बनी जिसका नाम 'मांतग समाज जागृति मित्र मण्डल' है। इसमें समाज की जागृति का कार्य किया जाता था। नीलिमा भी इसकी सदस्य थी। वह समाज की महिलाओं को पुरुषों के बराबर का अधिकार दिलाना चाहती है। वह 14 अप्रैल के कार्यक्रम की तैयारी करती है। साथ ही अम्बेडकर के बारे में लोगों को बताती है। हमारे अधिकार डॉ. अम्बेडकर के कारण ही मिल पाए है। जब सेवानगर में डॉ. अम्बेडकर की जयन्ती मनायी जाती है। तो मांतग जाति और वाल्मीकि जाति के लोग गुरू वाल्मीकि और डॉ. अम्बेडकर पर बहस करते हैं। नीलिमा और आकाश समझाते हुए बोले ''डॉ. अम्बेडकर ने सभी शूद्र, अछूत, शोषित पीड़ित दलित पिछड़ी जातियों के उत्थान के लिए बहुत संघर्ष किया है। उनके कार्यों और उनके जीवन के अनुभवों को आप सुनो और समझो।''[25] नीलिमा और आकाश अम्बेडकर के कार्य बताते हैं। सेवानगर के लोगों को पहली बार मालुम हुआ– ''महाड़ के चवदार तालाब का पानी लेने के अधिकार के लिए डॉ. अम्बेडकर ने कितना संघर्ष किया। नासिक के कालाराम मन्दिर में प्रवेश के लिए भी अम्बेडकर के कितना संघर्ष किया।''[26]

कार्यक्रम के बाद नीलिमा और आकाश को खुशी हुई ''जयन्ती कार्यक्रम सफल हुआ, यह व्यर्थ नहीं जायेगा बल्कि इसी से दलितों में एकता और भाईचारे की शुरूआत हुई है।''[27] इन्होंने अपने मण्डल का नाम बदलकर 'दलित समाज जागृति मण्डल' कर दिया। इसके साथ सेवानगर की दलित पिछड़ी जातियां भी प्रगति के पथ पर आगे बढ़ने लगी। महिलाएं भी जागृत होने लगी। धीरे–धीरे शिक्षा का प्रचार प्रसार होने लगा। वाल्मीकी और मांतक समाज के लोग नीलिमा और आकाश का अन्तरजातीय विवाह के लिए मान गये। ''नीलिमा और आकाश की शर्त विवाह बौद्ध पद्वति से करने की थी। दोनों ने दोनों परिवारों को समझाया। वाल्मीकि समाज के लोगों को महसूस होने लगा– ''नीलिमा उच्च शिक्षित और समाज सुधार की भावना रखने वाली समझदार लड़की है। वह कोई बात गलत नहीं कह सकती''[28]

सब लोग मान जाते है विवाह उत्सव के साथ विजय उत्सव भी मनाते हैं। ''पुरानी परम्पराओं पर नई परम्पराओं की विजय।''[29] आज इन लोगों को अस्तित्व का अहसास होने लगा है। शोषण और उत्पीड़न का क्रूर और लम्बा इतिहास हमारे समाज और संस्कृति में रहा है। आज इन हाशियों से सामाजिक न्याय और अधिकार के लिए आवाजें उठती सुनाई देती है। 'नीला आकाश' में दलित वर्गो में आपस में भाईचारे की भावना का बड़ा सरल विवरण है। इस उपन्यास में मांग और मेहतर जाति के बीच जातिभेद की समस्या को उठाकर अन्त में दलित एकता को बताया है। अम्बेडकरवाद से जुड़कर ही दलित जागृति संभव है। नीलिमा और

आकाश समाज की एकता चाहते है। अन्तरजातीय विवाह करके समाज के लिए एक मिशाल कायम की। इससे समाज संगठित होकर मजबूत होगा।

'नीला आकाश' उपन्यास के माध्यम से महिला चेतना का पता चलता है। नीलिमा 'महिला मण्डल' नामक संस्था बनाती है। इससे महिलाएं जागृत होकर एक संगठन बना रही हैं। महिला चेतना के माध्यम से ही औरतें परिवार नियोजन के बारे में जानकर 'छोटा परिवार सुखी परिवार' की भावना का विकास कर रही हैं। महिला शिक्षा को भी बढ़ावा मिला है। महिला चेतना के माध्यम से औरतों ने शराब बन्दी का मोर्चा संभाला है। ऐसे में महिलाओं का आत्मविश्वास बढ़ चुका है। जिस अबला नारी पर पति और ससुराल वाले अन्याय और अत्याचार हिंसा का व्यवहार करते हैं। वे अब उनसे डरने लगे हैं। उनको सम्मान देने लगे हैं। अबला नारी सक्षम बनती जा रही है। वो जान चुकी है हमारे देश में संविधान में हमें कौन–कौन से अधिकार मिले हैं। समाज में बेटा–बेटी के अधिकार बराबर हैं।

दलित जातियाँ एकता और प्रेम के साथ संगठित होगी तो बड़ी ताकत बनेगी। दलित जातियों के बीच अन्तरजातीय विवाह होने चाहिए। इससे दलित जाति एकता के सूत्र में बंधेगी। दलितों के परिवार छोटे हो ताकि अनावश्यक खर्चे बचाकर बच्चों की अच्छी परवरिश कर सके। 'नीला आकाश' इन सभी मुद्दों की ओर संकेत करता है। इस उपन्यास में महिलाओं के पूर्ण व्यक्तित्व विकास को भी माना है। पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था में स्त्री सबलता जरूरी है, तभी स्त्री पुरुष समानता की भावना आ सकेगी। इस उपन्यास में भीकूजी और चन्दरी जैसे दलित वर्ग के प्रतिनिधि पात्र केवल स्वयं तक सीमित नहीं है। बल्कि वे अपने दलित शोषित समाज की मुक्ति और उत्थान के लिए और प्रयास करते हैं। नीलिमा और आकाश जैसी वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियां दलितों के शोषित जीवन में पूर्ण परिवर्तन लाएगी। 'नीला आकाश' मुख्य रूप से दलितों की व्यथा और एकता की कथा है। इस उपन्यास में नीलिमा और आकाश भविष्य की संभावनाएं और सफलताएं लिए उपस्थित हुए हैं। ये दलित समाज को शिक्षित सबल और जागरूक बनाते रहते हैं।

(ब) 'तुम्हें बदलना ही होगा' उपन्यास–

'तुम्हें बदलना ही होगा' उपन्यास की कथा में दलित जीवन की वर्ण–जातिभेद की समस्याओं को आज के सन्दर्भ में बताया है। समय बदल रहा है। दलित जीवन के दृश्य भी बदल रहे हैं। उपन्यास की एक पात्र महिमा है जो समाज में दलितों की स्थिति सुधारने में लगी हुई है। समाज की पुरानी परम्पराएं बदल रही हैं। लोग पुराने रीति–रिवाजों को बदलने और रूढ़ि परम्पराओं को तोड़ने की बातें करने लगे है। महिमा शिक्षित है और प्राध्यापिका के पद पर

कार्यरत है। जो उसे मुश्किलों का सामना करने के बाद प्राप्त होती है। दलित जाति की होने कारण हर जगह अपमान का सामना करना पड़ता है। किराये के मकान में भी जातिगत अपमान सहना पड़ता है।

दलित पिछड़े लोग रोटी रोजी के लिए कितने परेशान रहते हैं यह बात सभी जानते हैं। महिमा नौकरी की तलाश में रहती है। महिमा नौकरी का विज्ञापन देखकर अपना फार्म जमा कराती है जहां कोटे की सीट होने पर भी सवर्ण जाति के लोग को लगा लिया जाता है। मैनेजमेंट से बात करने पर महिमा भड़क जाती है। वही मैनेजमेन्ट के एक कर्मचारी को पीटना शुरू कर देती है। महिमा ने आवेश के साथ कहा ''यह स्थिति बनी है। डॉ. अम्बेडकर द्वारा दिए आरक्षण की ताकत से।''[30] महिमा अम्बेडकर विचारधारा से काफी प्रभावित है। उपन्यास में चमनलाल बजाज का विवरण है जो कि होशियार समझदार और दूरदर्शी व्यापारी है। चमनलाल जानते हैं इन दिनों महिला जागृति आन्दोलन पर चर्चा अधिक होने लगी है। वे दलित विमर्श और महिला विमर्श करके अपने आपको महान सिद्ध करना चाह रहे हैं। उनका यह प्रयास है कि वे निम्न दलित और उनके उद्वार सम्बन्धी कार्यों को प्राथमिकता देकर इन क्षेत्रों में भी अपना झंडा पहराएं। वे अपनी हवेली में बैठक करके इन सब समस्याओं पर चर्चा करते हैं।

मीटिंग में चर्चा का विषय महिला सबलीकरण होता है। महिला सबलीकरण होगा, तभी समाज में क्रांति हो सकेगी। ''आज हम यहां उसी क्रांति के विषय में बात कर रहे हैं चाहे सूरज इधर से उधर हो जाए चाहे दिन की रात हो जाए चाहे रात का दिन हो जाए मगर हम अपनी बात पर डटें रहेंगे। महिला सबलीकरण की क्रांति हम लाकर रहेंगे।''[31] नारी हमारे समाज का अंग है। नारी के बिना उन्नति संभव नहीं है। नारी को सबल बनाना जरूरी है। उसके लिए अपनी बहन बेटियों की रक्षा करना कर्त्तव्य है। सब लोगों ने समर्थन में तालियां बजाई।

चमनलाल बजाज की इस मीटिंग में कमला नेहरू महाविद्यालय के युवा प्रोफेसर धीरज कुमार भी उपस्थित हैं। वे इस संस्था के बारे में अनुमान नहीं लगा पा रहें है। यह संस्था काम करती भी है या यहां सिर्फ चर्चा ही होती है? महिला सबलीकरण विषय पर चर्चा करते–करते परिवार नियोजन की बातें करते है। परिवार नियोजन के पहले समाज की मानसिकता बदलना जरूरी है। पुत्र और पुत्री को समान समझने की जरूरत है।

महिमा में स्त्री जागृति की प्रेरणा जगाने की ललक हमेशा ही रहती है। वह गरीब अछूत बच्चों की सहायता करती है माहिमा अपने ही कॉलेज की छात्रा शोभा के घर जाती है। जहां लड़कियों के पढ़ाई पर जोर देती है। शोभा के पिता कहते हैं। ''ऐसा नहीं है सब ठीक ही चल रहा है। लड़की का क्या है उसे अपनी ससुराल जाना है। बाद में लड़के ही साथ रहेंगे।''[32] महिमा उनको अम्बेडकर के बारे में बताती है। उनकी वजह से ही हमें अधिकार मिले, हमारे बच्चे पढ़ रहे हैं। अम्बेडकर की दीक्षा भूमि नागपुर में सम्राट अशोक का धम्म चक्र प्रवर्तन दिन

मनाया जाता है। महिमा ने कहा ''यह सभी दलित पिछड़ों का शोषित पीड़ितों की मुक्ति का त्यौहार है। यहां दलित वंचितों की उन्नति और सामाजिक विचार परिवर्तन की बाते बताई गयी हैं।''[33]

सम्पूर्ण भारत में दलित जाति के कुछ लोग उच्च शिक्षा पाकर उच्च पदों पर पंहुच कर अच्छा जीवन जी रहे हैं। मगर शेष सभी लोग गरीबी अभाव में कष्टपूर्ण जीवन का संताप भोग रहे हैं। यही स्थिति वाल्मिकि जाति के लोगों की है। आज के समय में आज की नयी पीढ़ी के बच्चे अपने पैतृक रोजगार अपनाने के लिए मजबूर न बने वे शिक्षा पाए उच्च नौकरी करे। अपने जीवन में सम्मान पाएं और अपने समाज की शिक्षा जागृति और प्रगति की जिम्मेदारी उठाएं।

उपन्यास के पात्र धीरज कुमार की कॉलेज में हर रोज जाति उगलवाने के लिए अलग–अलग ठंग अपनाते थे। वे सोचते हैं ''लोग जाति का पता लगाने के लिए इतने परेशान क्यों रहते हैं।?''[34] धीरज कुमार दलित पिछड़े समाज में जागृति और शिक्षा के प्रचार–प्रसार के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। इसके लिए वे दलित पिछड़ी जाति के छात्रों को निःशुल्क ट्यूशन पढ़ाते हैं। धीरज नारी सबलीकरण पर भी विचार विमर्श करते हैं। ''नारी सबलीकरण यानी सभी स्त्रियां सबल बनें। उन्हें ऐसे अधिकार और सुविधाएं प्राप्त हो वे अपना विकास स्वयं कर सके।''[35]

दलितों पर जाति के नाम पर अत्याचार होते रहे हैं। जबकि जाति केवल उच्च वर्ग के लोगों ने बनाई है। ''भगवान ने कुछ नहीं बनाया सब कुछ इन्सानों ने बनाया है। यह वर्ण भेद जातिभेद की विशमतावादी समाज व्यवस्था मनुवादी ब्रह्मणों ने ही बनाई है।''[36]

धीरज कुमार समाज में फैली वर्णवादी व्यवस्था का विरोध करते हैं। महिमा 'दलित आन्दोलन' और 'महिला आन्दोलन' की अनेक संस्थाओं से जुड़कर दलित मुक्ति और स्त्री मुक्ति का कार्य करती है।

गैर दलित महिलाएं अपनी स्वतन्त्रता और समता सम्मान की बातें नहीं समझ पाती है। अपनी सुख सुविधाओं में डूबी ये महिलाएं, अपने शोषण और अपमान को समझ ही नहीं पाती हैं। ये महिलाऐं या तो पूरी तरह मुक्त और स्वछन्द रहना चाहती है या वहीं सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों में बंधकर परम्परा से चली आ रही, रीति–नीति के समर्थन की बातें करती हैं। ये महिलाएं या तो पुरुषों का पूरी तरह विरोध करती हैं या पुरुषों की सत्ता और आधिपत्य को पूरी तरह से स्वीकार करके चलती हैं। लेकिन दलित महिलाएं इनके बिल्कुल विपरीत हैं वे अपने अधिकारों के लिए लड़ना जानती हैं। ''दलित महिलाएं इन दोनों रास्तों से अलग तीसरा मार्ग अपनाती है। न तो वे अपने घर परिवार को छोड़ने की बात करती है और न ही स्वयं को सेवा करने वाली दासी के रूप में स्वीकार करती हैं। वे चाहती हैं पुरुषों के साथ जीवन के हर

क्षेत्र में समानता। पुरुषों के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने की हिम्मत उनमें हैं। यदि पुरुष उनके साथ गलत व्यवहार करते हैं तो वे सड़कों पर उतरकर अपने अपमान का बदला लेने के लिए आन्दोलन करती हैं।''[37]

सावित्रीबाई फुले स्त्रियों लिए प्रेरणा है स्त्रियों के मार्ग को प्रकाशित करने वाली प्रकाश स्तंभ है। उन्होनें नारी शिक्षा की मशाल जलाकर समाज में क्रान्ति लाने का काम किया जाता है। आज की महिलाएं शिक्षित होकर नौकरी करने लगी हैं। यह उनकी प्रगति का प्रमाण है मगर अब भी वे कितनी स्वतंत्र है या कितना सम्मान पाती है, यह बात विचारणीय है। उनके साथ अब भी स्त्री पुरुष समानता का भेदभाव होता है। नौकरी करने के बाद भी उन्हें अपना रूपया–पैसा स्वंय रखने या खर्च करने का अधिकार नहीं रहता। शिक्षित स्वावलम्बी होकर भी वे अबला नारी का जीवन जीती है।

सवर्ण समाज की महिलाओं की हालत भी यही रही है। परन्तु ये अपने आप में दम्भ भरती रहती है कि हम शोषित नहीं हैं। ''बहुजन समाज की महिलाएं हमेशा अपने आपको सवर्ण और उच्चवर्णी मानती हैं। उनका यह गर्व हमेशा बातों से झलकता है। यह उनकी मनुवादी जातिवादी मानसिकता है। बहुजन समाज की नारी शोषित पीड़ित रहती है मगर अपनी उच्च जाति होने का अभिमान कभी नहीं छोड़ती हैं।''[38]

दलित अब अपना इतिहास जान गए है। दलित वर्ण व्यवस्था के बाहर के लोग रहे हैं। अछूत अन्त्यज जिन्हें गांव के बाहर बसाया जाता रहा है। जिनकी छाया को भी अपवित्र माना जाता रहा है जिन्हें देखना भी पाप माना जाता है। सदियों से दलितों को शिक्षा और धन से वंचित रखा जाता रहा है। लेकिन अब कुछ लोग उन्नति कर सके हैं इसके लिए उन्हें कितना संघर्ष करना पड़ा है। दलित महिलाओं की स्थिति भी कुछ ऐसी ही रही है। उन्हें भी समाज के हाशिये पर रखा जाता रहा है। सवर्ण महिलाएं भी शोषित और पीड़ित है। ''महिलाओं को अपनी जाति और धर्म का गर्व छोड़कर जाति व्यवस्था और वर्ण व्यवस्था का विरोध करना चाहिए। जातिविहीन समाज में ही सम्मान और मुक्ति की बात सम्भव हो सकती है''[39]

स्त्री शोषण का इतिहास बहुत पुराना है। महाभारत काल में कुन्ती और द्रौपती के साथ अन्याय रामायण काल में सीता के साथ अन्याय हुआ। 16वीं शताब्दी में संत मीरा के साथ अन्याय हुआ यह नारी के विरूद्ध हिंसा और अन्याय है। ''बीसवी शताब्दी में उतरार्द्ध में, महिला हिंसा की कितनी घटनाएं घटी हैं– भंवरी देवी बलात्कार कांड, रूपकंवर का सतीकांड बनाम हत्याकांड, मथुरा बलात्कार कांड, महाराष्ट्र के भण्डारा जिले के खैरलांजी गांव में प्रियंका और उसकी मां के साथ बलात्कार और हत्याकांड, दिल्ली का निर्भया बलात्कार कांड, क्या ये हमारे देश के लिए शर्म की बातें नहीं हैं ऐसी कितनी घटना अब भी घट रही हैं, उन्हें रोकने की जिम्मेदारी हम सभी पर हैं।''[40]

'तुम्हें बदलना ही होगा' उपन्यास में दलित परिवारों की स्थिति बेहद चिन्ताजनक है। सुदर्शन, वाल्मीकी अछूत दलित जातियों में जागृति का अभाव है। लोग अपने बच्चों को स्कूल ही नहीं भेजते थे। छोटी उम्र में ही उन्हे मां बाप के धन्धे–रोजगार में लगा दिया जाता है। आर्थिक दृष्टि से भी उनकी बड़ी दीन–हीन स्थिति है। टूटे–फूटे छोटे खपरैल के घरो में वे अपने कुटुम्ब परिवार के साथ रहते हैं। दो वक्त की रोटी का जुगाड़ करना भी उनके लिए मुश्किल होता है। गन्दी बस्तियों में सभी असुविधाओं के बीच वे किसी तरह अपना जीवन जी रहे हैं। ऐसे समय में वे अपनी शोषित–पीड़ित स्थिति की बातों को समझ ही नहीं पाते हैं। उपन्यास के पात्र धीरज कुमार ने यथा सम्भव प्रयत्न करते रहते हैं।

उपन्यास के पात्र धीरज कुमार समाज परिवर्तन करना चाहते है। शुरूआत भी अपने घर से करते है। अपने माता–पिता को पैतृक रोजगार करने से मना करते है। इस पर ठेकेदार द्वारा धीरज को जेल भिजवा दिया जाता है इस पर सफाई कर्मचारियों को गुस्सा आता है। उनकी भीड़ और एकता को देखकर धीरज कुमार को छोड़ना पड़ता है। यह वाल्मीकि समाज की एकता का परिचय था। 'तुम्हें बदलना तो होगा' उपन्यास में नारी सबलीकरण की चर्चा की गई है। शांति निकेतन महाविद्यालय में स्त्री विमर्श का कार्यक्रम 'महिला सबलीकरण की आवश्यकता' पर चर्चा की जाती है। नारी समाज का सम्मानीय वर्ग है। ''जहां नारी का सम्मान होता है, वहां देवता निवास करते हैं। मैं नारी शक्ति को नमन करता हूं। नारी ही वह शक्ति है जो हमें दुनिया दिखाती है। नारी मां है, बहन है। पत्नि है, प्रेयसी है, हर रूप में नारी पूजनीय है।''[41]

नारी ही वह शक्ति है, जो पूरी दुनिया को सही मार्ग दिखा सकती है। हमारा देश महान है, जो नारी की पूजा शक्ति के रूप में करता है नारी के बिना पुरुष अधूरा है हम युगों–युगों से नारी की पूजा कर रहें हैं मगर आज का युग नारी सबलीकरण का है। अब नारी सबल बनकर अपने अधिकारों की मांग स्वंय कर रही है।''[42]

उपन्यास की पात्र महिमा दलित महिलाओं में जागृति का काम करती है। उन्होंने महिला सबलीकरण को अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया है। वे अक्सर कहती हैं– ''नारी पुरुष से किसी बात से कम नहीं है, फिर वह पुरुष के पीछे क्यों रहें? हर बात में, हर कदम पर दोनों को साथ–साथ रहना चाहिए।''[43]

उपन्यास के अहम सवर्ण पात्र चमनलाल और दलित पात्र महिमा की शादी होती है। इस पर महिमा सोचती है। ''अगर हमारी दलित जातियों की लड़कियां सवर्ण परिवार के समझदार लड़कों से विवाह करने लगें, तो समाज में सामाजिक समानता जल्दी आ सकती है।''[44] सवर्णों के साथ रहने से दलितों का सम्मान बढ़ेगा। वे अपनी दलित स्थिति से मुक्त हो

सकेंगे। साथ ही वे भी सवर्णों की तरह शिक्षा पाकर, अच्छी नौकरी करके अपना जीवन स्तर सुधार सकेंगे।

महिमा अपनी जाति के लोगों की स्थिति जानती है। कुछ घर ही सही जीवन जी रहे हैं बाकि सभी कष्टपूर्ण जीवन जीते आ रहे हैं। लोग कई पीढ़ियों से अपने इन मुहल्लों में, अपने पुश्तैनी घरों में रह रहे हैं। इनकी एक समस्या अंधविश्वास की भी है। महिमा इन सब से मुक्ति पाने के बारे में सोचती है। यह सब करने के लिए वह चमनलाल से शादी कर लेती है। लेकिन शादी के बाद ससुराल जाते ही उस के अरमान बह जाते हैं। घर जाते ही जाति पूछी जाती है, उसकी जाति क्या है, यह कौन है? उच्चवर्णी समाज में किसी अछूत लड़की को बहू के रूप में स्वीकार करना कितना कठिन कार्य है। धीरे–धीरे महिमा अपने बलबूते पर अपनी लड़ाई लड़ना शुरू करती है। क्योंकि उसे पता था कि इस परिवार में ऐसे कुछ भी नहीं होने वाला है।

वह धीरे–धीरे अपना अस्तित्व कायम करने लगती है। घर में होने वाली गोष्ठी में शामिल होने लगती है। अपने विचार व्यक्त करती है। ''जब तक पुरुषों के विचार और व्यवहार में फर्क रहेगा तब तक महिलाएं खुले दिल और दिमाग के साथ सोच नहीं पाएंगी। वे अपने सीमित कठघरे से बाहर निकल नहीं पाएंगी। इसका जिम्मेदार पुरुष है। पुरुष स्वतन्त्रता की बहुत बड़ी–बड़ी बातें करते हैं। मगर सही मायने में वे स्त्रियों की सबलता से डरते हैं, कतराते हैं। उन्हें लगता है कि वे अपनी महिलाओं को घर में कैद रखकर ही, महिलाओं का उद्वार कर लेगें।''[45]

वर्ण जाति भेद के विरूद्व सामाजिक समानता की आवश्यकता विषय पर सेमीनार आयोजित किया गया। मेहमानों को बुलाया गया। सब ने अपने–अपने विचार व्यक्त किये। किसी ने सवर्ण के पक्ष में तो किसी ने दलित पक्ष में, किसी ने महिला पक्ष में तो किसी ने विपक्ष में अपने विचार प्रकट किए। बात अन्तरजातीय विवाह की भी होने लगी। अन्तरजातीय विवाह होने चाहिए। इसी से जातिभेद वर्णभेद मिटेगा और सामाजिक एकता आएगी। ''अन्तरजातीय विवाह हमेशा खुशी–खुशी ही होने चाहिए तभी वे सफल हो सकते हैं। इससे आपस के मतभेद नहीं रहेंगे।''[46]

धीरज कुमार और उषा की सगाई की घोषणा के साथ ही जाति की घोषणा भी हुई धीरज कुमार ने अपनी जाति बताई। धीरज अब फैसला उषा के परिवार वालों पर छोड़ देता है। हम इक्कीसवीं सदी में जी रहें हैं भूमण्डलीकरण के इस युग में, पुरा विश्व एक गांव बनता जा रहा है। ऐसे समय में यदि हमारे देश में लोग वर्ण और जाति की बातों पर विचार करते हैं, तो यह हमारे लिए शर्म और कंलक की बात है। इतनी बातें होने के बाद में सब लोगों ने सहमति जताई। उषा के माता–पिता इस पर सहमति जताते हैं। यह सुनकर महिमा ने सन्ध्या को गले

लगाया और बोली। ''आज बजाज परिवार पूरी तरह से वर्ण और जातिभेद के विरूद्ध सामाजिक समतावादी बन गया।''[47]

इस उपन्यास में विभिन्न संस्थाओं और उनके कार्यों, कार्यकर्ताओं का विवरण है। कि जिनमें मात्र खोखलापन दिखाई देता है। साथ ही यह भी दर्शित होता है कि दलित कार्यकर्ता इन संस्थाओं के माध्यम में दलितों के उत्थान में संलग्न है। इस उपन्यास में बताया है कि दलित जाति की लड़की उच्चवर्ण के व्यक्ति के साथ विवाह करके अपने साहस विरोध से समता स्वतन्त्रता आसानी से पा सकती है। इस उपन्यास में अन्तरजातीय विवाह को महत्व दिया गया है। अन्तरजातीय विवाह से जातिभेद और वर्ण व्यवस्था में बदलाव किया जा सकता है। महिमा भारती ने अन्तरजातीय विवाह किया। शुरू में अपमानित होना पड़ा बाद में बदलाव आया और उच्च वर्ण के लोगों ने उसे अपना लिया। धीरज कुमार का अपना एक विशेष चरित्र है। वह समाज में बदलाव चाहता है। शुरूआत भी अपने ही घर से करता है। उसके माता–पिता जो पैतृक रोजगार करते हैं उनको मना करके सम्मान की जिन्दगी जीने के लिए कहता है। इस उपन्यास के लेखन का आधार यही है कि सामान्य रूप से सर्व व्याप्त समस्याओं को छोड़कर सामाजिक जीवन के जड़मानस में व्याप्त विशेष समस्याओं की बात की जाए और उनके परिवर्तित रूप को दिखाया जाए। सदियों से चली आ रही वर्ण जाति भेद की रीति परम्पराएं और नीतियां बदल रही है। महिमा को भी उसके ससुराल वालों ने अपना लिया। सबके मन में ये भाव मुखरित हो रहे हैं, 'तुम्हें बदलना ही होगा'।

(स) 'वह लड़की' उपन्यास–

'वह लड़की' उपन्यास में दलित नारी जीवन की संघर्ष की कथा है। इस उपन्यास में दलित नारी जीवन की समस्याओं को उकेरा गया है। दलित नारी को हर जगह समाज की मनुवादी स्थितियों से दो–चार होना पड़ता है। हमारे समाज में नारी को हमेशा से ही हाशिए पर रखा गया है। सामाजिक परिस्थितियों के कारण न तो वह अपना विकास कर पाती है और न ही शिक्षा ग्रहण कर पाती है। वह हमेशा शोषित होती है। 'वह लड़की' उपन्यास के माध्यम से पता चलता है कि स्त्रियां अन्याय के विरूद्ध संघर्ष करते हुए लड़ रही हैं, फिर भी समाज में स्त्रियों पर अन्याय अत्याचार लगातार हो रहे हैं। उन पर अभी भी अनेक प्रकार के बन्धन लगाए जा रहे हैं, जिसके फलस्वरूप अभी भी स्त्रियों के अस्तित्व और व्यक्तित्व का विकास पूर्ण रूप से नहीं हो पा रहा है। समय बदलना चाहिए, प्रत्येक नारी को अपना जीवन अपने ढंग से जीने का अधिकार मिलना चाहिए।

'वह लड़की' उपन्यास समाज में स्त्रियों कें प्रति पुरुषों का रवैया बदलने का एक जरिया है। स्त्रियां अपने अच्छे भविष्य के लिए अपनी प्रगति और सामाजिक स्थिति में परिवर्तन के लिए अपने निर्णय स्वयं लेगी तभी वे अन्यायपूर्ण समाज व्यवस्था और रीति परम्पराओं को बदल सकेंगी। दलित अपनी परम्परा अपनी सामाजिक व्यवस्था के नाम पर हमेशा लुटते रहे हैं। दलितों में शिक्षा के अभाव के कारण ही जागृति नहीं हो पायी है। परम्परा के नाम पर पैसे बहाते रहते हैं। उपन्यास में शैला नामक पात्र की सगाई के मौके पर बताशे के नाम पर हंगामा होना एक ढोंग ही तो था। शैला सोचती है– ''कैसे लोग लकीर के फकीर होते है? क्या बताशे के बिना लोग जिन्दा नहीं रह सकते? परम्पराओं के नाम पर ढ़ोग ही ज्यादा होते हैं।''[48]

इन परम्पराओं के कारण ही दलित हमेशा से ही पिछड़े रहे हैं। दलितों में भी दलित नारी की स्थिति तो और भी दयनीय रही है। दलित नारी को दोहरा संताप भोगना पड़ता है। एक तो नारी होने का दूसरा दलित होने का। दलितों में भी दलित मानी जाने वाली दलित नारी का जीवन हमेशा ही कष्टों से भरा हुआ रहा है। पहले समाज से दो चार होना बाद में ससुराल में सास, ननद और पति के ताने सुनना। मध्यप्रदेश के गांव और शहरों में स्त्रियों पर अन्याय की ऐसी घटनाएं आम बात मानी जाती रही है। यहां स्त्रियों के साथ अन्याय किया जाता रहा है। उनमें इतनी हिम्मत होती नहीं है कि वे अन्याय का जवाब दे सके। ''भमेड़ी गांव बहुत छोटा है। लड़कियों के लिए तो और भी छोटा है। वे घर के बाहर नहीं जाती, घर में रहकर घर के काम करती हैं इसलिए वे बाहर की दुनिया के विषय में कुछ नहीं जानती।''[49] क्योंकि इन्हें समाज के बारे में बाहरी दुनिया के बारे में जानने ही नहीं दिया जाता जिससे ये अन्याय को चुपचाप सहती रही हैं।

उपन्यास की एक पात्र शैला जो शिक्षित है। अन्याय, शोषण के खिलाफ आवाज उठाने के लिए कहती है। वह नारी को अबला से सबला बनाने की कोशिश में है। वह कहती है–''ऐसा धर्म, ऐसी परम्पराएं जो हमारे साथ अन्याय करते हैं उन्हें मानना धर्म नहीं है। चुपचाप अन्याय सहना धर्म नहीं है उनका विरोध करना चाहिए।''[50]

वह हमेशा नारी को ऊपर उठाने की कोशिश करती रहती है। क्या बन्धन औरतों पर ही होने चाहिए पुरुषों पर नहीं। औरतें हमेशा ही अपने जीवन में कष्ट उठाती है। हर किसी का अत्याचार का सहती रहती हैं। शैला की बहन शम्मा पर भी ऐसे ही अत्याचार होते रहते हैं। वह हमेशा उसे समझाती रहती है कि अन्याय के खिलाफ आवाज उठाओ। लेकिन शम्मा हमेशा उसको यह कहकर चुप करा देती कि मेरे नसीब में ये ही सब कुछ लिखा है जिसे मुझे भोगना है। शैला चाहती है– ''समाज में ऐसी जागृति लानी चाहिए जिससे गुनहगार को, अन्यायी–अत्याचारी को कड़ी से कड़ी सजा दी जाए, ताकि किसी की बेटी को, इस तरह जिन्दगी से और मौत से न जुझना पड़े।''[51]

आज भी समाज में लड़कियों पर अत्याचार हो रहे हैं। कहीं मायके में कहीं ससुराल में, कहीं नारी होने के कारण, कहीं जाति के कारण। हर जगह लड़कियों का शोषण हो रहा है। हिंसा, अपमान और बलात्कार हो रहे हैं जिन्दा रहने का हक छीना जा रहा है उन्हें मौत के घाट उतारा जा रहा है।

सदियों से यही परम्परा है, सदियों से यही चला आ रहा है, पुरुष प्रधान समाज में सारे अधिकार पुरुषों को ही मिले हैं इसी के बल पर वह स्त्री को शोषित पीड़ित करता है और अंहकार के साथ अपने इस व्यवहार पर खुश होता है। औरत के साथ हो रहे इस अन्याय में पुरुषों के साथ औरतें भी रहती हैं। उपन्यास की एक पात्र नमिता को उसकी काकी सास यही समझाती है– ''औरत का दिल तो धरती की तरह है। वह सब कुछ सहकर भी, अपनी धुरी पर घूमती रहती है। ऐसी ही औरत जात होती है। इसी में उसकी मर्यादा है, इसी में उसकी भलाई है।''[52]

इस प्रकार की सोच को बदलने की आवश्यकता है। समाज में स्त्री पुरुष की समानता का प्रसार हो। वे एक दूसरे को पूरक मानने लगें समाज तभी आगे बढ़ेगा।

सवर्ण समाज की स्त्रियों के हालत भी यही है। पुरुष इन्हें अपने पैरों की जूती समझते हैं लेकिन ये अहम् और अहंकार में डूबी रहने के कारण अपने शोषण के खिलाफ आवाज नहीं उठाती है अधिकतर बहुओं के लिए यह आदेश रहता है कि बाहर से आने वालों के सामने वे न आए। इक्कींसवी सदी में आने के बाद भी हमारे दकियानूसी लोग अभी भी ऐसी घटिया परम्पराओं को बरकरार रखना चाहते हैं।

दलित परिवारों में बहुओं पर इस तरह के बन्धन नहीं होते है, मगर कुछ लोग सवर्णों की नकल करते हुए, उनकी परम्पराओं का अन्धानुकरण भी करते हैं और अपने आपको बड़ा भी मानने लगते है। यही कारण है कि दलित परिवार की बेटी और दलित परिवार की बहू होने के बाद भी सामन्ती काल की नारी शोषण के बन्धनों में जकड़कर रखा जाता रहा है। जो सदियों से अभावों में रखे गए, सभी सुख सुविधाओं से वंचित भी, वे भी परम्परा के रूप में अपने घर की बहुओं पर जुल्म सितम करके खुशी पाते रहे हैं।

शैला जैसे लोग समाज में जागृति का काम करते हैं तो लोग उनका सहयोग करते हैं उनके सम्मेलन भाषण में भाग लेते हैं लेकिन बाद में वो ही करते हैं जो उन्हें अच्छा लगता है। शैला समझ रही है– ''कमला नहीं चाहती कि उनकी बहू मुझसे मिलने आए। इसमें उनको लगता है। कि मैं उच्च शिक्षित हूँ साहसी हूँ नौकरी करती हूँ नारी सबलता की बातें करती हूँ कमला नहीं चाहती कि उसकी बहू कभी ऐसी सबल बने। यदि बहू सबल बन जाएगी तो सास की सबलता का क्या होगा? अपनी सचा बचाए रखकर वो अबला बहू पर शासन करना चाहती है।''[53]

दलित समाज में अपने घर परिवार में स्त्रियों का शोषण और अत्याचार होता रहा है। उनके साथ दुर्व्यवहार किया जाता रहा है। यू.पी. हो चाहे म.पी. चाहे महाराष्ट्र हो। जब तक स्त्रियां स्वयं सबल नहीं बनती स्वयं अन्याय का विरोध नहीं करती तब तक उनका शोषण उन पर अत्याचार होते रहेंगे। चाहे सवर्ण हों या दलित स्त्री। समाज में आखिर कब तक यही चलता रहेगा। कब बदलेगी ये स्त्रियां, कब पूर्ण होगा इनका सबलता पूर्ण विकास? ऐसे कई सवाल हैं जिसका जवाब अभी भी लुप्त है। उपन्याय में पात्र शैला समाज को बताती है। ''हम स्त्रियों पर अन्याय करके अपने समाज की उन्नति को रोकते हैं। स्त्रियों के विकास से ही समाज का विकास हो सकता है। मगर पुरुष अपने स्वार्थ के कारण, इस बात को महत्त्व नहीं देते। दुष्ट सास ननद भी..... ।''[54]

कुछ लोग समाज सेवा की बाते करते हैं घर में बहू पर अत्याचार करते हैं। इस समाज व्यवस्था की विषमता, कठोरता और नारी जाति की कमजोरी के विषय में सोचने की जरूरत हैं। दलित और गैरदलित समाज में स्त्रियों की स्थिति शोषित और पीड़ित ही रही है। उपन्यास की पात्र शैला दलित और गैर दलित समाज की स्त्रियों की ऐसी शोषित पीड़ित स्थिति देखती है तो उसका हृदय आक्रोश से भर जाता है। नारी मुक्ति आन्दोलन के कार्यक्रमों में ऐसी महिलाओं का उदाहरण बताकर नारी जागृति का संदेश देती है। वह अपने भाषण में महिलाओं का हौसला बढ़ाने के लिए यह बात आवेश के साथ कहती है– ''हम भारत देश की नारी है हम फूल नहीं चिनगारी हैं।''[55] नारी की सबलता और जागरूकता अतिआवश्यक है।

शैला और निशा अखिल भारतीय दलित महिला जागृति नामक संस्था से जुड़ी हुई है। इस संस्था के द्वारा वे अखिल भारतीय स्तर पर काम कर रही हैं और देश के सभी प्रान्तों की दलित पिछड़ी महिलाओं को अपनी संस्था से जोड़कर लाभान्वित कर रही है। अभावग्रस्त मजदूर गरीब अछूत परिवार की बेटियों को कितनी यातनाएं सहनी पड़ती रही हैं।

निशा दलित शोषित पीड़ित हर महिला की मदद के लिए हमेशा तैयार रहती है वह पीड़ित महिलाओं को अपनी संस्था में कोई न कोई काम दिलाने का प्रयत्न करती है। समाज में हर किसी को ऐसी शोषित महिलाओं की मदद करने की आवश्यकता है। सबसे पहले शोषित महिला अपने ऊपर हो रहे अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाने की कोशिश करे तभी समाज और अन्य लोग मदद कर सकते हैं।

देश को आजादी मिलने के तीस बरस बाद लोगों में थोड़ी बहुत जागृति आई है। लोगों ने अपनी बस्ती का नाम हरिजन बस्ती से बदलकर भीमपुरा कर दिया। अपनी आजादी शिक्षा और नौकरी तनख्याह के अधिकारों के बारे में जानने लगे हैं। लेकिन फिर भी उन्हें पिछड़ा होने का अहसास कहीं न कहीं सताता रहा है। ना अपने बच्चों को शिक्षा दे पा रहे हैं।

और ना अपने हक के लिए लड़ पा रहे हैं। गरीबी अभाव जातिभेद और हीनता के कारण वे हमेशा मजबूर ही रहे हैं।

लेकिन अब अनेक संस्थाएं है जो महिला और दलित जागृति के लिए काम कर रही हैं। मानवतावादी दलित शुभचिन्तक महापुरुषों ने अपने समय में अभियान के रूप में जो कार्य किए थे उन्हीं कार्यो को दलित संगठन आगे बढ़ा रहे हैं। महिला संस्थाओं की महिलाएं अपनी शक्ति और सामर्थ्य के साथ महिलाओं के हित में कार्य कर रही है। ऐसी अनेक संस्थाएं हैं जिनमें दलित पुरुषों के साथ दलित महिलाएं सामाजिक आन्दोलन में अपना सहयोग दे रही हैं।

''समाज जागृति दलित मुक्ति और नारी मुक्ति के कार्य बरसों से हो रहे हैं सबसे पहले तथागत गौतम बुद्ध ने ही महिलाओं को समता, स्वतन्त्रता और सम्मान का अधिकार देते हुए उन्हें अपने बौद्ध संघ में प्रवेश दिया। सन्त कबीर ने अपने साहित्य में 'स्त्री पुरुष समानता' और स्त्रियों को सम्मान देने की बात लिखी है।''[56]

इतने बरसों से चले आ रहे दलित मुक्ति और नारी मुक्ति के संघर्ष में अब जाकर अपना रंग दिखाना शुरू किया है। समाज में नारी की महिमा के गुणगान हर कोई कर सकता है मगर उसको सम्मान देने की बात आती है तो सब पीछे हट जाते हैं। जहां एक ओर देश बुलदियों को छू रहा है। वहीं दूसरी ओर जाति के नाम पर दलितों को अपमानित किया जाता रहा है। ''हमारे देश की जाति व्यवस्था का जाल है उच्च जाति के लोग अपनी उच्चता बताने के लिए अपना सरनेम गर्व के साथ लगाते हैं मगर दलितों के लिए सरनेम अपमान का कारण बन जाता है''[57]

हमें ऐसी वर्ण व्यवस्था जाति व्यवस्था और सरनेम का बहिष्कार करना चाहिए। हमें अपने समता सम्मान के अधिकार संविधान में लिखित रूप में मिले हैं। फिर भी लोगों पर अत्याचार हो रहे हैं हमें संघर्ष करना होगा समाज से वर्णभेद और जातिभेद की भावना को पूरी तरह से मिटाना होगा। शोषित पीड़ितों अछूतों का इतिहास जानना होगा, तभी हम अपने वर्तमान और भविष्य को समझ सकेंगे।

समाज व्यवस्था में स्त्री मनुवादी लिंगभेद से पीड़ित रही है पुरुष शोषित पीड़ित रहकर भी अपनी स्त्रियों को अन्याय और शोषण का शिकार बनाते रहे हैं। इस समाज व्यवस्था को बदलने के लिए लड़कियों को बदलना होगा। वे बदलेगी तो समाज की मानसिकता भी बदलेगी जहां एक स्त्री की जीत वहीं बाकी स्त्रियों के लिए प्रेरणा बनेगी। ''जागरूक नारी ही, नारी का कल्याण सफल रूप में कर सकती है।''[58] हर वर्ग की स्त्री को उसके अधिकार मिलने चाहिए अगर हमारी समाज व्यवस्था गलत है तो उस समाज व्यवस्था को ही बदल देना चाहिए।

'नीला आकाश' में दलित जीवन का यथार्थ है। दलित शोषण उत्पीड़न और अभावपूर्ण जीवन जीते आ रहे हैं। आज भी इसके घर गांव के दूसरे छोर ही होते हैं। जहां सुविधाओं का

अभाव होता है। शिक्षा इनके जीवन में नहीं होती है। अगर कोई लेना भी चाहे तो सवर्ण लोगों की मानसिकता के शिकार होकर रह जाते हैं। लोगों द्वारा हमेशा से ही दलितों का अपमान और शोषण किया है इनको पैतृक काम के लिए मजबूर किया जाता है। 'नीला आकाश' उपन्यास में दलित जातियां समय के साथ परिवर्तन की ओर नजर आ रही हैं। इस उपन्यास के पात्र अपने जीवन से प्रेरित होकर आगे आने वाली पीढ़ी को जागृत कर रहे हैं। 'नीला आकाश' उपन्यास मुख्य रूप से दलितों की व्यथा और एकता की कथा है।

'तुम्हें बदलना ही होगा' उपन्यास की कथा में दलित जीवन की वर्ण जातिभेद की समस्याओं को आज के सन्दर्भ में बताया है। समाज में व्याप्त छुआछूत की भावना और इससे जुड़े भेदभाव के व्यवहार से उत्पन्न समस्या को बताया है। इस उपन्यास में अन्तरजातीय विवाहों से जातिभेद को मिटाने की बात कही गयी है।

महिमा चमनलाल की शादी धीरज और उषा की शादी उनका जागृति आन्दोलन समाज के लिए एक नई पहल है। दलित साहित्य से दलित लोगों में चेतना जागृत हो रही है। समाज से वर्ण व्यवस्था गायब होती नजर आ रही है। हम परिवर्तन चाहते हैं परिवर्तन की बात करते हैं, तब यह परिवर्तन हर तरफ देखा जाना चाहिए। भलें ही ये बातें आज की न लगे मगर आगे की सम्भावना जरूर है। 'तुम्हें बदलना ही होगा' उपन्यास इसी ओर ईशारा कर रहा है।

'वह लड़की' उपन्यास में दलित नारी के जीवन संघर्ष की व्यथा है। आज समाज में शिक्षा जागरूकता होने के बावजूद भी स्त्री निचले पायदान पर ही है। उस पर अन्याय अत्याचार लगातार हो रहे हैं। हम सम्मेलनों भाषणों में नारी मुक्ति के नारे तो लगाते हैं पर अपने आसपास हो रहे नारी अत्याचार को रोकने का प्रयास नहीं करते। 'वह लड़की' उपन्यास समाज में स्त्रियों के प्रति पुरुषों का दृष्टिकोण बदलने का एक ज्वलन्त दस्तावेज है। स्त्रियां अपने भविष्य के लिए अपनी प्रगति के लिए आगे आएगी। तभी वे अन्यायपूर्ण समाज व्यवस्था और रीति परम्पराओं को बदल सकेंगी 'वह लड़की' उपन्यास से नारी समाज में एक जागृति की लहर आएगी। वह अपने ऊपर हो रहे शोषण अत्याचार का अन्त करेगी। इससे स्त्री पुरुष की समानता को भी बढ़ावा मिलेगा। अन्तरजातीय विवाह से सवर्ण और दलित जाति शब्द को मिटाया जा सकेगा। दलित और दलित नारी के उत्थान में यह उपन्यास कारगर साबित होगा।

सन्दर्भ सूची–

1. साक्षान्त मस्के– परम्परागत वर्ण व्यवस्था और दलित साहित्य पृ.सं. 89
2. नीला आकाश पृ.सं. 11
3. नीला आकाश पृ.सं. 15
4. वहीं पृ.सं. 20
5. नीला आकाश पृ.सं. 20
6. नीला आकाश पृ.सं. 50
7. नीला आकाश पृ.सं. 22
8. नीला आकाश पृ.सं. 24
9. नीला आकाश पृ.सं. 22
10. वहीं से पृ.सं. 44
11. वहीं से पृ.सं. 46
12. नीला आकाश पृ.सं. 50
13. नीला आकाश पृ.सं. 57
14. वहीं से पृ.सं. 58
15. नीला आकाश पृ.सं. 22
16. वहीं से पृ.सं. 22
17. नीला आकाश पृ.सं. 29
18. वहीं से पृ.सं. 29
19. नीला आकाश पृ.सं. 44
20. वहीं से पृ.सं. 46
21. वहीं से पृ.सं. 53
22. नीला आकाश पृ.सं. 63
23. नीला आकाश पृ.सं. 75
24. नीला आकाश पृ.सं. 77
25. वहीं से पृ.सं. 85
26. वहीं से पृ.सं. 92
27. नीला आकाश पृ.सं. 93
28. वहीं पृ.सं. 103
29. नीला आकाश पृ.सं. 105

30. तुम्हें बदलना ही होगा पृ.सं. 28
31. तुम्हें बदलना ही होगा पृ.स. 37
32. तुम्हें बदलना ही होगा पृ.सं. 55
33. वहीं पृ.सं. 58
34. तुम्हें बदलना ही होगा पृ.सं. 63
35. वहीं पृ.सं. 67
36. वहीं पृ.सं. 70
37. तुम्हें बदलना ही होगा पृ.सं. 78
38. तुम्हें बदलना ही होगा पृ.सं. 81
39. वहीं से पृ.सं. 81
40. तुम्हें बदलना ही होगा पृ.सं. 83
41. तुम्हें बदलना ही होगा पृ.सं. 104
42. वहीं से पृ.सं. 104
43. तुम्हें बदलना ही होगा पृ.सं. 108
44. वहीं से पृ.सं. 115
45. तुम्हें बदलना ही होगा पृ.सं. 150
46. तुम्हें बदलना ही होगा पृ.सं. 223
47. तुम्हें बदलना ही होगा पृ.सं. 239
48. वह लड़की पृ.सं. 11
49. वहीं से पृ.सं. 17
50. वह लड़की पृ.सं. 22
51. वह लड़की पृ.सं. 30
52. वह लड़की पृ.सं. 47
53. वहीं से पृ.सं. 68
54. वहीं से पृ.सं. 69
55. वहीं से पृ.सं. 71
56. वह लड़की पृ.सं. 109
57. वह लड़की पृ.सं. 122
58. वहीं से पृ.सं. 163

चौथा अध्याय

सुशीला टाकभौरे के कथा साहित्य में दलित महिला चेतना

4. सुशीला टाकभौरे के कथा साहित्य में दलित महिला चेतना–

इक्कीसवीं शताब्दीं में हिन्दी साहित्य में दलित विमर्श ने एक महत्वपूर्ण स्थान बना लिया है। दलित साहित्य दलित लेखकों की आत्मकथाओं से प्रारम्भ होकर कविता के दौर से गुजरता हुआ कहानी के क्षेत्र में भी सशक्त उपस्थिति दर्ज करा रहा है। दलित विमर्श के पहले भी हिन्दी में प्रेमचन्द, निराला जैसे साहित्यकारों ने दलितों के जीवन से सम्बधित कहानियां लिखी। प्रेमचन्द की 'कफन' 'सद्गति' ठाकुर का कुंआ तथा निराला की 'चतुरी चमार' इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं।

कहानी के क्षेत्र में जिन दलित लेखकों ने अपनी उपस्थिति दर्ज की है उनमें ओमप्रकाश वाल्मीकी, सूरजपाल चौहान, दयानंद बटोही, डॉ. एन.सिंह, मोहनदास नैमिशराय, रजतरानी मीनू, अनीता भारती, सुशीला टाकभौरे आदि महत्वपूर्ण नाम है। इन्होंने कथा साहित्य से दलित समाज में जागृति फैलाई है। इन सबसे हटकर सुशीला टाकभौरे का 'टूटता वहम' 'संघर्ष' 'अनुभूति के घेरे में' कथा संग्रह व्यापक चर्चा का विषय रहे हैं।

'अनुभूति के घेरे' कहानी संग्रह में 'भूख', 'त्रिशूल', 'सांरग तेरी याद में', 'दिल की लगी', 'हमारी सेल्मा' 'गलती किसकी है', 'सही निर्णय', 'सूरज के आसपास', 'टुकड़ा–टुकड़ा शिलालेख' आदि कहानियां संग्रहित हैं। 'अनुभूति के घेरे' की सभी कहानियां नारी जीवन की समस्याओं पर लिखी गई हैं। जहां नारी मनुवादी के आधार पर क्षमा, त्याग, करूणा, ममता, दया, परोपकार आदि सद्भावों से परिपूर्ण आदर्श रूप है, जहां उनके अधिकार नहीं केवल कर्त्तव्य ही कर्त्तव्य हैं। इन कहानियां का उद्देश्य है, समाज को यह पता चले कि चुप रहने वाली सहनशील नारी के मन में कितनी वेदना होती है।

दूसरा कहानी संग्रह 'टूटता वहम्' है जिसमें 'मेरा बचपन', 'झरोखे', 'मेरा समाज', 'टूटता वहम्', 'मंदिर का लाभ', 'व्रत और व्रती', 'धूप से भी बड़ा' आदि कहानियां संग्रहित हैं। 'टूटता वहम' कहानी संग्रह में पिछड़ी दलित जाति से जुड़ी कहानियां हैं। इन कहानियों से पता चलता है कि समाज इतना आगे बढ़ जाने के बाद भी जाति का दंश दलितों के लिए आज भी बना हुआ है। ''अब तो सब कुछ बदल रहा है, सवर्ण शूद्र के आपसी सम्बन्ध बदल रहे हैं, जो सवर्ण पहले छूने की कल्पना भी नहीं कर सकते थे वे अब शिक्षित सहकर्मी शूद्र अछूतों के हाथों में हाथ रखकर बातें करने लगे हैं।''[1] लेकिन फिर भी सवर्ण समाज के कुछ लोग अभी भी दलितों

को अपने समान न मानकर वर्णभेद को किसी न किसी रूप में बनाए रखना चाहते हैं। इस कहानी संग्रह में समाज की ऐसी मानसिकता पर प्रहार किया गया है।

तीसरा कहानी संग्रह 'संघर्ष' है, इसमें 'संघर्ष', 'जन्मदिन', 'छौआ मां', 'नई राह की खोज', 'संभव–असंभव', 'बदला', 'चुभते दंश', 'दमदार' आदि कहानियां संग्रहित हैं। 'संघर्ष' कहानी संग्रह में दलितों के जीवन का संघर्ष चित्रित है। भारतीय समाज में दलित पिछड़ी कुछ जातियां ऐसी भी है जो गांधीवादी विचार धारा से ग्रसित होने के कारण आज भी अम्बेडकरवादी विचारधारा को नहीं समझ पाई हैं। इस कारण वे प्रगति और परिवर्तन से आज भी बहुत दूर हैं। वे आज भी अपने सनातन धर्मी विचारों के कारण अज्ञान और भ्रम के अंधेरे में भटक रहे हैं। समय के साथ शताब्दियां बीत रही हैं मगर दलित जातियों की सामाजिक आर्थिक शैक्षणिक, धार्मिक स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं हो पा रहा है। 'संघर्ष' कहानी संग्रह से दलित पिछड़े समुदाय तक अम्बेडकरवादी विचारधारा का संदेश पहुंचेगा। दलित समुदाय भी प्रगति और परिवर्तन के साथ–साथ समता सम्मान का जीवन जी सकेंगे। अपना वर्तमान अच्छा बनाकर आनेवाली पीढ़ियों के वर्तमान और भविष्य के लिए विचार कर सकेंगे। यही 'संघर्ष' कहानी संग्रह का उद्देश्य है।

(अ) 'अनुभूति के घेरे' कहानी संग्रह–

'अनुभूति के घेरे' कहानी संग्रह में दलित समाज और नारी को प्रमुख आधार बनाया है। दलित समाज और नारी–दोनों की स्थिति शोषण और अन्याय के कारण सदियों से ही पिछड़ी रही है। साहित्य में अनेक प्रवृतियां आई, अनेक वाद–विवाद हुए, कई साहित्यिक आन्दोलन चले, साहित्य के माध्यम से नये विचार प्रवाह आए फिर भी दलित समाज और नारी की स्थिति पिछड़ी ही रही है। समाज में अज्ञान अशिक्षा, शोषण, अन्याय, अत्याचार की शिकार दलित नारी ही बनती जा रही है। नारी का शोषण नारी होने के कारण भी किया जाता रहा है। इन बातों को सवर्ण समाज की नारी अथवा सम्पूर्ण नारी अथवा नारी समाज में देखा जाता रहा है।

'अनुभूति के घेरे' कहानी संग्रह में सुशीला टाकभौरे ने दलित स्त्री की त्रासदी को उकेरा है। इनकी कहानियां वर्णव्यवस्था की जातिगत भेदभाव छुआछूत सामाजिक सांस्कृतिक विसंगतियों के तह में जाकर उनके जीवन की स्थितियों की पड़ताल करती है। जहां नारी को मनुष्य होने से एक दर्जा नीचे की जिन्दगी जीनी पड़ रही है।

'त्रिशूल' कहानी में दलित नारी जीवन के अंधकार को चित्रित किया है। एक नारी दिषा बोध पाने के लिए कितनी उद्वेलित होती है। इस कहानी में दलित नारी के जीवन का यर्थाथ चित्रण है। जहां नारी के जीवन में केवल धुन्ध ही धुन्ध दिखाई देती है कोई राह या दिशा पाना

बड़ा कठिन होता नजर आ रहा है क्योंकि पुरुषसत्ता और सामाजिक बेड़ियां इतनी गहरी है कि रास्ता निकाल पाना मुश्किल है। ''ऐसा लगता है। मानों जमीन के एक टुकड़े को लीप कर, दीवारों से घेर कर उसे छत से ढ़ंक दिया हो।''[2]

कहानी के नारी पात्र अपने जीवन के अंधकार को दर्शाती हैं। जहां समाज और पुरुष का वर्चस्व चारों ओर नजर आता है और वह खुद को उसमें ढ़की पाती है। यह स्थिति समाज की हर स्त्री के साथ होती रही है।

यद्यपि यह अलग बात रही है कि सवर्ण समाज की महिलाएं स्वयं को कभी दलित मानना स्वीकार नहीं करती, भले ही उन्हें सामाजिक रीति नीतियों के नाम पर कितना ही कष्ट सहना पड़ता हो। वे कितनी अधिकार सम्पन्न है और कितनी अधिकार विहीन? इन सभी तथ्यों को जानते हुए भी वे स्वयं को दलित और शोषित मानना स्वीकार नहीं करती।

'सांरग तेरी याद में' कहानी में स्त्री के जीवन का दर्द है। यह दर्द स्त्री को सामाजिक परम्पराओं के कारण मिलता रहा है। लेखिका ने इस कहानी में स्त्रियों पर सामाजिक तौर पर लगाये प्रतिबन्धों को चित्रित किया है। कहानी में दर्शित होता है कि स्त्री अपनी मानसिक कमजोरी के कारण वे मूक प्राणी की तरह सब कुछ सहती रहती है। लेखिका ने कभी सौदामिनी और कभी नानी की कहानी की राजकुमारी के माध्यम से इस कहानी को नई दिशा दी है। नारी अपने जीवन में कितनी मजबूर है इस कहानी के माध्यम से पता चलता है ''क्योंकि बेटी विवश है, बेटी को हमेशा बन्धनों में रखा जाता है बेटी को दुख और अत्याचार चुपचाप सहन करना पड़ता है। चाहे पिता का घर हो या ससुराल, सारे बन्धन उसी पर लगाये जाते हैं। उसका सुखः दुख दूसरों पर निर्भर रहता है।''[3]

हिन्दू समाज में ब्राह्मणवादी कर्मकाण्ड, रीति रिवाज और संस्कारों की नकल की जाती है या सिखाया जाता है। यहां तक की दलित समाज पढ़–लिखकर अम्बेडकरी चिन्तन से दूर ही बना हुआ है। लड़कियों के माता–पिता भी अपनी बेटी पर होने वाले अत्याचारों का विरोध नहीं करते बल्कि वे बचपन से इनको परम्परावादी मनुवादी संस्कारों की सीख देते रहे हैं। ''बेटी दुखः सुख तो अपनी किस्मत का लिखा लेख है उसे कौन मिटा सकता है। पति के घर रह कर उनके पूरे परिवार की सेवा करते रहना ही नारी का धर्म है। लड़की की डोली पिता के घर से जाती है और उसकी अर्थी पति के घर से उठती है। दुख हो या सुख ससुराल में ही रहो, वहीं जियो वहीं मरो इसी से तुम्हें स्वर्ग मिलेगा, इसी से तुम धर्म का लाभ प्राप्त कर सकोगी।''[4]

इन्हीं विचारों के कारण स्त्रियां अपने ससुराल में अन्याय सहन करती रही हैं। लेकिन अब स्थिति बदल रही है। स्त्री समाज में अपने हक के लिए लड़ना सीख रही है। ''सौ साल पुरानी सामाजिक व्यवस्था में बेटी की स्थिति, पत्नी की स्थिति, पत्नी के कर्त्तव्य, नैतिक आदर्श आदि जो थे, वे अब बदल गये हैं।''[5] यह बदलाव अम्बेडकर चिन्तन से आने लगा है।

'हमारी सेल्मा' कहानी में लेखिका ने नारी के प्रति नारी के व्यवहार को चित्रित किया है। सेल्मा बीमारी से पीड़ित होने के कारण घर में रहती है जीवन के अन्तिम पहर में अपने अभिमान–स्वाभिमान, दृढ़ निश्चय और मान अपमान की परिभाषा बदलने का प्रयत्न करती रहती है। वह अपने आदर्शों को अन्य स्त्रियों के साथ बांटने की कोशिश करती रहती है। वह कहती है। ''अपने व्यावहारिक दुर्गुण के प्रति सचेत रहें और जहां तक हो सके कोरे आदर्शों के लिए स्वयं के साथ या किसी ओर के साथ अन्याय न करें जिन्दगी सही अर्थों के कुछ समय के लिए ही मिले, तो भी क्या कम है।''[6]

शिक्षा का महत्व 'प्रतीक्षा कहानी' में हुआ है। शिक्षित दलित महिला की विडंबनाएं दलित चेतना के साथ उजागर होती है। नारी शिक्षित हो जाए नौकरी करने लगे, बड़े पदों पर सम्मान और अधिकार सम्पन्न स्थान पा ले फिर भी घर–परिवार में हमेशा उसे कमजोर औरत के रूप में ही देखा जाता रहा है। समाज और परिवार में आज भी उसे स्मृतिकालीन मनुवादी दृष्टिकोण से ही देखा जाता रहा है। शिक्षित नौकरी पेशा स्त्रियों को अनेक अनुबन्धों के साथ दोहरी–तीहरी जिम्मेदारियां निभानी पड़ रही है। चाहे घर का काम हो या परिवार की जिम्मेदारियां नारी को ही इसका जिम्मेदार ठहराया जाता रहा है। यदि स्त्री साहस के साथ आगे बढ़कर संघर्श करती है, तब भी उसे टूटन और अकेलेपन का सामना करना पड़ता है। यदि वह विरोध और संघर्ष का रास्ता छोड़कर, हर बात के लिए, हर स्थिति में चुप रहकर समझौता करते हुए झुकती है तब उसे मानसिक रुप से अनेक तनाव, बन्धन, घुटन, पीड़ा–वेदना और विवशता की स्थिति में जीना पड़ता है। 'प्रतीक्षा' कहानी नारी की इन्हीं समस्याओं को उजागर करती नजर आती है। लेकिन अब वह इन सारी समस्याओं से छुटकारा पाना चाहती है वह कहती है ''मेरे जीवन का उद्देश्य मैं स्वयं निश्चित करूंगी। मैं अपनी स्वामिनी स्वयं हूँ। प्यार करना है तो पूरे विश्व से करूंगी किसी पर न्यौछावर होना है तो पूरे समाज पर, पूरे देश पर न्यौछावर होऊंगी। समाज में बहुत दुख है, गरीबी है, लाचारी है, अन्याय अत्याचार है, मैं उनके लिए काम करूंगी।''[7] वह अपने जीवन का उद्देश्य और आधार समाज और देश के लिए बनाना चाहती है।

'गलती किसकी है' कहानी वर्तमान परिदृश्य में बेटे–बेटी के प्रति सोच को उजागर करती है। आज के वैज्ञानिक युग में बेटे–बेटी समान है वो दौर गुजर चुका है जब बेटा–बेटी में अन्तर किया जाता था। वर्तमान समय में दोनों को समान अवसर और समान सुविधाएं मिल रही हैं। महिलाएं अपने अधिकार, सम्मान पाना चाहती हैं। लेखिका ने इसी उद्देश्य से अपनी कहानियों में बेटे की अपेक्षा बेटी को अधिक महत्त्व दिया है पिता के साथ मां को अधिक महत्वपूर्ण और गौरवमय रूप में प्रस्तुत किया है ताकि समाज में नारी के प्रति जागरूकता फैल

सके। ''अब तो जमाना बदल गया है। बेटा और बेटी में कोई फर्क नहीं मानना चाहिए। बेटों की तरह बेटियों को पढ़ा लिखा कर उन्हें उनके पैरों पर खड़ा कर देगे। बेटियां किसी पर बोझ नहीं रहेगी''[8]

कहानी के माध्यम से पता चलता है कि माता–पिता अपने बच्चों में फर्क नहीं करके उनका पालन पोषण अच्छे से करें, उनके व्यक्तित्व विकास में पूरा योगदान करें। ये सोच समाज को नई राह दिखायेगी। ''घर परिवार का वातावरण और माता–पिता का सहयोग पाकर ही बेटियां इतनी समझदार बनी है और समझदारी के साथ सही रास्ते पर चल रही हैं।''[9] इससे समाज में नारी को सम्मान की जिन्दगी जीने का अवसर मिलेगा।

'सही निर्णय' कहानी आज के दौर में बेटों से ज्यादा बेटी को महत्त्व दिया है। कहानी में बेटियों के गोद लेने से समाज में एक नई पहल का संचार होता है गोद लेने को बेटा भी ले सकते थे परन्तु इन्होंने बेटियों को गोद लिया जो समाज परिवर्तन और बेटियों के प्रति समाज में परिवर्तित सोच को स्पष्ट करती ळें अधिकांश स्त्रियां अपनी इच्छा और आंकाक्षाओं में बेटे को महत्व देती रही हैं। चाहे फिर वे शिक्षित हो या अनपढ़ बेटे की चाहत में बेटी को कोख में ही मार देती हैं। ऐसा काम शिक्षित औरतें भी करती रही हैं पर अब जागृति आ रही है। बेटा–बेटी में अन्तर नहीं रहा है। ''वह शिक्षिका है, उसका काम है, समाज की नासमझ महिलाओं में जागृति और प्रगतिशीलता की भावना जगाना, जबकि यह स्वयं कूप मंडूक बनी बैठी है। बेटे के मोह ने उसे बेवकूफ बना दिया आज भी बेटे का महत्व दिल से नहीं निकाल पा रही है वह जमाना कब का बीत गया है जब बेटा ही कुलदीपक कहलाता था अब बेटी–बेटे में कोई फर्क नहीं किया जाता। यदि बेटियां है तो उन्हें खूब पढ़ा लिखाकर बहुत ऊंचाई तक पहुंचाया जाता है। इस तरह बेटियां भी अपने माता–पिता का नाम रोशन कर रही हैं।''[10] इस कहानी से बेटी–बेटे की समानता का भाव नजर आता है।

'टुकड़े टुकड़े शिलालेख' कहानी में लेखिका ने नारी के स्वतन्त्र मन की भावनाओं को उजागर किया है। समाज में सम्मान के साथ तर्क और न्याय द्वारा अपना हक ले रही हैं। पहले वे परम्परावादी मार्ग पर आंखे बन्द किये चुपचाप चलती रही हैं अन्याय को अपने हक में मान कर सहती रही हैं। नारी के शोषण की अनेक घटनांए घटित होती रही हैं। अनेक गांवों और शहरों में अभी भी नारी को सामन्ती बन्धनों के साथ शोषण और अत्याचार का शिकार बनाया जा रहा है परम्परा में मिली अपनी सदियों पुरानी दासता की मानसिकता के साथ अपने साथ किये जाने वाले अन्याय और अत्याचारों को चुपचाप सहती रही हैं। पुरुष प्रधान समाज में वह इसका डटकर विरोध नहीं कर पाती। पर वर्तमान समय में वह अपनी स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला रही है अब वह समझ चुकी है। ''स्त्री स्वतन्त्र है, स्त्री को अपनी खुशी के लिए अपने ढ़ंग से जीने का अधिकार है। स्त्री किसी की गुलाम नहीं है। वह बन्धनों में रहने के लिए

मजबूर नहीं, समय और परिवार की इज्जत बनाए रखने के लिए वह अकेली जिम्मेदार नहीं–स्त्री एक स्वतन्त्र जीवित इंसान है।''[11] अब वह सारे बन्धनों को नकारती है। कहानी नारी के स्वतन्त्र जीवन के बारे में बताती है।

'सूरज के आसपास' कहानी में लेखिका ने नारी की हताशा वेदना कुण्ठा को परिवर्तित रूप में चित्रित किया है। नारी अपनी वेदना कुण्ठा से बाहर आने का प्रत्यत्न करने लगी है। समाज में हो रहे अत्याचारों के खिलाफ आवाज उठाने लगी है। उस पर लगाए गए बन्धनों को तोड़ स्वतन्त्र जीवन जीने के लिए खड़ी हो चुकी है। समाज की चुनौतियों का खुलकर सामना करने लगी है। धीरे–धीरे नारी की हताशा कठोरता में परिवर्तित होने लगी है। अब वह अपने ऊपर लगाये सारे बन्धनों को तोड़ना चाहती है और आजादी की खुली हवा में सांस लेना चाहती है। ''अब और नहीं ..... सारे बन्धनों को तोड़ने का दम मुझमें है। क्या मैं इनको तोड़ नहीं सकती? मैं मुक्त हूँ..... स्वछन्द हूँ। कौन मुझे बन्धनों में बांधता है रे .....। न तालों में वह ताकत है, न जंजीरों में वह दम है। दिशाएं भेद कर जो बढ़ चली आगे, उसे क्या रोकेंगे घर के दीवार और दरवाजे?''[12] लेखिका ने कहानी में नारी को बन्धनों से मुक्त होने का अहसास दिलाया है। समाज के बन्धनों को तोड़ आगे बढ़ने का समय है।

'अनुभूति के घेरे' कहानी संग्रह नारी की संवेदना शोषण और पीड़ा को व्यक्त करता है चूंकि लेखिका खुद एक नारी है तो नारी की भावनाओं को अच्छे से समझकर उजागर किया है। जमाना बदल रहा है। समाज में नारी के प्रति सोच भी बदल रही है। बेटा–बेटी में अन्तर कम होता नजर आ रहा है। पर फिर भी कहीं न कहीं नारी का शोषित रूप सामने आता रहा है। 'अनुभूति के घेरे' कहानी संग्रह की समस्त कहानियां नारी को आगे बढ़ने की, स्वतंत्र जिन्दगी जीने की अपने सम्मान को पाने की सीख देती हैं। लेखिका ने अपनी लेखनी के माध्यम से समाज में नारी को सम्मान दिलाने का जो प्रयास किया है वह सराहनीय है।

(ब) 'टूटता वहम' कहानी में दलित महिला चेतना–

'टूटता वहम' कहानी संग्रह में दलित और नारी जीवन से सम्बधित समस्याएं हैं। नारी समस्याओं में दलित और अदलित नारियों की समस्याएं हैं। बाबा साहेब अम्बेडकर का नाम सम्पूर्ण दलित समाज के विकास और परिवर्तन का केन्द्र बिन्दू रहा है। दलित नारी के उत्थान में भी बाबा साहब का काफी सहयोग रहा है। 'टूटता वहम' कहानी संग्रह में बाबा साहब के विचारों से प्रभावित दलितों की कहानियां हैं।

'टूटता वहम' कहानी संग्रह में पिछड़ी जाति से जुड़ी कहानियां है 'सिलिया' 'मुझे जवाब देना है' 'नयी राह की खोज' 'झरोखे' 'व्रत और व्रती' 'धूप से भी बड़ा' 'मन्दिर का लाभ' 'मेरा समाज' आदि कहानियां संग्रहित हैं। सुशीला टाकभौरे ने इन कहानियों के माध्यम से आज के दौर में भी दलितों की क्या स्थिति है? को उजागर किया है। दलितों को आज भी सवर्णों के सामने नीचा झुकना पड़ता है। यही हालात नारी के भी रहे हैं। दलित नारी को समाज की मनुवादी व्यवस्था से दो–चार होना पड़ रहा है। लेखिका का उद्देश्य यही रहा है कि दलित जातियां अम्बेडकरवादी विचारों को अपनाये और अपने स्वाभिमान का जीवन जीयें।

सुशीला टाकभौरे की कहानी 'मेरा बचपन' छुआछूत पर आधारित है। साथ ही यह भी दर्शाती है कि दलित समाज को हमेशा शिक्षा से ही दूर रखा जाता रहा है। उनके पैतृक रोजगार ही उनसे करवाये जाते रहे हैं समाज में दलित नारी की स्थिति तो और भी दयनीय रही है। 'मेरा बचपन' कहानी में सामाजिक रीति रिवाज, परम्पराओं के कारण बेटियों को पराई वस्तु माना जाता है। गांव के बड़े बुजुर्ग अक्सर यही कहते हैं– ''लड़कियां तो चिरैया हैं, समय आते ही परदेश चली जाएगी।''[13]

सामाजिक मानसिकता की यह भावना एक शिकंजा बनकर लड़कियों की प्रगति में अवरोधक रही है। मध्यप्रदेश में सवर्ण महिलाओं में छुआछूत की भावना शुरू से ही ज्यादा रही है। सवर्ण घरों में स्कूल से लौटे बच्चों पर घर के बाहर ही पानी छिड़क दिया जाता है। पहने हुए कपड़े उतरवा कर दूसरे कपड़े पहना दिये जाते हैं। नाक भौं सिकोड़कर कहते हैं कि– ''न जाने कौन–कौन सी जात के बच्चों के साथ पढ़कर आते हैं सबकी छुआछूत घर में लाते हैं।''[14] इस कहानी के माध्यम से टाकभौरे ने समाज में व्याप्त छुआछूत को मिटाने की कोशिश की है। लड़कियों की शिक्षा को लेकर समाज में जागरूकता फैलाई है।

'झरोखे' कहानी में जातीय बन्धन को दर्शाया गया है। दलितों को न चाहते हुए भी जाति के कारण अपने पैतृक रोजगार करने पड़ रहे हैं। दलितों के घर बस्ती से बाहर ही रहे हैं। यहां अंधेरा ही अंधेरा होता है। दलितों को सवर्णों के घरों से दूर रखा जाता है। भेदभाव जाति के कारण किया जाता है। जाति के प्रति सवर्णों की जिज्ञासा और ऊंचनीच की भावना इनके मन से कभी मिटती नहीं है। सवर्णों के संस्कार जाति भावना के सम्बन्ध में इतने दृढ़ हो गये हैं कि पीढ़ी दर पीढ़ी चलते रहे हैं। दलितों की भी यही मानसिकता रही है कि सवर्ण हमेशा ऊंचे और बड़े रहते हैं, हम जाति के छोटे हैं। इस प्रकार की हीनग्रन्थि बन जाने के कारण सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पाता है। लेकिन अब शिक्षा से सम्पूर्ण विकास संभव हो रहा है। दलित समाज अपना हक शिक्षा से ही पा सकता है। ''हमारा काम–रोजगार छोटा होने के कारण छुआछूत का भेदभाव किया जाता है। यदि हम सब पढ़ लिखकर अपने योग्यता

बनायेंगे और अच्छी नौकरी करेंगे तब हमसे भेदभाव नहीं करेंगे।''[15] दलित अब जान चुके हैं कि हमारी उन्नति का एक ही मार्ग है और वो शिक्षा है जिसे लेकर रहेंगे।

'मेरा समाज' कहानी में सुशीला टाकभौरे ने समाज की विद्रुपताओं को उकेरा है। इस कहानी में धर्म, कर्म, अंधविश्वास लड़कियों की कम उम्र में शादी जैसी बुराईयों की ओर ध्यान दिया गया है। दलित नारी के साथ अपने ही समाज में दलित पुरुषों द्वारा शोषण किया जाता है उसके साथ मारपीट करना घर से बाहर निकाल देना जैसी आम बात रही है।

''पति दुश्मन जैसा मारता, पत्नी रोती रहती, फिर भी घर का पूरा काम करती, खाना बनाकर सबको खिलाती, कभी थोड़ा स्वयं भी खा लेती नहीं तो भूखी ही रह जाती।''[16]

वह अपने अच्छे दिनों की प्रतीक्षा करती है। परन्तु इस प्रतीक्षा में उसका पूरा जीवन निकल जाता है। यह सब शिक्षा और जागृति के अभाव में समाज में घटित हो रहा है। दलित लोग अपने बच्चों की शिक्षा के विषय में अधिक नहीं सोचते। वे धर्म–कर्म में ज्यादा विश्वास करते हैं। इसी कारण दलित अंधविश्वास से ग्रस्त रहते हैं। ''बिल्ली ने रास्ता काट दिया तो अशुभ, कौए ने पंख मार दिया तो अशुभ–ऐसी अनेक बातें मानी जाती है। किसी के शरीर में देव–भूत का आना भी विश्वास के साथ सच माना जाता है।''[17] यह सब आडम्बर और अनुकरण मात्र है। अंधविश्वास की उपेक्षा मन में आत्मविश्वास जगाना चाहिए। उसी से आगे बढ़ने का और संघर्ष में जूझने का बल मिलता है।

दलित समाज के लोगों में एक भावना और व्याप्त है आज की खुशी और सन्तुष्टि में ये कल की चिन्ता नहीं करते हैं। इनका यह विचार और स्वभाव–व्यवहार इन्हें दूरदर्शी नहीं बनने देता। इसी कारण ये अपना और अपने बच्चों का भविष्य का नियोजन नहीं कर पाते।

दलित जाति समुदाय में लड़कियों की शादी 14–15 वर्ष की उम्र में कर दी जाती है बेटी का जन्म होते ही उसकी पढ़ाई की नहीं, शादी की चिन्ता की जाती है। ''कब तक लड़की को पढ़ाते रहोगे? कब तक उसे बैठाकर रखोगे? ऐसे तो लड़की बूढ़ी हो जायेगी।''[18] दलित समाज में शादी और बच्चे जैसे जीवन का लक्ष्य है। इस तरह समाज आगे नहीं बढ़ सकता इस पारम्परिक विचारधारा को तोड़ना जरूरी है। तभी समाज नये विचारों को अपना सकेगा। समाज की भोली–भाली लड़कियों को बचपन से ही जागृत बनने की, शिक्षा के प्रति जिज्ञासु रहने की और आत्मनिर्भर बनने की प्रेरणा देते रहना चाहिए ताकि आगे बढ़ सके।

'विचारभूमि' कहानी में 'दलित साहित्य' और 'दलित महिला मुक्ति आन्दोलन' की विचारधारा को प्रवाहित किया गया है। लेखिका ने 'दलित साहित्य' से दलित समाज में क्या परिवर्तन आये हैं। 'दलित महिला मुक्ति आन्दोलन' से दलित नारी कहां तक सजग हो पायी है, को उकेरा है। इस कहानी के माध्यम से सवर्ण और दलितों के बीच मिटते भेदभाव को भी दर्शाया है। ''सवर्ण समाज के एक युवा नेता अछूत कन्या से विवाह करके समाज के सामने

जाति भेदभाव मिटाने का आदर्श रखना चाहते हैं।''[19] लेकिन सोचने वाली बात ये है कि क्या वास्तव में सवर्ण जातिभेद मानने वाले दलितों के साथ रह सकते हैं।

दलित साहित्य से दलितों की स्थिति में सुधार आया है। बाबा साहब ने दलितों को समाज में बदलाव लाने के लिए साहित्य लिखने के लिए प्रेरित किया था। अब साहित्यकार पैदा हो रहे हैं। उनका विकास भी हो रहा है अब सवर्ण साहित्यकार दलितों के साहित्य को नकार नहीं सकते। दलित मंच पर दलित साहित्य का समर्थन कर रहे हैं। ''दलितों पर हुए सदियों के अन्याय–शोषण और उनकी पीड़ा ही दलित साहित्य की पृष्ठभूमि है। दलित साहित्यकार अपनी व्यथा–कथा सम्पूर्ण दलित समाज की व्यथा–कथा के रूप में बेबाक होकर लिख रहे हैं और सम्पूर्ण समाज तक पहुंचा रहे हैं।''[20]

दलित साहित्यकारों को ही 'अस्मिता' के साथ–साथ 'दलित अस्तित्व' पर बल देना होगा। 'दलित महिला मुक्ति आन्दोलन' से नारी की आस्मिता को नये रूप में देखा गया है। साथ ही उस पर होने वाले अन्याय अत्याचार के विरोध में भावनाएं व्यक्त हुई हैं। ''नारी की कमजोरी का कारण नारी स्वयं है, नारी स्वयं अपनी इस कमजारी से मुक्त हो।''[21] दलित या अदलित नारी की समस्यायें समान है अनपढ़ तो नारी का शोषण करते ही है दुर्भाग्यवश दलितों में जो लोग पढ़–लिख गये वे भी औरतों पर मनुवादी संहिता लादने लगे हैं। दलित समाज को 'दलित साहित्य' और 'दलित महिला मुक्ति आन्दोलन ही सुधार सकते हैं।

'टूटता वहम' कहानी में समाज परिवर्तन के टूटते वहम का विवरण है। आज कहते तो हैं कि समाज में छुआछूत नहीं रहा। सब बराबर है जातिभेद नहीं मानते। जांत–पांत नहीं रहा। पर वास्तविक स्थिति यह है कि समाज में आज भी स्थिति ज्यों कि त्यों बनी हुई है। वही मानसिकता लिए हुए सवर्ण समाज, और भोगते हुए दलित समाज। कहानी में लेखिका ने अपने साथ हुए भेदभाव को बताया है। जहां शिक्षित लोग सामने से यही दर्शाते हैं कि हम भेदभाव नहीं करते परन्तु पीठ–पीछे भेदभाव का भाव दर्शाते हैं। ''जो लोग कभी अछूतों को छूने की कल्पना नहीं कर सकते थे। आज साथ में बैठकर खाने लगे हैं हाथों में हाथ रखकर बातें करते हैं, यह बताने के लिए कि हम जातिभेद नहीं मानते।''[22]

मगर इसके पीछे का सच क्या है? इसे वे कैसे भूल सकते हैं जो जातिभेद के मकड़जाल को आज भी अपने ऊपर पूरी तरह लिपटा हुआ पाते हैं। सवर्ण समाज की व्यवहार कुशलता को दलित समाज परख रहा है। दलित समाज सोच रहा है कि हम कुछ भी बन जाएं, कुछ भी पा ले फिर भी जाति भेद हमेशा रहेगा। हमारे साथ अन्याय होता रहेगा। हम पीड़ा वेदना धोखे की चक्की में पिसते रहेंगे। जब तक हमारा वहम नहीं टूटेगा हम इस अन्याय को सहते रहेंगे।

'मन्दिर का लाभ' कहानी में लेखिका ने दलित समाज का अंधविश्वासी रूप उजागर किया है। समाज के उद्धार के लिए एक पैसा खर्च नहीं करते और मन्दिर बनवाने के लिए अपनी सारी जमा पूंजी खर्च कर देते हैं। दलितों के लिए गांधीजी ने अछूतोद्धार आन्दोलन चलाया था और अछूत जातियों को हरिजन नाम दिया था। दलितों के घर–घर गांव–गांव में गांधीजी के प्रति श्रृद्धा और विश्वास था इसके साथ ही दलितों के मन में भी यह भाव जाग उठा कि हम भी भगवान के जन हैं हम भी भगवान की पूजा कर सकते हैं मन्दिर भी बना सकते हैं। दलित धर्म में ज्यादा विश्वास करते हैं। सारी जमापूंजी मन्दिर में लगा देते हैं। अगर इनमें जागरूगता होती तो मन्दिर में जो पैसा लगाया वो समाज के कल्याण में भी तो लगा सकते थे– ''जितना रूपया मन्दिर बनाने में खर्च हुआ, यदि यही रूपया समाज सुधार के काम में लगता तो दलित समाज का बहुत उद्धार होता।''[23]

मन्दिर बनने से न तो दलित जातियों का विकास हो सका। न उसके रहन–सहन सुधरा और न ही वहां के बच्चों में कुछ सुधार हुआ। जैसे पहले थे वैसे ही रह रहे हैं। फिर मन्दिर बनाकर इसमें पूजा करने का क्या लाभ हुआ? दलित जातियां कड़ी मेहनत मजदूरी करते हैं फिर भी गरीबी और अभाव में कष्टपूर्ण जीवन जीते हैं। ऐसी जातियों को मन्दिर भी कुछ लाभ नहीं दे सका। ये लोग अपनी प्रगति भगवान भरोसे छोड़ देते हैं लेकिन ये नहीं जानते कि जब खुद अपनी प्रगति के विषय में नहीं सोचेगें, तब तक कोई भी भगवान और मन्दिर लाभ नहीं दे पायेगें।

सुशीला टाकभौरे की कहानी 'सिलिया' पानी पर सवर्णों के अधिकार और उनकी सामाजिक सत्ता के दखल को मार्मिकता के साथ स्वीकार करती है। दलित समाज को सवर्ण समाज के लोग अपने पैरों की जूती समझते हैं। अपने कुओं से दलित लोगों को पानी नहीं देते। दलित भी यही सोच लेते है कि ''जब हमें पता है कि हम अछूत दूसरों के कुंए से पानी नहीं भर सकते, फिर वहां जाना ही क्यों''[24] इन हालातों को बदलने की जरूरत है। सवर्णों के घरों में कुत्ते–बिल्ली बेरोक टोक आ जा रहे हैं और दलितों को दहलीज के बाहर रूकने का ईशारा किया जाता है। इस व्यवस्था को मिटाने की आवश्यकता है दलितों का इस प्रताड़ना से मुक्त होना होगा। इनको बराबरी का दर्जा पाना होगा। 'सिलिया' कहानी दलित समाज को झकझोर कर रख देने वाली कहानी है। जहां दलितों को अपनी अस्मिता और अस्तित्व को पहचानना होगा। सवर्णों से अपना हक मांगना होगा और अपनी पहचान बनानी होगी।

'नयी राह की खोज' कहानी में दलित समाज में व्याप्त अशिक्षा और इनको विरासत में मिले रोजगार की समस्याओं को चित्रित किया है। दलित समाज अशिक्षा के कारण ही पिछड़ता जा रहा है। ''पीढ़ियों से अशिक्षा चली आ रही है। सफाई का धन्धा विरासत में मिल जाता है। इसके आगे कुछ और सोचने का प्रयास कहीं दिखाई नहीं देता है। अगर कोई सोचता भी है तो

उसकी सफलता के लिए अपनी पूरी जिम्मेदारी को ना तो वह समझ जाता है और न ही निभा पाता है।''[25]

लेकिन दलित समाज अब इन परम्पराओं को तोड़ना चाहता है। ''हमारी सन्तान हमारी तरह दूसरों की गुलामी करे– ऐसा नहीं होना चाहिए।''[26] खर्चा कम करके हम बच्चों पढ़ा सकते हैं। उनको पढ़ने का अवसर मिलेगा तब ही पैत्तृक रोजगार से छुटकारा मिलेगा ''रोटी कम खाओ, मगर बच्चों को पढ़ाओ।''[27] यह बात पूरे दलित समाज को सीखनी चाहिए।

'व्रत और व्रती' कहानी भगवान और भक्त के माध्यम से दलितवादी सोच को व्यक्त करती है। कहानी के माध्यम से पता चलता है कि मेहनत करने वाले को किसी भगवान की जरूरत नहीं होती। वह अपनी मेहनत से कुछ भी पा सकता है। इस बात को दलित समाज को समझना चाहिए ये सब ढकोसले हैं झूठे आडम्बर हैं। दलित समाज की प्रगति भगवान से नहीं मेहनत से हो सकती है। दलितों को समझना चाहिए। ''अगर भगवान दया करने वाला होता तो हमारी पिछली पीढ़ियों पर ही कर देता, जो पीढ़ी दर पीढ़ी गरीबी अभाब बेरोजारी भूख और दुख से लड़ते बीत गई। तब हमें ही भगवान क्या दे देगा? ईश्वर और धर्म की बातों के फरेब में रहे? क्यों अंधविश्वास में भटकते रहें।''[28] दलित चेतना अन्ध आस्था के बजाय बुद्धि, श्रम और यथार्थ में विश्वास करता है।

दलित समाज को समझना चाहिए कि भगवान जितना एकाग्र मन और तर्पण समर्पण की भावना यदि ये अपने काम में लगायेंगे तो अपना जीवन स्वयं सुधारने में लगायेंगे तो स्वयं सब कुछ पा सकेंगे इस बात का इनको संकल्प करना चाहिए।

'टूटता वहम' कहानी संग्रह की सभी कहानियों में लेखिका ने दलित समाज और दलित नारी चेतना को जागृत किया है। इनकी कहानियां जातिवादी सामन्तवादी और ब्राह्मणवादी व्यवस्था के खिलाफ प्रतिरोध का स्वर मुखरित करती है। सुशीला टाकभौरे की कहानियां दलित जीवन के विविध रूपों को संवेदनशील ढ़ग से व्यक्त करती है।

इनकी कहानियों का एक–एक कदम एक व्यापक दलित उत्पीड़ित समाज के आन्दोलनात्मक चरित्र को उभार कर सामने लाती है। इन दलित कहानियों में लेखिका ने जो जीवन जिया है, भोगा है, देखा है वही व्यक्त किया है। यह भोगा हुआ यथार्थ है, जो दलितों के बारे में लिखने वाले गैर दलित लेखकों के पास नहीं है, इसलिए दलित लेखकों की कहानियों में दलितों के मन की पीड़ा, यातना, बैचेनी, सामाजिक अपमान, आर्थिक परवशता, संघर्षशीलता अधिक तीखे व प्रमाणित ढ़ग से व्यक्त हुई है।

(स) 'संघर्ष' कहानी संग्रह में दलित महिला चेतना–

हिन्दी में प्रकाशित दलित लेखकों की अधिकांश कहानियां इसी सत्य को स्थापित करती हैं कि भारतीय सामाजिक व्यवस्था में दलित होने के कारण समाज के हाशिये पर रहना पड़ता है। मुख्यधारा के भीतर रहते हुए अस्पृश्य होने की पीड़ा सहनी पड़ रही है। लेकिन गौतम बुद्ध, डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर महात्मा फूले इन महामानवों के प्रयत्न से दलितों को अपनी दलित स्थिति का परिचय हुआ है। इन लोगों ने युग–युग से पशु से भी बदतर जीवन जीने वाले दलितों को मनुष्य होने का अहसास दिलाया, स्वाभिमान और सम्मानपूर्ण जीवन जीने के लिए इन्हें प्रेरणा दी। महापुरुषों की प्रेरणा से दलितों को अपनी शक्ति का जो ज्ञान हुआ वह ज्ञान ही वास्तव में दलित चेतना है।

सुशीला टाकभौरे के 'संघर्ष' कहानी संग्रह में दलित जातियों के लिए जागृति संदेश निहित है। इस कहानी संग्रह में लेखिका ने दलित जातियों की व्यथा को वाणी दी है। वहीं दूसरी ओर यह भी संकेत किया है कि दलितों को भी जीने का अधिकार है, वे भी मनुष्य है, वे भी अपने अन्याय अत्याचार के विरूद्ध आवाज उठा सकते हैं। जिन सवर्णों से पीढ़ी दर पीढ़ी दबे रहे उनसे खुले आम मुकाबला भी कर सकते हैं।

'संघर्श' कहानी संग्रह की कहानियां दलित जीवन संघर्ष को चित्रित करती है। 'संघर्ष' कहानी संग्रह की सभी कहानियों दलितों के शारीरिक संघर्ष के साथ ही मानसिक संघर्ष से भी जूझते नजर आते हैं। 'संघर्ष' कहानी का शंकर, 'जन्मदिन' कहानी का मुन्ना, 'बदला' कहानी का कल्लू, 'छौआ मां' कहानी की छौआ दाई मां, 'चुभते दंश' कहानी की तक्षशिला बाघमारे, 'संभव–असंभव' की मनाली और 'दमदार' कहानी की सुमन ये सभी पात्र अपने–अपने क्षेत्र में सवर्णों से संघर्षरत हैं।

'संघर्ष' कहानी में दलितों के साथ हो रहे छुआछूत, शोषण और अन्याय को दर्शाया है। लेखिका ने शंकर नाम के कहानी पात्र के माध्यम से सम्पूर्ण दलित जातियों पर हो रहे अत्याचार शोषण जातिभेद दमन को चित्रित किया है। संघर्ष कहानी में लेखिका ने बताया है कि गांवों में छुआछूत की भावना हमेशा से ही ज्यादा रही है। अगर कोई दलित जाति का व्यक्ति सवर्ण के घर चला जाता है तो उसको बाहर ही खड़े रहने का ईशारा किया जाता है ''घर में मत आ..... बाहर भाग बाहर दूर खड़ा होकर बात कर.....''[29] अगर कोई गलती से घर में घुस जाता तो, घर की एक–एक चीज पर पानी छिड़ककर शुद्ध करते हैं, घर में जमीन पर पानी डालकर घर को पवित्र करते हैं।

हिन्दू समाज व्यवस्था में जाति ऐसी चीज है जो इन्सान के जन्म के साथ ही उससे जुड़ जाती है और वह इन्सान के मरने के बाद भी नहीं जाती है। चाहे गांव हो या शहर–जातिभेद की भावना लोगों के हृदय में रहती ही है। फर्क बस इतना रहता है कि कुछ

लोग जातिभेद की भावना को खुल्लम–खुल्ला उजागर करते रहते हैं और कुछ लोग अप्रत्यक्ष रूप से अपने व्यवहार और कार्यकलापों से जातिभेद को मान्यता देते हुए अपनी उच्चता को हमेशा के लिए कायम रखना चाहते हैं। ''जातिभेद मानने वाला, अन्याय–अत्याचार, दमन शोषण करने वाला उच्चवर्ण समाज बहुत ताकतवर है। दलित इनसे कैसे जीत सकेंगे? ये न तो अभिमन्यु है, न अर्जुन और न ही श्रीकृष्ण ।''[30]

दलितों को सदियों से ही शिक्षा से दूर रखकर कमजोर बनाया जाता रहा है। आज फिर से उनकी शिक्षा रूपी ताकत, शिक्षा रूपी अस्त्र–शस्त्र उनसे छीने जा रहे हैं। लेकिन अब दलित अपने अधिकारों के प्रति सचेत होने लगे हैं। यदि ये लोग अपने अस्तित्व को पहचान लें, तब भले ही वे तुच्छ हो– नगन्य हो, वे अपनी, सूझबूझ आत्मबल और संघर्ष पर अपने दुश्मन के मनोबल को तोड़ सकते हैं।

'जन्मदिन' कहानी में लेखिका ने भंगी समाज की व्यथा को दर्शित किया है। इनके साथ समाज में कैसा अमानवीय व्यवहार किया जाता है। कहानी के माध्यम से लेखिका ने बताया है कि जातिव्यवस्था में अछूत माने गये इन दलित भंगियों को भी बस्ती से बाहर बसाया गया है। इनके मौहल्लों के आसपास सवर्ण जाति के घर नहीं होते हैं। अछूत होने के कारण इनको बस्तियों के बाहर रहने के लिए मजबूर किया जाता है और ये भी शिक्षित सभ्य समाज से अलग–थलग रहने के कारण जैसे इनकी दुनिया ही अलग हो गई है। यहां रहकर ये लोग कुछ और न सोच पाते हैं और न ही कर पाते हैं। सदियों की परम्परा को ये अपनी नियति अपना भाग्य मान बैठे हैं। ये दूसरों का मैला अपने सिर पर ढोते रहते हैं लेकिन अब शिक्षा से आगामी पीढ़ी जागरूक हो रही है– ''हमारा देश स्वतन्त्र होकर कितने वर्ष बीत गए फिर भी हम वहीं के वहीं है। हमारी आजादी हमें कब मिलेगी? आज तक, आप लोगों में से किसी ने भी यह नहीं सोचा। किसी ने भी इस पुश्तैनी काम को छोड़ने का साहस नहीं किया। हम क्यों उठाये अपने सिर पर दूसरों का मैला? ऐसा आपने कभी क्यों नहीं सोचा।''[31]

ज्ञान से दूर रखकर ही दलित समाज को लम्बे समय तक सचा के बाहर रखा गया और कभी दलितों ने ज्ञान की परम्परा से जुड़ने की कोशिश की तो या तो उन्हें रास्ते से हटा दिया गया अथवा इस तरह अपमानित व उत्पीड़ित किया गया जैसा की एकलव्य के साथ द्रोणाचार्य जैसे शिक्षकों ने किया। वास्तव में कहानी की वास्तविक चिंता दलित समाज को पराधीनता की उन परम्पराओं से मुक्ति दिलाने के लिए है जिसने उन्हें सदियों से भारतीय समाज की मुख्यधारा में 'अस्पृश्य' और कमजोर बनाये रखा। लेकिन आज दलित समाज ने महापुरुष बाबा साहब अम्बेडकर को पहचान लिया है डॉ. भीमराव अम्बेडकर की विचारधारा को पहचान लिया है। कहानी के एक पात्र मुन्ना ने निश्चय किया– ''मैं बाबा साहब के कार्यों और विचारों से अपनी बिरादरी को परिचित कराऊंगा, उन्हें सच्चाई का ज्ञान कराऊंगा।''[32]

'बदला' कहानी सवर्ण समाज और दलित समाज के आपस के बदले को उजागर करती है। कहानी में दलित लोगों के शोषण अत्याचारों की घटनाएं वर्णित हैं। ''कोई भी कालखण्ड रहा हो, अन्याय अत्याचार की घटनाएं हमेशा होती रही हैं। शक्तिषाली दुराचारी लोग शक्तिहीनों पर अत्याचार करते आए है। बल्कि कहना यह चाहिए कि– शक्तिशाली शोषक अन्याय अत्याचारों के द्वारा शक्तिहीनों को अधिक निर्बल और लाचार बनाते रहे हैं। शक्तिशाली अपनी शक्ति का दुरूपयोग भी करते हैं।''[33] गांवों में दलितों अछूतों के साथ दुर्व्यवहार, अपमान और अत्याचार की घटनाएं होती रहती हैं।

गांव में न पुलिस होती है और न ही कानून होता है। जिसकी लाठी, उसकी भैंस। पुलिस को बुलाना भी बस झंझट है। सबसे पहले तो वे बुलाने वालों को ही तंग कर डालते हैं क्योंकि जिनके विरूद्ध उनको बुलाया जाता है उन्हें वे भी जानते हैं। तब बात आगे बढ़ने के बदले वहीं दब जाती है। शोषित पीड़ित व्यक्ति ही अत्याचारियों से हाथ जोड़कर माफी मांगते रहते हैं। गांव में होने वाली घटनाओं से दबे, कुचले, शोषित, पीड़ित, निम्न दलित लोग और भी डर जाते हैं। इसके साथ उच्च घनी सबल लोगों का हौसला और बढ़ जाता है। कहानी में दलित जो कि गांव के लिए अपनी जान देने के लिए उतारू हो जाते है उसी गांव के लोग उनसे दुर्व्यवहार करते हैं। ''देख लियो अपनो गांव?..... मरी जाये है गांव के लिए।..... रात दिन इनकी गुलामी करे है, का दे रहे हैं ते को? ये कहीं अपने हो सके हैं?..... इनके दिल में पाप भरो है..... ये कोई पे दया नहीं करे.....।''[34] दलितों के प्रति सवर्णों का व्यवहार हमेशा से ही गलत रहा है। पर अब दलित समझ चुके हैं कि हमें इनसे बदला लेना ही होगा। एक जुट होकर हमें अपनी ताकत इनको दिखानी ही होगी। ''हम सब मिलकर रहेंगे तो हमारी ताकत बहुत बड़ी ताकत बनेगी। एकता की ताकत से ही हम दुश्मनों से बदला ले सकते हैं।''[35] बदले की भावना ने अब इनमें आत्मविश्वास जगा दिया।

'छौआ मां' कहानी एक दलित महिला की व्यथा की कहानी है। जिसमें वह अपने गांव के घर की सफाई, झाड़ू पौछा लीपना पोतने का काम करती है। उनके गन्दे कपड़े धोती है। वह गांव में दाईपने का काम संभालती है। अपने काम होने के बाद सवर्ण लोग 'ऊंची–जाति' का होने के कारण अपने घर के भीतर नहीं आने देते हैं।

कहानी में छौआ मां से ऊंची जाति के लोग पैतृक रोजगार के तौर पर गन्दगी की सफाई करवाते हैं। ना चाहते हुए भी उनको पैतृक रोजगार करना ही पड़ता है। इनके परिवार को भी जबरदस्ती इसमें दखेल देते हैं। छौआ मां की बेटी इनको कोसती है– ''खुद जिन्दगी भर पूरे गांव का नरक उठाती रही..... सबका दलिद्दर समेटती रही। अब मेरे पीछे ये मुसीबत लगा रही है। ये सब उसी के कारण हो रहा है। लोगों को आदत डाल दई है। करेगी..... उसके बिना नहीं होयगो..... रात दिन दौड़ती फिरे है। सबके लिए मरी जाये है..... अब मोहे भी

गिरा रही है जई दल–दल में पीढ़ी परम्परा चलाते रहे, अब ये परम्परा मेरे गले को फंसा रही है।.....''[37] परम्परा के नाम पर दलितों को न चाहते हुए भी सवर्णों के गन्दे काम करने पड़ते हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी यही सिलसिला चलता है। लेकिन आज की पीढ़ी अपने पैतृक रोगजार को नकार रही है। अब सम्मान की जिन्दगी चाहने लगे हैं। अब आक्रोश के साथ कहने लगे हैं। ''ये कोई जबरदस्ती है कि करना ही पड़ेगो ये काम?..... काम ये जबरदस्ती है?''[38] धीरे–धीरे समाज में दलित अपनी स्थिति को समझने लगे हैं। अपने अस्तित्व की रक्षा करने लगे हैं। ''अपमान भरी इस नरक की जिन्दगी से बाहर निकलो इंसान बनकर जीना सीखो.....''[39] 'छौआ मां' कहानी में लेखिका ने दलित समाज को जीने की राह दिखायी है। दलित समाज को अपने पैतृक रोजगार छोड़कर अपनी सम्मान की जिन्दगी को स्वीकार करना चाहिए। कहानी यही दर्शाती है कि दलित अब पैतृक रोजगार शिक्षा के कारण ही छोड़ने लगे हैं। अपने बच्चों को भी यही सिखाते हैं कि अपनी अस्मिता और अस्तित्व की रक्षा करे।

'चुभते दंश' कहानी में तक्षशिला बाघमारे अम्बेडकरवादी विचारधारा से प्रभावित है। अम्बेडकर के महापरिनिर्वाण दिन पर भी सवर्ण अपना हक जताने लगते हैं। दलित वर्ग को अपने मसीहा के कार्यक्रम पर भी अपने विचार व्यक्त नहीं करने दिया जाता है। सवर्ण ये समझते रहते हैं कि क्या हम अम्बेडकर को नहीं जानते ये दलित लोग ही इसके बारे में क्यों बोले। कहानी में सवर्णों की मनमानी दिखाई देती है। सवर्णों को लगता है कि अगर दलित वर्ग अम्बेडकरवादी विचारधारा को अपनायेंगे तो समाज में उनको सम्मान देना पड़ेगा। इसलिए अम्बेडकर पर अपना हक जताने की कोशिश करते हैं। कहानी की पात्र तक्षशिला बाघमारे इस स्थिति को देख आहत होती है। लेखिका की इस कहानी का उद्देश्य है कि सवर्ण समाज हर जगह अपना वर्चस्व फैला रहे हैं उनको रोककर दलित वर्ग को अपना वर्चस्व बनाना होगा। तभी अम्बेडकरवादी विचारधारा पनप सकेगी और दलितों का विकास हो सकेगा।

'संभव– असंभव' कहानी में लेखिका ने एक शूद्र लड़की और ब्राह्मण लड़के की विचारधारा का विवरण किया है। इस कहानी के माध्यम से समाज में शूद्रों की क्या स्थिति है? का वर्णन किया है। समाज कहने को तो कहता है जातिभेद अब कहां रह गया सब में उठते–बैठते हैं, खाते–पीते हैं। लेकिन क्या वास्तव में समाज में सब बराबर है। 'संभव–असंभव' कहानी में समाज में शूद्रों की स्थिति से अवगत कराया गया है। ''समय बदल रहा है फिर भी विषमतावादी भावनाओं की जड़े अभी बाकी हैं।''[40] समाज में दलित औरतों पर आदर्शों के नाम पर कई तरह के बन्धन लगाए जाते हैं। न चाहते हुए भी ये सारी जिन्दगी इसका बोध ढोती रहती हैं। समाज ने सारे बन्धन सिर्फ औरतों के लिए ही बनाए हैं और वो सारी उम्र उनको बखूबी निभाती रहती हैं।

वर्तमान दौर में औरतें इन बन्धनों को तोड़ने की कोशिश करने लगी है। 'संभव–असंभव' कहानी में दलित नारी इन बन्धनों से दबकर मरना चाहती है। लेकिन बाद में अहसास होने के कारण बन्धन तोड़कर जीना चाहती है। ''आदर्शों की पोटली समाज की 'जगत' पर रखकर शोषित पीड़ित एक दलित महिला कुंए में डूबकर मरना चाहती है।''[41] लेकिन महिला जागृति और समाज परिवर्तन के कारण अब वह हताश और निराश नहीं है। वह जानती है कि आज के युग में औरतें मरती नहीं हैं सामना करती हैं। ''दुनिया की रीति–नीति समाज की परम्पराएं बहुत बदल गये हैं। अब तक किस युग में जी रही थी? अलगे जन्म की बातें बिल्कुल बकवास है। जो करना है, जो पाना है वह इसी जन्म में संभव है।''[42] अब वह समाज से लड़कर जिन्दा रहना चाहती है आदर्शों की पोटली को उतारकर फैंकना चाहती है।

'दमदार' कहानी में दलित औरत की ताकत को दर्शाया गया है सवर्ण समाज दलितों को हमेशा से ही कमजोर मानता रहा है। दलित स्त्रियों का अपनी ताकत के बल पर शोषण करता रहा है। 'दमदार' कहानी में लेखिका ने दलित स्त्री का नया रूप सामने रखा है। औरतें कभी भी कमजोर नहीं हो सकती। दलित स्त्रियों को कभी कमजोर ना समझे। सवर्ण समाज के एक पहलवान को एक दलित स्त्री ने बीच बाजार घसीट–घसीट कर पीटा। इससे सवर्ण समाज को पता चला कि दलित अब कमजोर नहीं रहा है। दलित स्त्री के मन में सदियों से जो गुस्सा इकठ्ठा था अब वह ज्वालामुखी बनकर बाहर निकलने लगा है। ''अभी तक आदमी ही सरे आम औरतों को नंगा करके मारते आये हैं। क्या, औरत आदमी को नंगा करके नहीं मार सकती।''[43] आज शोषित पीड़ित खुद सवर्ण समाज से बदला ले रहे हैं। 'दमदार' कहानी का यही उद्देश्य है

'संघर्ष' कहानी संग्रह की सभी कहानियों के माध्यम से दलितों में पैदा हो रही मुक्ति चेतना, विद्रोह की भावना का प्रभावशाली चित्रण कर दलित आन्दोलन में पैदा हुई ऊर्जा की प्रतिम्बित किया है। इन कहानियों ने सवर्णों की दलित विरोधी भावना, अवमानना, उन्हें हास्यास्पद मानना, उन्हें मानवोचित गरिमा न देना तथा इन सबके विरोध में दलित चेतना सम्पन्न पात्रों के मन की पीड़ा, यातना, बैचेनी संघर्षशीलता, विद्रोही तेवरों का प्रभावशाली चित्रण हुआ है। 'संघर्ष कहानी संग्रह में लेखिका का मुख्य उद्देश्य पिछड़े समुदाय तक अम्बेडकरवादी विचारधारा का संदेश पहुंचाना रहा है। दलित वर्ण भी जागृति, प्रगति और परिवर्तन के साथ समता सम्मान का जीवन जीये। अपना वर्तमान अच्छा बनाकर आनेवाली पीढ़ियों के वर्तमान और भविष्य के लिए विचार करें।

निष्कर्ष–

सुशीला टाकभौरे के तीनों कथा संग्रह 'टूटता वहम' अनुभूति के घेरे, 'संघर्ष' दलित समाज के लिए मील का पत्थर है। इनके कथा संग्रहों से पता चलता है कि दलितों की समाज में क्या स्थिति है। सवर्णीय लोगों की दृष्टि से दलित लोग उनके नौकर ही है। मनमाने ढ़ग से इन्होंने दलितों के साथ व्यवहार किया। पर अब दलित लोग उनकी मनमानी चलने देना नहीं चाहते। 'टूटता वहम' कहानी संग्रह में लेखिका ने दलितों को चेताया है कि अम्बेडकरवादी विचारधारा से जुड़कर अपने अस्तित्व की रक्षा करें। सवर्ण समाज के बहकावें में आकर अपने आप को दलदल में न फंसाये। 'संघर्ष' कहानी संग्रह भी दलितों के संघर्ष की ओर ईशारा करता है। जहां समाज देश उन्नति की ओर अग्रसर है वहीं निम्न जाति के लोग और निम्नतर होते जा रहे हैं। दलित जाति अपने हक के लिए संघर्ष करती नजर आ रही है। 'अनुभूति के घेरे' कहानी संग्रह में दलित महिला की पीड़ित, और शोषित स्थिति का भान होता है। लेखिका ने दर्शाया है कि समाज दलित नारी को किस नजरिये से देखता है। नारी हमेशा यही सोचती है कि मेरी स्थिति में सुधार आयेगा। पुरुष वर्ग कभी न कभी तो उसे मनुष्य होने का दर्जा देगा। लेकिन ये उसका वहम था। अब नारी खुद अपने अधिकारियों के प्रति जागृत हो चुकी है। दलितों के प्रति सहानुभूति का स्वर समाज में धीरे–धीरे उभरने लगा है। समाज के कुछ लोग यह विचार करने लगे हैं, समाज के इस वर्ग को कब तक अलग रखा जाये। क्या उन्हें हमारे समान जीने का अधिकार नहीं हैं। ऐसे लोग समाज जीने दलितों का साथ देते हुए उनकी बात का समर्थन करते हैं। सवर्ण लोगों की दृष्टि से निम्न जाति के लोगों का मान–अपमान इज्जत स्वाभिमान आदि बातें होती नहीं है। पर सुशीला टाकभौरे ने अपने साहित्य में दिखा दिया कि इन बातों का ख्याल जितना सवर्णों को होता है उतना निम्न वर्ण के लोगों को भी होता है। लेखिका ने अपनी लेखनी से दलित समाज को एक नई दिशा प्रदान की है।

✦✦✦

सन्दर्भ सूची–

1. भूमिका (टूटता वहम)
2. अनुभूति के घेरे (त्रिशूल–कहानी) पृ.सं. 20
3. अनुभूति के घेरे (सांरग तेरी याद में–कहानी) पृ.सं. 31
4. अनुभूति के घेरे (सांरग तेरी याद में–कहानी) पृ.सं. 31
5. वहीं से पृ.सं. 36
6. अनुभूति के घेरे (हमारी सेल्मा–कहानी) पृ.सं. 46
7. अनुभूति के घेरे (प्रतीक्षा–कहानी) पृ.सं. 53
8. अनुभूति के घेरे (गलती किसकी है–कहानी) पृ.सं. 68
9. वहीं से पृ.सं. 72
10. अनुभूति के घेरे (सही निर्णय–कहानी) पृ.सं. 79
11. अनुभूति के घेरे (टुकड़ा–टुकड़ा शिललिख–कहानी) पृ.सं. 86
12. अनुभूति के घेरे (सूरज के आसपास–कहानी) पृ.सं. 91
13. टूटता वहम (मेरा बचपन–कहानी) पृ.सं. 15
14. टूटता वहम (मेरा बचपन–कहानी) पृ.सं. 17
15. टूटता वहम (झरोखे–कहानी) पृ.सं. 28
16. टूटता वहम (मेरा समाज–कहानी) पृ.सं. 31
17. वहीं से पृ.सं. 32
18. टूटता वहम (विचारभूमि–कहानी) पृ.सं. 35
19. वहीं से पृ.सं. 35
20. टूटता वहम (विचार भूमि–कहानी) पृ.सं. 26
21. वहीं से पृ.सं. 37
22. टूटता वहम (टूटता वहम–कहानी) पृ.सं. 46
23. टूटता वहम (मंदिर का लाभ–कहानी) पृ.सं. 53
24. वहीं से (सिलिया–कहानी) पृ.सं. 56
25. टूटता वहम (नयी राह की खोज) पृ.सं. 67
26. वहीं से पृ.सं. 67
30. संघर्ष कहानी संग्रह (कहानी– संघर्ष) पृ.सं. 10
31. वहीं से पृ.सं. 23
32. संघर्ष कहानी संग्रह (कहानी– संघर्ष) पृ.सं. 38

33. संघर्ष (कहानी– जन्मदिन) पृ.सं. 43
34. वहीं से (कहानी–बदला) पृ.सं. 51
35. संघर्ष (कहानी– बदला) पृ.सं. 59
36. वहीं से पृ.सं. 63
37. संघर्ष (कहानी– छौआ मां) पृ.सं. 71
38. वहीं से पृ.सं. 71
39. वहीं से पृ.सं. 73
40. संघर्ष (कहानी– संभव–असंभव) पृ.सं. 115
41. वहीं से पृ.सं. 129
42. संघर्ष (कहानी– संभव–असंभव) पृ.सं. 129
43. संघर्ष (कहानी– दमदार) पृ.सं. 136

पांचवा अध्याय

सुशीला टाकभौरे के नाटकों में दलित महिला चेतना

5. सुशीला टाकभौरे के नाटकों में दलित महिला चेतना–

दलित साहित्य शुरू में कविता और आत्मकथा के रूप में लिखा जाता रहा है परन्तु अब दलित लेखकों ने साहित्य की सभी विधाओं में अपनी लेखनी चलाना आरम्भ कर दिया है। उसी का परिणाम है कि आज दलित साहित्य नई उंचाइयों को छू रहा है। दलित नाटकों की विचारधारा को निर्मित करने के पीछे दलित लेखकों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। दलित लेखकों ने भारतीय समाज में दलित समुदाय के लोगों का सवर्ण वर्ग के लोगों के द्वारा किये जाने वाले शोषण, उत्पीड़न को आधार बनाकर अपने नाटकों की रचना की है। दलित नाटकों में इतिहास में उपेक्षित दलित व्यक्तियों को आधार बनाया गया है। हिन्दी दलित नाटकों की विचार धारा और चेतना की निर्मिति के मूल में बाबा साहब अम्बेडकर और ज्योतिबा फुले के द्वारा दलितों का उद्धार करने के लिए किए गए आन्दोलनों को माना जा सकता है।

हिन्दी में दलित नाटकों की विचारधारा एवं चेतना के सम्बन्ध में विचारकों का मानना है कि भारतीय समाज में सदियों से दलितों पर होते आ रहे शोषण को अभिव्यक्त करने हेतु नाटक एक उपयुक्त विधा है। जिसमें लोग पात्रों एवं संवादों के माध्यम से किसी विषय को बेहतर तरीके से समझ सकते हैं हिन्दी में दलित चेतना की अभिव्यक्ति करने वाली कई नाट्यकृतियों की रचना की गई है। डॉ. शशिधरन का कहना है कि ''दलित चेतना के नाटककारों ने नाट्य–रूप पर कम ही सोचा है। उन्होंने वैचारिकता पर ही ज्यादा बल दिया है। इनकी नाट्यकृतियों की चर्चा हिन्दी नाटक या साहित्य के इतिहास में नहीं मिलती है। भले ही इतिहास में इन नाट्यकृतियों की चर्चा न हो, किन्तु दलित मसलों की चर्चा गंम्भीरता के साथ इन्हीं नाट्ककृतियों में हुई है। नाटककारों ने पौराणिक, ऐतिहासिक और चरित्रों के माध्यम से दलित शोषण, उत्पीड़न, धार्मिक कुरीतियों, सामाजिक बुराइयों राजनीतिक छल, जातिवाद आदि का अनावरण करते हुए सवर्ण वर्चस्ववादिता का भंडाफोड़ किया है और यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि वर्णहीन समाज में ही दलितों की उन्नति संभव है।''[1]

हिन्दी दलित नाटकों के माध्यम से दलितों में उत्पन्न हुई दलित चेतना के संदर्भ में डॉ. चन्द्रेश्वर कर्ण का कहना है कि ''दलितों में नई चेतना आयी है। लोकतंत्र ने उन्हें आत्मविश्वास दिया है अपने अधिकारों के प्रति सजग और सचेतन बनाया है। एक सीमा में ही सही उन्होंने सुविधाओं का उपयोग किया है। उनकी कर्तव्य विमूढ़ता और जड़ता की पथरीली जमीन चटकी ही नहीं है बल्कि टूट रही है। उनका गूंगापन शब्द और अर्थ प्रक्षेपित करने लगा है। वे शब्दों का नए अर्थ संदर्भों मे प्रयुक्त करने लगे हैं।''[2]

हिन्दी में दलित नाटक का विकास हो रहा है। समकालीन संदर्भ में दलित नाटकों की रचना हुई है। इन नाटकों के दलित नाटककारों में ओमप्रकाश वाल्मीकि माताप्रसाद, मोहनदास नैमिशराय, सूरजपाल चौहान, कर्मशील भारती, सुशीला टाकभौरे आदि नाम उल्लेखनीय हैं। दलित रचनाकारों में संवेदनाशील तथा महिला लेखिका टाकभौरे 'रंग और व्यंग्य' तथा 'नंगा सत्य' कृतियों के द्वारा हिन्दी नाटक साहित्य में स्थान प्राप्त कर चुकी हैं।

सुशीला टाकभौरे का नाटक 'रंग और व्यंग्य' अपने आप में उद्देश्यपूर्ण नाट्यकृति है। समाज में जातिभेद आज भी व्याप्त है। इस नाटक में सुशीला जी ने शोषण और भेदभाव की परम्परा के विरूद्ध अपनी बात कही है। 'रंग और व्यंग्य' नाट्यकृति में अलग–अलग नाटकों का विवरण है। जो समाज में दलितों और महिलाओं की वास्तविक स्थिति को उजागर करते हैं। इन नाटकों के माध्यम से अंधश्रद्धा, स्त्री दास्य, धार्मिक सामाजिक कुरीतियां तथा पुरुषसत्ता समाज का एक वास्तविक चित्र हमारे सक्षम प्रस्तुत होता है।

दूसरा नाटक 'नंगा सत्य' है 'नंगा सत्य' नाटक में एक गांव की कहानी है गांव के पिछड़ों दलितों के सामाजिक, शैक्षणिक आर्थिक शोषण को दिखाने के लिए सफल पात्र योजना की गई है। नाटक में दर्शित होता है कि दलित वर्ग की स्त्रियां अपनी इज्जत बचाने के लिए जान की बाजी लगा देती है। यह सत्य अभिव्यक्त करके बताया गया है। यह भी समाज का नंगा सत्य है इस नाटक का उद्देश्य समाज में समता, सम्मान और भाईचारा स्थापित करना है। इसके लिए शिक्षा, संघर्ष और संगठन को आवश्यक बताया है।

(अ) नाटक 'रंग और व्यंग्य' में दलित महिला चेतना–

हिन्दी, मराठी ही नहीं विश्व की सभी भाषाओं में स्त्री साहित्यकारों में नाट्य विधा को अपनाने वालों की संख्या बहुत ही कम है। ऐसे में सुशीला टाकभौरे का नाट्य रचना का प्रयास सराहनीय है। 'रंग और व्यंग्य' नाट्यकृति में पांच नाटक रचित हैं। पहला 'रंग और व्यंग्य' है दूसरा 'जीवन के रंग' तीसरा 'चश्मा' चौथा 'व्हील चेयर' और पांचवा 'समर्पित जीवन' है।

'रंग और व्यंग्य' नाट्यकृति समाज में जातिभेद को दर्शाती है। इस कृति के माध्यम से समाज में शोषण और भेदभाव की परम्परा का पता चलता है। यह नाट्यकृति समाज के सबसे निचले पायदान पर खड़े, सफाई कार्य से जुड़े समाज की प्रगति और परिवर्तन के लिए आवश्यक है। इस नाटक में एक गांव के पटेल का दलितों के प्रति किए गए रवैये को दर्शाया गया है। जहां दलितों को जूठन खाने को मजबूर किया जाता है लेकिन वो मना कर देते हैं। गांव का पटेल उनके साथ जबरदस्ती करते है। ''तुम लोग बहुत गर्रा गये हो। हिन्दू महाजनों

की जूठन बहुत पवित्र होये है। नसीब वालों को बड़े नसीब से मिले है। ये जानवरों के लिए नहीं है, समझ गई.....?[3]

दलितों को समाज में नीचा दिखाया जाता रहा है। लेकिन अब दलित अपने हितों की रक्षा के लिए जागरूक हो गये हैं। जब पटेल छब्बो को डराने की कोशिश करता है तब छब्बो जबरदस्त विरोद्ध में कहती है ''अब हम नहीं डरें कोई से? का हम किसी के गुलाम है? जो हमारी मर्जी होगी, वोई करेगें.....जो मरजी न होगी वह काम नहीं करेगे..... डरे हमारी जूती..... ''[4]

नाटक में दलितों का दमन, शोषण और विद्रोह को दर्शाया है। पात्र और संवाद योजना का सफल चित्रण किया गया है। दलित जागृति से दलितों का उत्थान संभव है। अपने हक के लिए इनको लड़ना होगा जैसे नाटक में पटेल से छब्बों ने अपना अभिमान सम्मान वापिस लिया। इस नाटक की महिला पात्र छब्बों वर्तमान समय की दलित महिलाओं का प्रतिनिधित्व करती है। अपने सम्मान के लिए जूठन से इन्कार करती है। निडरता से अपना हक मांगती है। इस नाटक में महिला चेतना दर्शित होती है।

नाटक के दूसरे अंक में दलितों के अंधविश्वास, कुरीतियों, जातपांत पर समाज का वास्तविक चित्र हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। पुरानी और नयी पीढ़ी आमने–सामने है। पुरानी पीढ़ी अन्ध आस्थाग्रस्त है, मन्दिर निर्माण में लिप्त है तो नयी पीढ़ी चेतना स्वतन्त्र है। नाटक में छब्बो मन्दिर बनवाने के लिए अपने पूरे जीवन की जमापूंजी लगा देती है। लेकिन उनकी बेटी के समझाने पर समझ जाती है। ''ऐसे मन्दिर बनवाने का भी कोई लाभ नहीं है। इससे ज्यादा यह अच्छा होता.... इन्हीं रूपयों से वह अपने जात–समाज की भलाई करती.....मां बाप की गरीबी के कारण, जो बच्चें नहीं पढ़ रहे हैं, उनके पढ़ने की व्यवस्था करती, बेरोजगारों के रोजगार के लिए कोई काम धन्धा शुरू करवा देती।''[5]

दलित धीरे–धीरे जागरूक हो रहे हैं। शिक्षा के माध्यम के दलितों का उत्थान हो रहा हैं। अंधविश्वास का विरोध करने लगे हैं। पूजापाठ का विरोध करने लगें है। ''पूजापाठ में क्या रखा है। लोग किसी को बुद्धू बनाने के लिए भी उसकी पूजापाठ शुरू कर देते हैं। हमें तो जालसाजी से बचकर दूर ही रहना चाहिए।''[6] शिक्षा के कारण ही दलित अब अपने अधिकारों की मांग करने लगे हैं।

सवर्ण लोग आज भी दलितों के साथ छुआछूत का व्यवहार करते हैं। नाटक में शालू के साथ उसकी सहेली की मौसी का बर्ताव इस बात की और ईशारा करता है कि सवर्ण अभी तक जातपांत के फेर में पड़े हुए हैं। ''मौसी– (गुस्से के साथ ऊंची आवाज में) तुमको तुम्हारी जात मालूम है या नहीं? तुम अछूत हमारे घर में कैसे आ सकती हो तुम्हें अपने रिश्तेदारों के घर ही जाना चाहिए। हम तुमको वहां पहुंचा देंगे.....।''[7]

छुआछूत, जातिवाद पानी को लेकर उजागर होता है। पानी को लेकर किया जाने वाला भेदभाव हिन्दू सवर्ण मानसिकता को उजागर करता है। शिक्षा कैसे सजग व सचेत करती है यहां देखा जा सकता है अपने कुएं से दलितों को पानी नहीं पीने देते हैं। अगर दलित इनके कुएं पर पानी पीने चढ़ जाए तो ये मारने दौड़े। लेकिन अब दलित सब समझने लगे हैं। छब्बो अपनी भाभी को इसी बात के लिए डाटती है– ''तुम कान खोलकर सुन लो, ऐसी बातों में अपने बच्चों को कभी नहीं मारना, कभी नहीं डांटना जाकर उनसे लड़ो, जो हमारा अपमान करे हैं।, हमको छोटा समझे है..... उनका बड़प्पन निकालो उनके पेट में से.....''[8] दलित अपने साथ होने वाले दुर्व्यवहार से लड़ने लगे हैं। यही दलित चेतना है। दलितों की जागृति अब होने लगी है। डॉ. रामचन्द्र का कहना है कि– ''ज्योतिबा फूले और अम्बेडकर के दर्शन, संघर्ष और अन्य परिवर्तनकामी आन्दोलनों की परम्परा के इतिहासबोध से दलित चेतना का विकास हुआ है। दलित चेतना का बोध, विकास संघर्ष और अधिकारों की मांग से गहरे स्तर तक जुड़ा है।''[9]

दलित चेतना में अम्बेडकर की ही विचारधारा प्रवाहित है। नाटक में अम्बेडकर को ही दलित अपने नेता मानते हैं छब्बो कहती है कि ''अम्बेडकर जी की बातों को समझकर, मानने में ही हमारी जाति की भलाई है।''[10] जब दलित अपने हक के लिए खड़े हो जाते हैं तो सवर्ण समझ जाते हैं कि अब ये नहीं झुकेंगे। तो ये अपने आप ही इनको मानने लगते हैं। सवर्ण अपनी गलती का अहसास कराने लगते हैं। नाटक में मौसीजी छुआछूत करती हैं बाद में उसको समझ आता है कि जमाना बदल रहा है तो माफी मांगती है ''अभी तक मैं जात–पात का भेदभाव और छुआछूत मानती थी मगर आज मैं समझ गई हूँ– इंसान ही भगवान है, सबके साथ प्रेम और अपनेपन का व्यवहार करना ही सच्चा धर्म है। बेटी मुझे माफ कर दो.....''[11]

'रंग और व्यंग्य' नाटक में दलित महिला चेतना दर्शित होती है नाटक की पात्र छब्बो में महिला चेतना दिखाई देती है। समाज में औरतों को पर्दा प्रथा को त्यागकर आंखे खोलने के लिए कहती है ''अपनी आंखों पर पड़ा यह परदा हटाओ। दुनियां को अपनी आंखों से देखो। लोगों को समझो और उनका सामना करो– तभी तुम सही बातें समझ पाओगी। मुंह छिपाकर जीने में, अपमान सहने में समझदारी नहीं है..... इस बात को समझ लो.....''[12] बाबा साहब अम्बेडकर के समाज जागृति और विचार परिवर्तन से स्थिति बदल रही है। दलित अपने पैतृक रोजगार को छोड़ रहे हैं जो वे मजदूरी में करते थे। ये समझ चुके है रोजगार जाति से नहीं जरूरत से किये जायेंगे। ''हमें गांधीजी के बताये रास्ते पर नहीं चलनो है। हम डॉ. अम्बेडकर के बताये रास्ते पर चलेंगे, शिक्षा संगठन और संघर्ष के रास्ते पर। हम अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करेंगे....''[13]

'जीवन के रंग' नाटक में अंधश्रृद्वा, स्त्री दास्य धार्मिक सामाजिक कुरीतियां तथा पुरुषसत्तात्मक समाज का वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया गया है। नाटक में डॉ. बाबा साहब

अम्बेडकर के विचारों को प्रमुखता के साथ दर्शाया है। पात्रों में विवेक– अविवेक, बुद्वि–मन, भावना तर्क, अज्ञान–विज्ञान में द्वन्द भी नजर आता है। नाटक में पुरुषसत्तात्मक व्यवस्था के कारण नारी जीवन में कितनी कठिनाइयां आती है इस बात को उकेरा है। जहां एक ओर शराबी पति शराब पी कर मस्त रहता है वहीं दूसरी ओर स्त्री अपने बच्चों के लिए संघर्ष करती नजर आती है।

नाटक में स्त्रियों के अंधविश्वास को दर्शाया गया है। स्त्रियां अंधविश्वास में ज्यादा ही विश्वास करती हैं। जब शराब के नशे से बच्चे बेहोश हो जाते हैं तो दूसरी स्त्री सत्यनारायण की कथा करवाने के लिए कहती है। यहां लेखिका ने स्त्रियों के अंधविश्वास को बताया है। नाटक में एक बेरोजगार व्यक्ति भीख मांगने को मजबूर हो जाता है तो उसको ही ब्राह्मण समझकर कथा करवाने के लिए कहा जाता है। लेकिन नाटक में पढ़े–लिखे पात्र होने के कारण वे ठगने से बच जाते हैं। ''पढ़े लिखे लोग तर्क और बुद्धि से सोचते हैं, वे बेवकूफ नहीं होते वे अंधश्रृद्धा और अंधविश्वास को अच्छी तरह समझते हैं। यह अंग्रेजी पढ़ा भिक्षुक सब कुछ जानते हुए भी हमें ठग रहा था, हमको उल्लू बना रहा था...''[14]

नाटक के दूसरे अंक में स्त्रियों के द्वारा अपने पति को अपना र्स्वस्व मानने पर करारा व्यंग्य किया गया है। अंधविश्वास के साथ पति को परमेश्वर मानती रहती है। चाहे वह परमेश्वर उनको तकलीफ देता रहे। यहीं सोच बदलने के लिए लेखिका ने इस नाटक की रचना की है। स्त्री और पुरुष समान है। लेकिन फिर भी पुरुष शराब पी कर पैसे बरबाद कर रहा है वहीं दूसरी ओर स्त्री अपने बच्चों के लिए दिन–रात मेहनत करती है। नाटक का उद्देश्य स्त्री–पुरुष की समानता रहा है।

नाटक में अम्बेडकर जयन्ती मनायी जाती है। दलित और स्त्री इस बात को अच्छे से समझते है कि उनका उद्धार डॉ. भीमराव अम्बेडकर के कारण ही हुआ है। ''हमारा सबसे बड़ा नेता वहीं है, जिनकी विचारधारा को लेकर हम चल रहे हैं, जिन्होंने हमारे देश का समतावादी संविधान बनाकर, हमें समता स्वतन्त्रता, सम्मान का अधिकार दिया है। उन्होंने महिलाओं को पुरुषों के बराबर अधिकार दे कर हमें सम्मान से जीने का अधिकार दिलाया है। ये है हमारे नेता..... डॉ. भीमराव अम्बेडकर..... ।''[15]

डॉ. भीमराव अम्बेडकर गरीब पिछड़े शोषित दबे कुचले लोगों के नेता है। अभय कुमार दुबे भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त करते हैं। उनका मानना है कि ''दलित साहित्य में अम्बेडकर का असली महत्व एक पथ प्रदर्शक और मनोवैज्ञानिक मुक्ति द्वार पर खड़ा कर देने का महत्त्व है।''[16]

'जीवन के रंग' नाटक में महिला चेतना भी दर्शित होती है। एक स्त्री अपने पति से परेशान होकर उसे कानून के हवाले कर देती है। ''रामेश्वर की आदतों से परेशान होकर हमने

इन्हें कानून के हाथों सौंप दिया था। वहां सुधार केन्द्र में रहकर ये सुधर कर आये हैं।''[17] स्त्रियां जहां अपने पति को परमेश्वर मानती थी अब वो उनके साथ बराबरी करती नजर आती हैं। नाटक से पता चलता है कि स्त्रियां अब अपने हक के लिए लड़ने लगी हैं।

सुशीला टाकभौरे का तीसरा नाटक 'चश्मा' है। यह नाटक पुरुष की सोच को उजागर करता है। परिवार में पुरुष का स्थान ऊंचा और स्त्री का निम्न माना जाता रहा है। पुरुष मानसिकता कई तरह से उजागर होती है। समाज को अपनी दृष्टि, अपने विचार, बदलने की जरूरत है। यह एक प्रतिकात्मक नाटक है। इसमें बताया गया है कि समाज को चश्मा नहीं दृष्टि बदलने की जरूरत है। स्त्री के अस्तित्व के प्रश्नों को उजागर करता यह नाटक स्त्री को अपने अस्तित्व के लिए लड़ना सिखाता है उसे जागृत करता है। इस नाटक में अधिकार मांगती, लड़ती, सम्पर्क करती स्त्री दिखाई देती है।

समाज में पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था की जड़े गहरी हैं। स्त्री इसे अपना भाग्य मानकर सहती रहती है। वह अपने अधिकारों को अपने वर्चस्व को नहीं पहचान रही। स्त्री को हमेशा से ही निचले पायदान पर रखने की कोशिश की है। नाटक में स्त्री को दबाने की कोशिश की गई है। उसकी स्वतन्त्रता का हनन किया गया है। ''यदि तुम अपने चरित्र की रक्षा करोगी तो..... जीवन भर मेरे सामने सिर उठा कर रह सकोगी और सीता–सावित्री की तरह सम्मान का जीवन जी सकोगी। नहीं तो केवल कुलटा, कलंकिनी और चरित्रहीन बनकर रह जाओगी.....।''[18]

पुरुष स्त्री को नगण्य समझता रहा है। समाज में स्त्री चाहे कितनी भी पढ़ी लिखी हो पुरुष के सामने उसको अपमान ही मिलता है। एक नौकरानी की तरह व्यवहार किया जाता है। नाटक में भी पुरुष का यही रूप नजर आता है। वह स्त्री को नौकरानी ही समझता है। ''मैं ऑफिस से थककर आया हूँ। सिर में दर्द है। कब से तुम्हारी राह देख रहा हूँ। इतनी देर बाद आई हो, अब जल्दी से चाय बना दो। वैसे भी यह तुम्हारा काम है.....। पत्नी चाय बनाकर पति को देती है.....।''[19] लेकिन अब शिक्षा के माध्यम से स्त्री के विचारों में परिवर्तन आया है। शिक्षित नारी अपने हक को पहचानने लगी है। अपने वजूद के लिए लड़ना सीख गई है अब वह अबला नहीं सबला बनना चाहती है।

'चश्मा' नाटक की एक स्त्री पात्र कहती है– ''गया वह जमाना, जब पति के ईशारों पर नाचती थी। पति की मर्जी से जीती थी और पति की मर्जी से मरती थी। आज जमाना बदल गया है। मैं आधुनिक युग की पढ़ी लिखी समर्थ नारी हूँ। तुम्हारे समान नौकरी करती हूँ। तुम्हारे बराबर तनखाह पाती हूँ। क्या आज भी मेरी मरजी से मैं कुछ नहीं कर सकती.....।''[20]

अब स्त्री अपने अधिकारों की मांग करने लगी है। समता स्वतन्त्रता और सम्मान को पहचानने लगी है। यहां महिला चेतना उजागर होती है। ''नारी कमजोर नहीं है, तुम सबने उसे कमजोर बनाया है। समझ बुझकर उसे कमजोर बनाया है..... षड़यंत्र के साथ कमजोर असहाय,

अबला बनाया है।''[21] अब वह अपना रास्ता स्वयं देखना चाहती है। अपने विषय में खुद विचार करना चाहती है। अपने निर्णय खुद लेना चाहती है।

नाटक में स्त्री पुरुष का रैवेया अपना के पुरुष को सबक सिखाना चाहती है। वह चाहती है जिस तरीके से पुरुष स्त्री को रखते हैं अब स्त्री भी पुरुष को उसी तरीके से रखेगी। ''ऐसा करते हैं, हम अपने चश्में बदल लेते हैं। मैं तुम्हारे चश्में से देखूंगी तुम मेरे चश्में से देखना तुम मेरे नजरिए से देखना मैं तुम्हारे नजरिये से देखूंगी।''[22] लेखिका यहां कहना चाहती है कि समाज में चश्में बदलने की जरूरत नहीं बल्कि दृष्टि बदलने की जरूरत है। समाज में स्त्री पुरुष को समानता मिलनी चाहिए तभी समाज आगे बढ़ पायेगा।

'व्हील चेयर' नाटक में लेखिका ने समाज की अपाहिज मानसिकता को दर्शाया है। 'व्हील चेयर' अपंग स्त्री मानसिकता की वास्तविकता है जो गति–प्रगति, चेतना नवचेतना को अवगुंठित करती है। परम्परा, सड़ी गली प्रथाओं के साथ बन्धे रहने की मजबूरी एक स्त्री में किस तरह से अवस्थित रहती है और इन सबको धिक्कारने की, इनको अस्वीकार करने की मानसिकता इस नाटक में उजागर होती है।

इस नाटक में पुरुष पत्नी को एक काम करने वाली मशीन समझता है। समाज में बेटों को महत्व दिया जाता है। बेटियों को कोख में ही मार दिया जाता है। ये समाज की अपाहिज मानसिकता है जिसको व्हील चेयर की जरूरत है। समाज में लोगों की मानसिकता बनी हुई है कि बेटे ही वंश चलाते है ऐसी मानसिकता को बदलने की जरूरत है।

औरत अब इस मानसिकता को बदल रही है। पुरुष के बराबर काम कर रही है अपना हक ले रही है। शिक्षा के माध्यम से सावित्री बाई फुले को पहचान रही है और जाग्रत हो रही है। ''बरसों से बीमार–अपाहिज मानसिकता का बोझ उठाये जी रही थी। लेकिन अब मैं जाग्रत हो गयी हूँ। अब मैं जिन्दा हूँ तन्दुरूस्त हूँ। तन मन से स्वस्थ हूँ, अपने होश–हवाश में हूँ।''[23] इस नाटक का उद्देश्य समाज में महिलाओं को जाग्रत करना है। जिस मानसिकता की वे खुद भी शिकार हैं उसको नकारें, अपने आप को सजग, जाग्रत बनाये। समाज में अपनी अलग पहचान बनाये। समाज की सड़ी गली परम्पराओं का साथ न दे उनका विरोध करना सीखें।

'समर्पित जीवन' नाटक में एक सच्चे ईमानदार और आदर्शवादी शिक्षक की त्रासदी प्रस्तुत की गई है। समाज में बढ़ती अनीति बिखराव, स्वार्थलोलुपता भौतिकवाद, उपभोक्तावाद ने जीवन के आदर्शों को ध्वस्त कर दिया है। शिक्षक वर्ग जिसे देश का निर्माता हम मानते हैं, उसी शिक्षक के मनोबल को ध्वस्त करने वाली व्यवस्था पर आधारित यह नाटक आज की सच्चाई को उजागर करता है यह नाटक मानवीय संवेदनाओं को झकझोर कर देने वाला है।

नाटक में एक युवक बेरोजगार होता है जो एक आदर्शवादी शिक्षक से मिलता है। शिक्षक उसे आज के समय में हो रही स्वार्थ लोलुपता, भौतिकवाद, उपभोक्तावाद की सच्चाई

को बयां करता है। जहां देश के भविष्य का निर्माण होता है वहां कैसे–कैसे व्यापार चलते हैं वहां की व्यवस्था सिर्फ ऊपर वाले अर्थात संस्था प्रधानों के हाथों में होती है और उन्हीं के हाथों की कठपुतलियां बनकर वहां काम करना होता है। आदर्शवाद, सच्चाई, ईमानदारी सबका त्याग करना पड़ता है। वर्तमान समय में ऐसा ही देखने को मिलता है व्यक्ति में ज्ञान कितना भी हो वह काम नहीं आता उसे चापलूसी करना आना चाहिए तो वह टिका रहेगा वरना या तो दूर तबादला किया जायेगा या उसे पद से हटा दिया जायेगा। ऐसी ही सच्चाई लेखिका ने 'समर्पित जीवन' में उजागर की है। जो समाज को देखने की, उसमें सुधार करने की जरूरत है।

'रंग और व्यंग्य' नाट्य कृति के सभी नाटक समाज के लिए प्रेरणादायी है। इन नाटकों में समाज की सच्चाई उजागर होती है। स्त्री दासता, अंधविश्वास, पुरुष सत्तात्मक समाज, सड़ी गली परम्पराओं का निर्वाह आदि कुरीतियां समाज में व्याप्त हैं। पर वर्तमान समय में बाबा साहब अम्बेडकर, ज्योतिबा फुले सावित्री बाई फुले के आदर्श विचारों के कारण दलितों में और महिलाओं में जाग्रति दिखाई देती है। लेखिका का यह प्रयास सराहनीय है।

(ब) नाटक 'नंगा सत्य' में दलित महिला चेतना–

दलित साहित्य का उद्देश्य समाज में समानता लाना है। इसके लिए जरूरी है, दलितों को ऊपर उठाया जाये और सवर्णों की तथाकथित उच्चता को यथार्थ के धरातल पर लाया जाये। इससे वर्णभेद जातिभेद की ऊंच–नीच की विषमता मिटेगी और सामाजिक समानता की स्थापना होगी। दलित साहित्य इसमें अहम् भूमिका निभा रहा है। दलित साहित्य के बारे में विमल थोराट का मानना है कि ''दलित साहित्य उस विद्रोह का उन्मेष है जो किसी विशिष्ट जाति या व्यक्ति के विरूद्ध नहीं, बल्कि स्व की खोज में निकले हुए एक पूरे समाज का पूर्व परम्पराओं में विद्रोह है एवं अपने अस्तित्व की स्थापना का प्रचार है।''[24]

दलित साहित्य को बाबा साहब अम्बेडकर के जीवन दर्शन ने एक वैचारिक ऊर्जा दी है। महात्मा बुद्ध की दार्शनिकता ने उसे सामाजिक दृष्टि दी है। साथ ही ज्योतिबा फूले के जीवन संघर्ष से गहन प्रेरणा मिली है। दलित साहित्य से ही दलितों में चेतना जाग्रत हुई है। संजीव कुशवाह के अनुसार ''दलित चेतना अपने इतिहास को पहचानना, अपने शोषकों की संस्कृति का तिरस्कार करना एवं डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा का पालन करना है।''[25]

सुशीला टाकभौरे द्वारा रचित नाटक 'नंगा सत्य' एक गांव की कहानी है। इस नाटक के नाटककार कृपाशंकर और सूत्रधार कमल रहते हैं। गांव के दलित–पिछड़ों के सामाजिक,

शैक्षणिक, आर्थिक शोषण को दिखाने के लिए नाटक की रचना की गई है। इस नाटक में दलित शोषण से मुक्ति का मार्ग फुले–अम्बेडकर विचारधारा और प्रगति परिवर्तन के आन्दोलन को बताया गया है। इस नाटक का उद्देश्य समाज में समता, सम्मान और भाईचारा स्थापित करना है। इसके लिए शिक्षा संघर्ष और संगठन को आवश्यक बताया है। दलित नाटक का आधार वेदना, विद्रोह और नकार है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के साठ साल होने के बाद भी, हर गांव, हर शहर में आज भी नंगा सत्य दिखाई दे रहा है। दलित वर्ग की स्त्रियों की इज्जत के साथ खेला जाता है इसके चलते वे अपनी जान गवां देती हैं। इन सब पर तीखी प्रतिक्रिया अभिव्यक्त करके समाज का नंगा सत्य सामने लाया गया है। अंधविश्वास, अशिक्षा, दलित उत्पीड़न, नारी उत्पीड़न, अत्याचार, बलात्कार आज भी हो रहा है। 'नंगा सत्य' नाटक के माध्यम से लेखिका ने विषमतावादी समाज व्यवस्था के सत्य को उजागर किया है।

'नंगा सत्य' नाटक में सदियों से चले आ रहे दलितों के शोषण पर करारा व्यग्यं किया गया है। जो जमींदार सदियों से दलितों के साथ अमानवीय व्यवहार करते रहे हैं अब भी वे दलितों को वैसा ही रखना चाहते हैं लेकिन अब दलित शिक्षा पाकर डॉ. भीमराव अम्बेडकर के विचारों को समझ कर इनका विरोध करने लगे हैं। ''उन्हीं की प्रेरणा से हमने अपना उद्देश्य बनाया है समाज को बदल डालो, समाज व्यवस्था को बदल डालो रूढ़ियों को तोड़ दो.....बेड़ियों को तोड़ दो..... ।''[26]

बाबा साहब का मानना था कि धार्मिक मान्यताओं के आधार पर समाज में दलितों को जिल्लत भरी जिन्दगी जीने को मजबूर होना पड़ा है। धर्म के नियम इतने कठोर थे, जिनका पालन करना दलितों के लिए अनिवार्य था, अन्यथा दलितों को सवर्णों के कोप का भाजन बनना पड़ता था।

'नंगा सत्य' नाटक सवर्णों का दलितों के प्रति व्यवहार को दर्शाता है। आज भी इतनी शिक्षा, इतनी जागरूकता होने के बाद भी दलितों के साथ वैसा ही व्यवहार किया जाता है जैसा शिक्षा के बिना होता है। नाटक में शिक्षित दलितों के साथ अमानवीय व्यवहार को बताया है। ''भंगी चमारों..... तुमने मंच पर आने की हिम्मत कैसे की? जाओ, गांव के बाहर रहो..... हिन्दू महाजनों से दूर अपनी गंदी बस्तियों में रहो..... सवर्णों की सेवा करो.....उनकी जूठन पर अपना निर्वाह करते रहो.....यदि किसी न कुछ ज्यादा चाहा, तो मार डाले जाओगे.... मार डाले जाओगे.. ... ।''[27] आज लोगों के सजग होने पर अपने हक की लड़ाई लड़ने लगे हैं। सवर्ण इनको उन्हीं गंदी बस्तियों में रखना चाहते हैं वहीं गांव के बाहर इनके घर बनाना चाहते हैं। गांवों में जमींदार लोगों का रूतबा कम हो गया लेकिन अब भी दलितों का शोषण कर रहे हैं। ''जमीदारों की जमींदारी नहीं रही, फिर भी ताकत और रूपयों के बल पर वे क्या नहीं करते?

ठाकुर और ऐसी ही दबंग जातियों के लोग गरीब, दलित, पिछड़े वर्ग की बहु–बेटियों के साथ, इसी तरह अत्याचार और बलात्कार कर रहे हैं।''[28]

सरकारी आरक्षण के बाद भी इनके साथ वही अन्याय, अत्याचार हो रहे हैं। दलितों के कुटुम्ब परिवार को मारा पीटा जाता है। उनके घर की औरतों को बेइज्जत करके गांव में घुमाया जाता है। इनको पुश्तैनी काम करने के लिए भी मजबूर किया जाता है। नाटक में दर्शित किया गया है– ''चार्टर एकाउण्टेण्ट सुनीत कुमार जाटव मंच पर जूता चप्पल गांठ रहा है। वह मंच पर मरे ढोर का चमड़ा उतार रहा है, मांस काट रहा है.....।''[29] इसमें इस सच्चाई का पता चलता है कि आज भी लोगों से ऐसे काम करवाये जा रहे हैं। दलितों पर अन्याय और अत्याचार किया जा रहा है यही नंगा सत्य है। आज भी दलितों की यही दुर्गति है।

चाहे गांव हो या शहर, शोषण उत्पीड़न हर जगह इनके साथ है जो बिना कारण पीटे जाते है, जो अभाव और अपमान का जीवन जीते हैं वर्णवादी, जातिवादी, विषमतावादी समाज व्यवस्था में नरक भरी जिन्दगी जीते हैं। एक दलित मजदूर गुलामों जैसा जीवन जीता है। वह इस जीवन को जीने के लिए मजबूर है क्योंकि उसके पास अधिकार नहीं हैं सुख सुविधा नहीं है। काम करने के बाद भी मारपीट, जुल्म अत्याचार किये जाते हैं। दलितों के अधिकार होने के बावजूद भी वह अपने अधिकारों को पहचान नहीं रहा। ''पूरा देश उन्नति कर रहा है। सभी जातियां उन्नति कर रही हैं। सभी कौम प्रगति के पथ पर आगे बढ़ रही हैं..... मगर मैं कहां हूँ? मुझे कुछ पता नहीं है.....।''[30]

सदियां बीत गई हैं दलितों को जुल्म अत्याचार सहते–सहते। अब इनके सब्र की हद टूट रही है। अब दलित समझते लगे हैं कि इन पर होने वाले अत्याचार को, जातिभेद और अपमान का मूंह तोड़ जबाव देना होगा। अब आने वाली पीढ़ियों को नहीं सहने देगें। ''अब हमारा अपमान कोई नहीं कर सकता.....हम भी सम्मानित इन्सान हैं.....।''[31]

नाटक में दलित महिला चेतना भी उजागर हुई है। महिलाएं अपने ऊपर होने वाले अत्याचार को अब नहीं सह रही हैं। अबला से सबला नारी होने का अहसास हो चुका है। डॉ. अम्बेडकर के विचारों पर अमल करने लगी हैं। अपने हितों को पहचानने लगी हैं। सदियों से उन पर लगाये गये बन्धनों को तोड़ने लगी है। नाटक के जरिये दलित महिलाओं में आत्मविश्वास जगेगा, अपने आत्मसम्मान की रक्षा करने का अहसास होगा।

दलित महिला अपने ऊपर होने वाले जुल्म को सहती रहती है। महिलाएं शोषित पीड़ित है लेकिन वे सामने आने के लिए तैयार नहीं होती। इसका कारण है– उन पर अधिक जुल्म किये जाते हैं। उन्हें बेइज्जत किया जाता है। उन्हें झूठा बदनाम किया जाता है उन्हें जान से खत्म कर दिया जाता है। लेकिन अब महिला चेतना के कारण अपनी बेड़ियां तोड़ रही है। अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों का डटकर सामना करने लगी हैं। ''डॉ. अम्बेडकर ने ठीक कहा

है– गुलाम को यदि उसकी गुलामी का अहसास करा दिया जाये, फिर वह गुलाम नहीं रह सकता। तब अपनी बेड़िया वह स्वयं तोड़ देता है।''[32]

महिलाओं को जाग्रत करने की जरूरत है। ये सदियों पुरानी बेड़िया एक ही झटके में टूट जायेगी। हौसला और हिम्मत के साथ दलित महिलाओं का आगे बढ़ना होगा। एकता और संगठन के साथ गुलामी की जंजीरे जोड़नी होगी। नंगा 'सत्य' नाटक यही संदेश देता नजर आता है।

दलितों को अहसास होने लगा है इक्कीसवीं शताब्दीं आ गई है। फिर भी हमारे घर जलाये जा रहे हैं। दलितों को जिन्दा जलाया जा रहा है। लेकिन अब हमारा उद्देश्य पूरी समाज व्यवस्था को बदलना है। हमें अपना इतिहास जानना होगा हम कौन है? हमारे शोषक कौन है? इनकी असलियत पूरी दुनियां को बताना है। हमें अपने अधिकार लेना होगा। सम्मेलन, सेमीनार और विचार गोष्ठियों के द्वारा पूरे देश में जन जागृति लाना है। दलित साहित्य के द्वारा समाज को जगाना है। अब पूरे देश, हर गांव, हर शहर में शूद्र दलित बहुजन जागृति का काम हो रहा है।

'नंगा सत्य' नाटक से पता चलता है कि दलितों की जागृति की बात अब सवर्ण भी समझने लगे हैं। नाटक में पता चलता है सवर्ण धीरे–धीरे समझने लगे हैं कि दलित अपने हक के लिए जाग चुके हैं अब इनको दबाना आसान नहीं है। ''डॉ. अम्बेडकर ने देश का संविधान बनाकर, इन शूद्र–अछूतों को बहुत ताकत दे दी है। अब सवर्णों के हाथ कमजोर हो गए हैं।''[33]

अब दलित अछूत पिछड़े वर्ग के लोग पढ़ लिखकर बड़े अधिकारी बन रहे हैं। दलित अब जान चुके हैं कि डॉ. अम्बेडकर ने दलित अछूतों, पिछड़े लोगों के लिए जीवन भर संघर्ष किया। इनको सब सुविधाओं के अधिकार दिलाये समता, स्वतन्त्रता, सम्मान का अधिकार दिया, मानव होने का अधिकार दिया है। अब इस आन्दोलन को आगे बढ़ाना है। केवल पुरुष ही नहीं, दलित महिलाएं भी जन–जाग्रति करने, अपने घरों से निकल रही हैं। वे पुरुषों और महिलाओं को दलित आन्दोलन से जोड़ने का काम कर रही है। नाटक में नीलिमा दलित महिलाओं को जाग्रत करने का काम कर रही है। समाज में महिलाओं को अपने अधिकारों को लेने के लिए प्ररित करती है। नीलिमा एक बच्चे को गोद लेकर, वो भी एक लड़की को समाज को नई दिशा प्रदान कर रही है। शिक्षा से जो पहचान मिलती है उसको समझ रही है। नीलिमा समझाती है कि ''हमारा उद्देश्य लोगों को जान से मारना नहीं, बल्कि समाज व्यवस्था को बदलना है।''[34]

'नंगा सत्य' नाटक में दलित चेतना के साथ–साथ महिला चेतना भी दर्शित है। इस नाटक में पात्रों के संवाद और पात्र योजना उद्देश्य पूर्ण है। नाटक में दलितों पर हो रहे अत्याचारों, जुल्मों शोषण को समाज के समाने बखूबी लाने का प्रयास किया है। समाज भी इस

बात को मानने लगा है कि दलित अब दलित नहीं रहे हैं उनको अपने अधिकारों का पता चल चुका है और अब वे अपने अधिकारों के लिए लड़ने लगे हैं।

दूसरी और नाटक में महिला जाग्रति भी विशेष रूप से दिखाई देती है। महिला पात्रों ने महिलाओं पर हो रहे अत्याचारों को समाज के सामने लाने का भरसक प्रयास किया है। समाज में महिला चाहे दलित हो या सवर्ण पुरुष सत्तात्मक समाज व्यवस्था से दो चार होना ही पड़ता है 'नंगा सत्य' नाटक का एक मात्र उद्देश्य यही रहा है कि समाज में समानता, स्वतन्त्रता, समता का संदेश दिया जाए।

निष्कर्ष–

हिन्दी दलित नाटकों की विचारधारा एवं चेतना को निर्मित करने में समाज में दलितों के पग–पग पर होने वाले अपमान एवं शोषण ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। दलितों द्वारा ही दलितों की वेदना को अच्छी तरह से महसूस किया जाता है। दलितों के द्वारा लिखे दलित नाटकों में दलितों के शोषण को बारीकी से उकेरा जा सका है। दलितों द्वारा लिखे दलित नाटक संवेदना के स्तर पर दलितों की वेदना को चित्रित कर सके हैं।

सुशीला टाकभौरे के नाटक 'नंगा सत्य' और 'रंग और व्यंग्य' ने दलितों को यह प्रमुख संदेश दिया है कि दलितों को एकजुट होना होगा, उन्हें संगठित होकर समाज की विषमता के खिलाफ आवाज उठानी होगी, अन्यथा उनके शोषण में कमी नहीं हो सकेगी। दलित नाटकों ने समाज को एक खुला संदेश दिया है कि सवर्णों द्वारा दलितों का शोषण बहुत हो चुका है अब उसे बन्द किया जाना चाहिए। दलितों को भी समाज में सम्मान पूर्ण जीवन जीने का उतना ही हक है जितना सवर्णों को। सुशीला टाकभौरे के नाटक 'रंग और व्यंग्य' में समाज में व्याप्त छुआछूत, बुराइयां, कुरीतियां, गांवों की सामाजिक दशा का दिग्दर्शन है। इस नाटक का संदेश है कि पुरानी परम्पराओं से बाहर समाज में जाति, धर्म छूत–अछूत के नाम पर संघर्ष की स्थिति बनाओ। अगर ऐसी ही स्थिति बनी रहेगी तो हमारी राष्ट्रीय एकता का चोट पहुंचती रहेगी। सब लोगों को मिलजुल कर रहने का संदेश दिया है। दलित चेतना के सदर्भ में डॉ. ए.आर. किदवई ने कहा है कि ''दलित चेतना की पहली शर्त आत्मसम्मान का बोध। यह बोध शिक्षा से ही जगता है। दूसरी शर्त उसके लिए संघर्ष, यानी सामूहिक जनशक्ति में आस्था और यह जनशक्ति संगठन बनती है। इसी के अभाव में दलित पीड़ित और शोषित रहे। पग–पग पर अपमानित व लांछित होते रहे।''[35] सुशीला टाकभौरे के नाटक 'नंगा सत्य' में लोकनायकों और महापुरुषों का दलितों पर काफी प्रभाव दिखाया है इनकी जागृति का कारण यही है।

दलितों की तरह बहुजन भी शोषित पीड़ित हैं, मगर वे स्वयं को सवर्णों के नजदीक मानकर, अपनी बुरी स्थिति में भी खुश रहते हैं। वे अपने शोषण को भूल जाते हैं। और दलितों के साथ जाति भेदभाव को मानते हुए सवर्णों की नकल करते हैं। नारी शोषण के क्षेत्र में नीलिमा ही नहीं हैं हर जाति, हर धर्म की नारी शोषण का संताप भोगती है। यह शोषण नारी होने के कारण भी है और जाति धर्म के कारण भी। इसके लिए समाज में स्त्री पुरुष समानता जरूरी है। स्त्रियों को स्वतन्त्रता समानता और सम्मान का अधिकार सही अर्थों में मिलना चाहिए।

सुशीला टाकभौरे के दोनों नाटकों में समाज में समानता का उद्देश्य निहित है। इसके लिए जरूरी है दलितों को ऊपर उठाया जाये और सवर्णों की तथाकथित उच्चता को यथार्थ के धरातल पर लाया जाये। इससे वर्णभेद की ऊंचनीच की विषमता मिटेगी और सामाजिक समानता की स्थापना होगी।

सुशीला टाकभौरे ने अपने नाटकों में दलितों के शोषण को आधार बनाकर रचना की है। इनके आधार पर ही दलित ऊपर उठ सकेंगे। सुशीला टाकभौरे के साहित्य में डॉ. भीमराव अम्बेडकर, ज्योतिबा फूले आदि का प्रभाव देखा जा सकता है इनके नाटकों के माध्यम से दलितों में चेतना का उदय होगा और दलित अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर सकेंगे। इन्होंने भारतीय समाज की वर्ण व्यवस्था की भेदभाव पूर्ण नीतियों से अवगत कराया है और साथ ही इन नीतियों का विरोध करने की चेतना भी दलितों में पैदा की है। इनका समाज के लिए यह प्रयास सराहनीय है।

सन्दर्भ सूची–

1. दलित साहित्य का मूल्यांकन पृ.सं. 23–24
2. युद्धरत आम आदमी, अंक 41, 1998 पृ.सं. 33
3. रंग और व्यंग्य पृ.सं. 14
4. वहीं से पृ.सं. 15
5. रंग और व्यंग्य पृ.सं. 25
6. वहीं से पृ.सं. 24
7. वहीं से पृ.सं. 29
8. रंग और व्यंग्य पृ.सं. 35
9. जनसत्ता दिल्ली पृ.सं. 17
10. रंग और व्यंग्य पृ.सं. 38
11. रंग और व्यंग्य पृ.सं. 39
12. वहीं से पृ.सं. 35
13. वहीं से पृ.सं. 41
14. जीवन के रंग पृ.सं. 59
15. जीवन के रंग पृ.सं. 74
16. अम्बेडकर दलित साहित्य की प्रेरणाः शिखर की ओर पृ.सं. 300
17. जीवन के रंग पृ.सं. 75
18. चश्मा– रंग और व्यंग्य पृ.सं. 85
19. वहीं से पृ.सं. 86
20. चश्मा– रंग और व्यंग्य पृ.सं. 88
21. वहीं से पृ.सं. 90
22. वहीं से पृ.सं. 95
23. व्हील चेयर (रंग और व्यंग्य) पृ.सं. 113
24. मराठी दलित कविता और साठोत्तरी हिन्दी कविता में सामाजिक, राजनीतिक चेतना पृ. सं. 29
25. संजीव कुशवाह– युद्धरत आम आदमी अंक 109 जुलाई– सितम्बर 20119–119
26. नंगा सत्य पृ.सं. 25
27. नंगा सत्य पृ.सं. 31
28. वहीं से पृ.सं. 42

29. वहीं से पृ.सं. 43
30. नंगा सत्य पृ.सं. 49
31. वहीं से पृ.सं. 49
32. नंगा सत्य पृ.सं. 50
33. नंगा सत्य पृ.सं. 67
34. वहीं से पृ.सं. 88
35. युद्धरत आम आदमी अंक 41, 1998 पृ.सं. 3

छठा अध्याय

सुशीला टाकभौरे के निबन्धों में दलित महिला चेतना

6. सुशीला टाकभौरे के निबन्धों में दलित महिला चेतना–

महिला समाज का महत्वपूर्ण हिस्सा है। युग बीत गये मगर इस महिला वर्ग की स्थिति ज्यों की त्यों बनी हुई है। इक्कीसवीं सदीं में भी महिला आज भी पुराने जीवन मूल्यों, नैतिक मानदण्डों और सामाजिक परिधि के घेरे में बंधी है। भारतीय पितृसत्तात्मक सामाजिक, सांस्कृतिक संरचना महिला विरोधी है। पितृसत्तात्मक जीवन मूल्य लिंग भेद की राजनीति से ग्रस्त तथा महिला उत्पीड़न का आधार है। पितृसत्तात्मक समाज स्त्रियों के लिए ऐसे मूल्य नैतिक सिद्धान्त सुनियोजित ढ़ंग से बनाता आया है जिसमें महिलाएं आजीवन गलती और ढ़लती रही हैं। सदियों से स्त्रियां इन रीतिरिवाजों, परम्पराओं के नाम पर पितृसत्तात्मक मूल्यों के सांचों में जकड़ दी गई हैं। धीरे–धीरे स्त्री नियमों, कानूनों सिद्धान्तों, जीवन मूल्यों को झेलते–झेलते इतनी अभ्यस्त हो गई है कि उसे निभाना उसने धर्म, कर्तव्य समझ लिया है।

'हाशिए का विमर्श' निबंध में भारतीय समाज व्यवस्था के शोषित–पीड़ित दलित वर्ग को माध्यम बनाया है। इसके माध्यम से हाशिए के जाति समुदायों के जीवन स्तर में व्याप्त जातिभेद और लिंगभेद की विषमता, छुआछूत, धार्मिक अन्धविश्वास, सामाजिक कुरीतियां और सामाजिक बहिष्कार की प्रताड़ना की ओर ईशारा किया है। इसका पहला अध्याय 'दलित महिला और साहित्य लेखन' है इसमें दलित महिला और उसके लेखन से जुड़ी समस्याओं को उकेरा है। दूसरा अध्याय' नारी जीवनः दोहरी जिन्दगी का संताप' है इसमें नारी के दोहरे जीवन पर प्रकाश डाला गया है। तीसरा अध्याय 'नारी दलितः क्यों और कब तक' है। नारी सदियों से ही दलित रही है। इस निंबध में उसके कारणों को दर्शाया है। नारी को अपने अधिकारों के प्रति सचेत किया है। चौथा अध्याय 'स्त्रियों के उत्थान में डॉ. अम्बेडकर का योगदान' है। सुशीला जी के साहित्य में डॉ. अम्बेडकर के विचारों का प्रभाव दिखाई देता है। भारतीय समाज में महिला होना और वो भी दलित होना एक अभिशाप से कम नहीं है। इस समाज में शोषित–पीड़ित–दलित और स्त्रियां हमेशा से ही हाशिए पर रही हैं। उनका साहित्य और उनका विमर्श भी हाशिए पर ही है। सुशीला टाकभौरे की पुस्तक 'हाशिए का विमर्श' इसी पर आधारित है।

(अ) दलित महिला और साहित्य लेखन–

सदियों से चली आ रही परिपाटी के अनुसार नारी सदा से ही दलित रही है और दलित स्त्री के रूप में दोहरा सन्ताप भोगने वाली हो जाती है। नवीन युग में भी हर रोज ऐसी

घटनाएं घटती हैं, जहां दलित स्त्रियों पर अत्याचार हो रहे हैं। मारपीट जैसी घटनाएं आम बात है। उसका भी अपना अस्तित्व है। लेकिन पुरुष वर्ग हमेशा ही स्त्री अस्तित्व की बात को नकारता रहा है।

डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर ने अपने एक लेख 'दि वूमेन एण्ड दि काउण्टर रिवोल्यूशन' 'नारी और प्रतिक्रान्ति' में स्मृतिकार मनु के नारी सम्बन्धी विचारों को रखा है। मनु के नारी विरोधी विचार इस प्रकार हैः–

'स्त्रियां पुरुषों पर बुरा प्रभाव डालती हैं।'

'स्त्रियां बुद्धिमान पुरुषों को पथभ्रष्ट करती हैं।'

''परिवार में स्त्रियों को दिन रात पुरुषों के अधीन रखा जाना चाहिए जैसे आयु के अनुसार पिता, भाई, पति अथवा पुत्र के संरक्षण में नारी हमेशा रहे''[1]

इस तरह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दू धर्म, समाज और संस्कृति के कर्णधार माने गए मनु ने अपनी 'मनुस्मृति' में स्त्री वर्ग के लिए अनेक नियम और बन्धन निश्चित किए थे। जिसके फलस्वरूप कन्या जन्म को ही अवांछित और अशुभ मान लिया गया।

स्त्री मात्र उपभोग की वस्तु और दासी मान ली गई। पति और पुत्र के रहने पर ही समाज में उसका सम्मान होता था। इन नियमों के चलते स्त्री कभी स्वतन्त्र रूप से विचार नहीं कर पायी। अपनी अस्मिता को पहचान नहीं पायी और न ही अपने अधिकारों की बात के लिए अपनी आवाज बुलन्द कर पायी। देव और धर्म के नाम पर अन्धश्रद्वा में डूबी महिला कभी भी और कहीं भी पुरुष के अन्याय अत्याचार का विरोध नहीं कर पाती, फलस्वरूप उसे सामाजिक न्याय और समानता का अधिकार आज भी नहीं मिल पाया। मातृसत्ता को पितृसत्ता में बदल जाना, सहज ही संभव नहीं हुआ होगा। यह प्रक्रिया लम्बे समय तक चली होगी। इसमें नारी का दमन है, तो नारी के द्वारा किया गया संघर्ष भी अवश्य होगा। लेकिन हम देखते हैं कि इस विषय में समाज और साहित्य के संदर्भों में बहुत ही सहज रूप में मातृसत्ता का ह्रास और पुरुषसत्ता का विकास दिखाई पड़ता है। सत्तावान महिला सत्ताहीन किस तरह बना दी गई– इसका प्रमाणपूर्ण और तर्कपूर्ण उल्लेख दिखाई नहीं देता।

उन्नीसवीं शताब्दी की भारत के हालात पर प्रकाश डालते हुए श्री अरविन्द ने कहा है– ''सम्पूर्ण स्थिति को देखते हुए हम पाते हैं कि एक बहुत बड़ी शक्ति जो नये संसार और विदेशी वातावरण में अंगड़ाई ले रही है, अपने ही बन्धनों के कारण झनझना उठी है। यह बन्धन उस पर थोप दिये गये और वह इनसे मुक्ति के लिए झटपटा रही है ताकि उठकर अपनी आत्मा को विस्तार दे और विश्व पर अपनी धाक जमा सके।''[2]

समाज में धर्म नीति मर्यादा के नाम पर अमानवीय रिवाज चलते रहे हैं। स्त्रियों का दमन कई तरह से होता रहा है। पुरुष प्रधान समाज में महिलाओं पर अत्याचार होते रहते हैं।

स्वतन्त्रता, समानता और शिक्षा से वंचित स्त्री अपनी यथार्थ स्थिति पहचान नहीं पाती है। महिलाओं की स्थिति समाज में अत्यधिक दीन–हीन बना दी गई है। समता सम्मान के अधिकारों से वंचित महिला में कहीं भी अपनी स्थिति के प्रति विरोध भाव या आक्रोश नहीं दिखता। पुरुष प्रधान समाज महिलाओं को खुशियों से वंचित करते हैं इसके साथ ही चरित्र के नाम पर लांछन भी लगाया जाता है, जो एकतरफा और अन्यायपूर्ण लगता है। ''स्त्रियां अबला है सामाजिक ढ़ांचे में उन्हें कम सुविधा प्राप्त है और दलित वर्ग के लोगों की तरह दिन काटने पड़ते हैं। शक्तिशाली पुरुष सम्प्रदाय अपनी खुशी के अनुसार उन पर अत्याचार करता रहता है और उन्हें दबाये रखता है। इससे बचाव का कोई उपाय न देखकर उन्हें यह सब सहन करना पड़ता है। संसार भर में स्त्री की स्थिति लगभग ऐसे ही है। लेकिन इस दुर्भाग्य पूर्ण देश में पुरुष की निर्दयता स्वार्थ और मूर्खता के कारण कोई समान्तर उदाहरण नहीं मिलता।''[3]

19वीं सदी के सामाजिक माहौल में स्त्री की स्थिति और प्रचलित मान्यताओं पर प्रश्न चिन्ह लगाती हुई सन् 1882 में मराठी में ताराबाई शिंदे ने 'स्त्री–पुरुष तुलना' लिखि। दुनिया भर की स्त्री जाति की वास्तविक स्थिति पर विचार विमर्श करने का आह्वान इसमें है। स्त्री–पुरुष की समानता पर बल देते हुए उन्होंने चेतावनी दी कि स्त्री को आप दरकिनार नहीं रख सकते पुरुष प्रधान समाज में घर के चारदीवारों के भीतर बाहरी दुनिया से दूर पड़ी नारी की दुर्दशा बहुत ही दयनीय है। ''धर्माचार्यों ने शास्त्रों में सब नियम पुरुषों की सुख–सुविधा का ख्याल रखकर बनाये हैं स्त्रियों की नहीं।''[4]

बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने दलित महिलाओं को शिक्षा और प्रेरणा से जगाया। तर्क, बुद्धि से उन्हें अपनी अस्मिता की पहचान कराई। सदियों से मूक दलित स्त्रियां भी इस परिवर्तनवादी विचारधारा को समझ रही हैं। बाबा साहब की प्रेरणा से दलित पुरुषों के साथ संघर्ष के क्षेत्र में साथ–साथ चलने लगी हैं। दलित स्त्रियों पर होने वाले अत्याचारों का विरोध करने के लिए, दलित महिलाओं में जागृति लाने के लिए अनेक स्त्री मिशाल बनी हैं। 'स्त्री मुक्ति मोर्चा' के अन्तर्गत ये घटनाएं दलित नारी समाज को, उनकी शिक्षा, स्वतन्त्रता और समानता के अधिकार दिलाने का प्रयत्न कर रही हैं। आज की दलित नारी अपनी अस्मिता की पहचान के लिए संघर्ष कर रही है। सम्पूर्ण देश में दलित अस्मिता की पहचान के लिए परिवर्तनवादी विचारधारा का प्रवाह चल रहा है।

इस परिवर्तनवादी विचारधारा से प्रभावित दलितों के जीवन में परिवर्तन आया है। ''पीढ़ी–दर पीढ़ी भोगी हुई पीड़ा को वे अपनी बुलन्द आवाज में सुनाने लगे हैं।''[5] शैक्षणिक, आर्थिक क्षेत्र में दलित समाज आगे बढ़ा है, साथ ही साहित्यिक क्षेत्र में दलित साहित्य के नाम से एक नया आयाम शुरू किया है। दलित साहित्यकार सम्पूर्ण दलित समाज की पीड़ा का

प्रस्तुतीकरण करता है। वे अपनी लेखनी से, अपने दलित समाज की आप–बीती घटनाओं, व्यथाकथाओं को सबके सामने ला रहे हैं।

लेखन के क्षेत्र में दलित स्त्रियां भी आगे बढ़, रही हैं, लेकिन पुरुष साहित्यकारों के अनुपात में उनकी संख्या बहुत कम है। स्त्रियां लिखती भी हैं तो संकोचवश अपने लिखे को दूसरों को बताती नहीं हैं। लेखिकाओं को घर में प्रोत्साहन नहीं मिलता है, जिससे वे पुरुष लेखक वर्ग के साथ सम्पर्क में नहीं आ पाती हैं। जिससे वे साहित्यिक गतिविधियों और समय के साथ साहित्यिक प्रवाह को नहीं समझ पाती हैं। ''पुरुष साहित्यकार स्त्रियों के साहित्य को अधिक महत्व नहीं देते। वे नारी द्वारा लिखित साहित्य को कम आंकते हैं और टीका टिप्पणी करके महिला लेखन की उपेक्षा करते हैं। यह उपेक्षा स्त्रियों में लेखन प्रवृति को उभरने नहीं देती, परिणामस्वरूप कई प्रतिभाएं निराश होकर लेखन से विमुख हो जाती हैं।''[6] महिलाओं को लेखन के बाद प्रकाशन की भी समस्या का सामना करना पड़ता है। इस तरह उनका साहित्य समाज तक नहीं पहुंच पाता है।

इन सब कारणों से साहित्य लेखन के क्षेत्र में स्त्री साहित्यकार अधिक संख्या में आगे नहीं आ पाती हैं। कुछ महिलाएं इन समस्याओं को पार करके लेखन के क्षेत्र में प्रस्थापित हुई हैं। स्त्री वर्ग के सम्बन्ध में पुरुष वर्ग की मानसिकता आज भी नहीं बदली है। पुरुष साहित्यकार जो परम्परावादी साहित्य लिख रहें हैं, वे अपने साहित्य में आज भी नारी का चित्रण मनुवादी मान्यताओं के आधार पर ही करते हैं। वही श्रृद्धा, शरम, दया, धरम के पुराने अलंकार इक्कीसवीं सदी में नारी में ढूढ़ते हैं। हमेशा से ही पुरुष नारी की उपेक्षा करता रहा है। उसे हर तरीके से ठगता रहा है। प्रभा खेतान का विचार है– ''यह भी सच है कि वर्गीय संघर्ष के नाम पर स्त्री के मुद्दे की उपेक्षा की गयी स्त्री भी जुलूस में शामिल हुई और ठगी गई।''[7] सवर्ण साहित्यकारों के साथ–साथ दलित साहित्यकार भी अपने साहित्य में नारी को परम्परावादी दृष्टि से ही देखते हैं। आज की स्त्री अपने इस प्रकार के चित्रण से सन्तुष्ट नहीं है। दलित स्त्री जो सदियों से पीड़ित रही है आज भी उसी पीड़ा को भोग रही है। ''वह सहने के समझौते को तोड़कर विद्रोह करना चाहती है, वह साहित्य में अपने क्रान्तिकारी रूप को देखना चाहती है।''[8]

अपनी परिर्वतनवादी विचारधारा का सन्देश सम्पूर्ण समाज को देना चाहती है। सदियों से पीड़ित नारी समाज को चैतन्यमय करना चाहती है। अपने ओजपूर्ण तेजस्वी व्यक्तित्व के रूप में यह साहित्य में प्रस्थापित होना चाहती है ताकि समाज की प्रत्येक नारी उसके इस रुप को समझ सके और प्रेरणा लेकर, अपने व्यक्तित्व का विकास करे।

आज की दलित स्त्री एक शक्ति है, प्रकाशपुंज है। प्रत्येक कार्य करने की क्षमता उसमें है वह अपने बहुमुखी सम्पूर्ण व्यक्तित्व को बताना चाहती है। आज दलित नारी स्त्री विरोधी पुरानी मान्यताओं का खण्डन करना चाहती है। स्त्री–पुरुष असमानता को हटाकर पुरुष के

समकक्ष समतावादी व्यवहार पाना चाहती है वह अपने समता, सम्मान और स्वतन्त्रता के अधिकार पाना चाहती है। जैसे दलित पुरुष अब किसी के गुलाम नहीं रह सकते वैसे ही अब दलित स्त्रियां भी किसी पुरुष की गुलाम नहीं– इस भावना को समाज में व्यावहारिक रुप में देखना चाहती है। साहित्य द्वारा 'स्त्री मुक्ति आन्दोलन' को सबल और सफल बनाना चाहती है। भंवरी देवी जैसी अनेक दलित महिलाओं के साथ जो अन्यायपूर्ण घटनाएं घटती हैं उन्हें साहित्य के माध्यम से समाज के सामने लाना है, ताकि बुद्धिवादी वर्ग इन बातों पर विचार करे और ऐसी पीड़ित दलित स्त्रियों को न्याय मिल सके। दलित मेहनती समाज की महिलाएं अत्याचार और बलात्कार की शिकार हैं– साहित्य के माध्यम से ऐसी घटनाएं और उनके निराकरण के तर्कपूर्ण तरीके को कहानी, लेख, उपन्यास आदि विधाओं के माध्यम से समाज तक पहुंचाना है।

नारी को उपभोग और मनोरंजन की वस्तु मानने की मानसिकता को तोड़ना है। अश्लील गीतों, अश्लील फिल्मों को नारी को नंगे रूप को प्रस्तुत करके, अपमानित करने वाले विज्ञापनों का विरोध करना है क्योंकि इनसे उपजी नारी के प्रति उपभोगवादी भावना, दलित स्त्री को ही अधिक पीड़ित करती है। स्त्री को समानता का अधिकार दिलाना है। गांधीजी स्त्री की क्षमताओं को मान्यता देते थे। उन्होंने कहा– ''स्त्री–पुरुष की साथिन है जिसकी बौद्विक क्षमताएं पुरुष की बौद्विक क्षमताओं से किसी तरह कम नहीं हैं। पुरुष की प्रवृतियों में उन प्रवृतियों के प्रत्येक अंग और उपांग में भाग लेने का उसे अधिकार है और आजादी तथा स्वाधीनता का उसे उतना ही अधिकार है जितना पुरुषों को है। जिस तरह पुरुष अपनी प्रवृति के क्षेत्र में सर्वोच्च स्थान का अधिकारी माना गया है, उसी तरह स्त्री भी अपनी प्रवृति के क्षेत्र में मानी जानी चाहिए।''[9] स्त्री को साहित्य के माध्यम से जागरूक और संघर्षशील बनाते हुए, यह विचार करना है कि दलित समाज की स्त्री ही अन्याय और अत्याचार की शिकार क्यों बनती है?

इन सब बातों के लिए यह जरूरी है कि लेखन के क्षेत्र में दलित स्त्रियां आगे आयें। वे अपनी समस्याएं साहित्य के माध्यम से समाज के सामने लायें। अपनी बात स्वयं कहें और स्वयं लिखें। पुरुष साहित्यकार महिलाओं की पीड़ाओं को व्यक्त करके हमें सामाजिक न्याय दिलायेंगे– यह सोचना गलत है। महिलाओं की समस्याओं की उलझन को महिला से अधिक कौन समझ सकता है। अतः दलित स्त्रियों को स्वयं लेखन प्रकाशन के क्षेत्र में बड़ी संख्या में आगे आकर साहित्य लेखन करना चाहिए। अपने उत्तरदायित्व को निभाते हुए आगे आने वाली नारी पीढ़ी के लिए प्रगतिशील मार्ग बनाना चाहिए।

(ब) नारी जीवन दोहरी जिम्मेदारी कब तक–

नारी के प्रति दोहरा दृष्टिकोण प्रत्येक काल में रहा है। वैदिक युग में नारी की स्थिति को मात्र कुछ स्त्रियों के उल्लेख के माध्यम से उत्तम बताया गया है, जो ब्राह्मण विद्वान ऋषि मुनियों के परिवार की पुत्री या पत्नी थी। लेकिन उस समय के सामान्य समाज में सामान्य स्त्रियों की क्या स्थिति थी, इसकी स्पष्ट जानकारी नहीं मिलती। स्मृतिकाल में नारी की स्थिति अत्यधिक दीन–हीन बना दी गई थी। रामायण और महाभारत काल में भी नारी का दोहरा रूप ही सामने आता है–कहीं वह सम्मानित और अधिकार सम्पन्न है, तो कहीं अपमानित अधिकार–हीन। एक समय था जब कहा जाता था–

नारी तुम केवल श्रृद्धा हो।
और फिर वह काल भी आया,
जब नारी की दशा पर यह भी कहा गया,
नारी जीवन, हाय तुम्हारी यही कहानी,
आंचल में है दूध, और आंखों में पानी।

आधुनिक युग में मुक्ति का आह्वान एक कर्त्तव्य युक्त फैशन बन गया है जब तब कह दिया जाता है–

युग–युग से अवगुंठित गृहिणी
सहती, पशु के बन्धन
खोलो हे मेखला युगों की
कटि प्रदेश से, तन से।

तन के बन्धन तो आज किसी को दिखाई नहीं देते, मन मस्तिष्क के बन्धनों के विषय में पूरी तरह कौन जानता है? आज की नारी की सही स्थिति क्या है, कोई भी ठीक–ठीक नहीं बता सकता।

समाज के निर्माण के लिए एक दूसरे के पूरक है– पुरुष और नारी। भारतीय संस्कृति में नारी को त्याग करूणा उत्सर्ग स्नेह ममता के रूप में जाना जाता रहा है। नारी के इन रूपों में ही उसका चिरन्तन महत्व अंतर्निहित है। उसकी सामाजिक स्थिति से सम्पूर्ण समाज प्रभावित होता है। नारी की उन्नति अवनति का इतिहास, समस्त समाज की उन्नति अवनति का इतिहास बन जाता है। किसी ने आज नारी को पुरुष की दासी कहा है और किसी ने कहा है आज की नारी पूरी तरह स्वतन्त्र हो गई है। इस प्रगतिवादी आधुनिक युग में नारी को हम मध्य स्थिति में ही अधिक पाते हैं। न तो वह दासी है और न ही पूरी तरह स्वतन्त्र। भारतीय स्त्री की महानता में महादेवी ने इस तथ्य को रेखांकित किया। ''स्त्री के विकास की चरम सीमा उसके मातृत्व में हो सकती है परन्तु यह कर्त्तव्य उसे अपनी मानसिक तथा शारिरिक शक्तियों को तोलकर

स्वेच्छा से स्वीकार करना चाहिए, परवश होकर नहीं''[10] महादेवी वर्मा ने समाज के दोहरे मापदण्ड में पड़ी हताश दुखी महिलाओं को सहारा दिया।

समाज में अक्सर आंखों के सामने जलती लपटों के बीच एक भागती हुई नारी दिखाई देती है, उसकी चीखती हुई आवाज सुनाई देती है। उस पर टिप्पणी, मीमांसा, आलोचना होती है। अधिकांश स्त्री–पुरुष यही कहते हैं– ''यह सब आजकल की लड़कियों का दोष है। घर में कोई जरा सी बात हुई नहीं की झट घर से चले जाने का, आत्महत्या कर लेने का डर बताती हैं, मानों घर जिन्दगी में इनका कोई हिस्सा ही नहीं है। यह सब आज के समय का प्रभाव है।''[11] कैसा समय और कैसा प्रभाव है आज भी अगर नारी दासी है तो फिर उसे मरने का भी क्या अधिकार? और अगर आज की नारी मुक्त है, स्वतन्त्र है, तो फिर उसे मरने की क्या जरूरत? क्यों वह अपने समझौते का अन्त अपनी मौत से ही करती है? और ऐसा कब तक होता रहेगा। वह हमेशा से ही दोहरी जिन्दगी जीती रही है। नारी स्वतन्त्र है मगर साथ ही बन्धनयुक्त भी है। इस दोहरी स्थिति का, दोहरी जिन्दगी का बोझ उठाने वाली नारी आज भ्रमित है। वह खुद अपनी सही स्थिति नहीं जानती, कि वह क्या है, न ही समाज ने उसे स्वयं को समझने की निश्चित दृष्टि दी है। समाज का दृष्टिकोण नारी के प्रति हमेशा से ही दोहरा रहा है।

भारतीय समाज में स्त्री के प्रति सोच का दायरा क्या है? ''अधिकतर भारतीय स्त्रियां बेटी, मां और पत्नी की भूमिका में निरन्तर हिंसा की शिकार होती है। स्त्री कभी कम दहेज के कारण और कभी अधिक दहेज पाने के लालच में पीटी जाती है। इन सबके बावजूद वे मुंह नहीं खोलती क्योंकि सहन करने की आदत इनको विरासत में मिली है।''[12] पुरुष सत्तात्मक समाज में नारी की स्थिति दयनीय बनी हुई है। स्वतन्त्रता के नाम पर नारी शिक्षित हुई है। आर्थिक क्षेत्र में स्वावलम्बी हुई है। दोनों की प्राप्ति से पुरुष को व विशेष रूप से सम्पूर्ण समाज को लाभान्वित किया है। डॉ. बाबा साहब ने भारतीय संविधान एवं हिन्दू कोड बिल के माध्यम से स्त्री पुरुष के समानाधिकारों को स्थापित करते हुए स्त्री के लिए युगों से वंचित उसके अधिकार दिलाये। ''मनुवाद का विरोध करते हुए बौद्ध धर्म में प्राप्त स्त्री स्वातन्य को अनुकरणीय बताया''[13] नारी घर की सीमा के बन्धन से बाहर तो निकली है पर उसका कारण घर और परिवार ही है। कहने को तो कहते हैं घर की स्वामिनी है लेकिन तर्क पूर्ण बात है कि घर परिवार की जिम्मेदारी उसी की है। सदियों की विचारधारा है कि ''पति–पत्नी मिल कर ही गृहस्थी की गाड़ी खींचते हैं। गृहस्थी का बोझ उठाते हैं।''[14] इस बात को वह समझती है, साथ ही अपनी जिम्मेदारी निभाती हैं। नजीर अहमत स्त्री की दोहरी जिम्मेदारी पर विचार प्रकट करते हैं– ''औरतों को खुदा ने जाहिल रहने के लिए नहीं बनाया। खुदा ने औरतों को इतनी सारी अक्ल दी है जरूर किसी बड़े काम के लिए दी है यानी इल्म हासिल करने के लिए।''[15]

महिला की दोहरी भूमिकाः घर के अन्दर और दूसरी घर के बाहर। पुरुष घर के बाहर की निभाता रहा है तो महिला दोनों निभाती है। यह पुरुष की तानाशाही है इस तानाशाही को स्वयं लेखिका अपनी आत्मकथा में व्यक्त कर चुकी है। नारी चाहे वह मजदूरी करती हो, किसी ऑफिस कॉलेज या सरकारी संस्था में कार्यरत हो। घर की व्यवस्था भोजन बच्चों की चिन्ता आदि की जिम्मेदारी उसी पर ही रहती है। पुरुषों को भी सोचना चाहिए कि अगर वह भी कमाती है तो घर परिवार की कुछ जिम्मेदारी तो उनकी भी बनती है। वह भी इंसान है उसको भी थोड़े आराम की जरूरत है। अगर आधा–आधा काम हो जाये तो उसको भी आसानी रहती है। गांधीजी ने स्त्रियों के आत्मिक जागरण पर बल दिया। स्त्री का वजूद नामंजूर करने वालों से उनकी चेतावनी यह रही है कि ''स्त्री पुरुष भेद मानने की वृति नहीं है, मैं तो मानता हूँ कि स्त्रियों के सामाजिक, कौटुम्बिक और राजनैतिक अधिकार और कर्त्तव्य वहीं है जो पुरुषों के हैं। दोनों की नैतिक योग्यता भी एक है।''[16] इस प्रकार से महिलाओं का मनोबल बढ़ता गया।

नारी घर और बाहर की दोहरी जिम्मेदारी उठाती है। अधिक काम, थकावट या अपनी किसी परेशानी के कारण चिढ़कर अगर वह पति से या परिवार के सदस्यों से कुछ कह दे तो जल्दी ही उसकी बात का बुरा मान लिया जाता है। साथ ही यह भी कहा जाता है कि उसे अपनी नौकरी और कमाई का घमण्ड है। वह अपने सामने किसी को कुछ समझती ही नहीं है। ऐसी स्थिति में स्त्री को ही खूब सोच–समझकर, समझदारी के साथ सबसे व्यवहार करना पड़ता है। इस समझौते के साथ उसे अनेक बार संताप भोगना पड़ता है। इन्हीं सब परिस्थितियों से पीड़ित और परेशान स्त्री सोचने लगती है कि यह दोहरी जिम्मेदारी वह क्यों उठाये? घर में उसे आर्थिक सहयोग की जरूरत है तो परिवार के लोगों को भी उसे सहयोग देना चाहिए ताकि वह बिना किसी मानसिक क्लेश के अपनी सभी जिम्मेदारियों को पूरा कर सके और घर परिवार को अपना पूरा सहयोग देती रहे। मेरा मानना है कि नारी को दोहरी जिन्दगी से बाहर निकालने में उसके परिवार के साथ उसके पति का भी हाथ होना चाहिए। जिससे नारी मानसिक और शारीरिक सन्ताप से मुक्त रह सके।

(स) नारी दलित क्यों और कब तक–

समाज की उन्नति या अवनति नारी की स्थिति पर निर्भर करती है। आज 21वीं सदी में भी नारी अत्याचार की घटनाओं में कमी नहीं आयी है। स्त्री के प्रति समाज का दृष्टिकोण अबला, निर्णय क्षमता से हीन, उपभोग्य और परावलंबी के रूप में रहा है। जिस भारतीय संस्कृति में कहा गया है कि– 'यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ति तत्र देवता'–उसी भारत मे नारी के

प्रति इतनी उदासीनता, यह शर्म की बात है। आज जिस घर में पुरुष का हुकुम चलता है, वहां नारी का शोषण अधिक होता है।

नारी का शोषण हर जगह होता है– चाहे उच्च वर्ग हो या निम्न वर्ग। मध्यम वर्ग में तो सबसे अधिक दीन–हीन दशा में नारी रहती है। वह दोहरी जिन्दगी जीती है और दोहरा सन्ताप उठाती है। अपनी स्थिति पर वह स्वयं न तो हंस सकती है और न ही रो सकती है। तर्क की सांत्वना में उलझी, वह स्वयं को सन्तोष देती है वह सुखी नहीं है, फिर भी पहले की अपेक्षा अधिक सुखी है वह मानसिक रूप में सन्तुष्ट नहीं होती है। फिर भी वह संतोष खोजने की कोशिश करती है। ऐसी स्थिति में पति या पुरुष द्वारा दी गई प्रताड़ना उसे भंयकर कष्ट देती है। ''पुरुष के मन में स्त्री को दबाकर नियन्त्रण में रखने की प्रवृति सदा मौजूद रही है। कहीं भी वह स्त्री के अधिकारों को स्वीकार नहीं कर पाता।''[17] पुरुष वर्चस्व को प्रमुखता देने से स्त्री का विकास नहीं हो पाता और स्त्री के विकास के बिना सामाजिक विकास असंभव बन जाता है।

कुछ लोग नारी स्वतन्त्रता की बात को स्वीकार जरूर करते हैं, लेकिन साथ ही उसकी सीमा भी निश्चित कर देते हैं कि इस घेरे के भीतर ही नारी स्वतन्त्र है। उसके बाहर उसे कोई स्वतन्त्रता नहीं दी जायेगी। जिन स्त्रियों के पास डिग्रियां है योग्यता है उनके पति इस डर से उनको बाहर नहीं निकलने देते कि अगर ये बाहर जायेगी तो बच्चे कौन संभालेगा? घर का चुल्हा चौका कौन देखेगा कई पुरुष केवल अपनी आदमनी से घर गृहस्थी के खर्च उठाकर अपना महत्व बनाए रखने का प्रयत्न करते हैं। साथ ही गर्व के साथ कहते हैं– ''जब तक मेरे बाजुओं में ताकत है, भले ही मैं चटनी रोटी खिलाऊं, मगर तुम्हें बाहर की नौकरी करने के लिए नहीं जाने दूंगा।''[18]

बात केवल घर में काम करने की ही नहीं है। न ही यह कि पत्नी बात–बात पर बराबरी का दावा पेश करती रहेगी। असल बात यह है कि कभी जानते हुए और कभी अनजाने में पत्नी की बातों से पति के अहं को धक्का लग जाता है। जिससे वह श्रेष्ठता के आसन पर खड़े होकर, अपने अधिकारों की बातें सोचने लगता है। स्त्री पति द्वारा दिये गये सुख सुविधा के साथ रहना चाहती है। वह इसे अपना कर्त्तव्य समझकर पति की बातों को और उसके प्रत्येक निर्णयों को स्वीकार करती है। पुरुष के लिए यह सोचना कितना कठिन है कि घर की आवश्यकता स्त्री और पुरुष दोनों के लिए समान है महादेवी वर्मा कहती हैं– ''वह पुरुष के समान ही अपने जीवन को व्यवस्थापित तथा कार्यक्षेत्र को निर्धारित कर सकती है तथा उसका मातृत्व या पत्नी व उसे अपना विशिष्ट मार्ग खोजने से नहीं रोक सकता और न उसके जीवन को घर की संकीर्ण सीमा तक ही रख सकता है।''[19]

स्त्री वस्तु मात्र नहीं है जैसे पुरुषसत्तात्मक समाज ने समझ रखा है। उसमें विवेक है, बुद्वि है, प्रतिभा है। स्त्री के गरिमामय व्यक्तित्व को शक्ति का नाम मिला है। उसके मनोबल और आत्मबल को कोई नजर अन्दाज नहीं कर पाएगा।

वह महिला जो नारी स्वतन्त्रता की बात को अपने आचरण, व्यवहार में दिखाती है– वह निंदा, उपेक्षा हंसी और तिरस्कार की पात्र बनती है। समाज मे नारी स्वतन्त्रता कि बातें चारों ओर होती है। लेकिन हर घर में नारी उन्हीं बन्धनों में जकड़ी रहती है जिन बन्धनों में सदियों से जकड़ी रही है आखिर कब तक वह यह सहन कर पायेगी। कब वह खुले आसमान में पंख फैलाकर उड़ पायेगी। समाज नारी स्वतन्त्रता की बातें केवल ख्याली पुलाब की तरह ही करते हैं।

नारी स्वतन्त्रता के बारे में महादेवी वर्मा लिखती हैं–''जब स्त्रियों को सुशिक्षित बनाने के लिए सुविधाएं देने की चर्चा चली तो बहुत से व्यक्ति अगुवा बनने को दौड़ रहे थे। यह कहना तो कठिन है इस प्रयत्न में कितना अंश अपनी ख्याति की इच्छा का था और कितना केवल स्त्रियों के प्रति सहानुभूति का।''[20] स्त्री सहानुभूति की अपेक्षा अपना हक मांगती है। महादेवी वर्मा ने अपने लेखन से स्त्री को अपने अधिकारों के प्रति सजग रहने की चेतावनी दी है।

सदियों से स्त्री को पुरुष के अधीन माना गया है। आज तक मानव समाज में यही व्यवस्था रही कि पति कमाए, खर्च की व्यवस्था करे, परिवार के पोषण की व्यवस्था करे और पत्नी घर के काम करे, बच्चों को संभाले, पूरे परिवार की सेवा करे और पति को खुश रखे, इस तरह पति का काम अधिकार भाव का रहा और पत्नी का काम नगण्य व दासत्वपूर्ण। सुबह से शाम तक घर में स्त्रियां कितना ही काम करे, उसकी कोई गिनती नहीं। क्या किया? घर में ही तो थी, घर के काम में कौन सी मेहनत लगती है। बस यही भावना रही नारी परिश्रम के प्रति। इसी सोच को प्रकट करती महादेवी वर्मा लिखती हैं–''वर्तमान युग के पुरुष ने स्त्री के वास्तविक रूप को न कभी देखा था, न वह उसकी कल्पना कर सका। उसके विचार में स्त्री के परिचय का आदि अन्त इससे अधिक और क्या हो सकता था कि वह किसी की पत्नी है। कहना न होगा कि इस धारणा ने ही इतने असन्तोष को जन्म देकर पाला और पालती जा रही है।''[21]

अधिकतर नारी स्वयं इस बात को स्वीकार नहीं करती कि वह दलित है वह मानती है कि पति या पुरुष का स्वामित्व ही समाज की परम्परा है। इसी में सुख और सुविधा है इसी को मानने में समझदारी है। ऐसा मानने वाली स्त्री यह मान ही नहीं सकती कि उसका जीवन किसी दासी, गुलाम या दलित से अधिक श्रेष्ठ नहीं है। ''पति और पत्नी के सम्बन्धों को जिसने भी यह उपमा दी है कि ये दोनों एक रथ के दो पहिए हैं, इन्हीं से गृहस्थी का रथ आगे बढ़ता है। उन्होंने कभी नहीं सोचा होगा कि जिस तरह पत्नी को निम्न माना जाता है, इस रुप में,

अगर रथ में एक पहिया दूसरे पहिए से छोटा लगाया जाए तो क्या होगा''[22] पुरुष और स्त्री के मायने समाज में अलग–अलग ही रहे हैं। स्त्री को आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक रूप में अलग ही रखा गया है। श्री अरविन्द जैन के अनुसार ''दुनिया की 98 प्रतिशत पूंजी पर पुरुषों का कब्जा है। पुरुषों के बराबर आर्थिक और राजनीतिक सत्ता पाने में औरतों की अभी हजार वर्ष और लगेंगे''[23]

यह पूर्णतः सत्य कहा गया है कि ''कोई गुलाम केवल तभी तक गुलाम रह सकता है जब तक कि उसे मालूम न हो कि वह दलित या गुलाम है। जिस दिन वह जान जाएगा कि वह गुलाम है– वह अपनी सम्पूर्ण ताकत से उन बांधे गए बन्धनों को तोड़ देगा, जो कि परम्परागत नियमों के अनुसार आदर्श के रूप में या नैतिक आधार पर लगाए गए हैं।''[24] वह स्वयं नहीं जानती कि वह दलित है या नहीं, तब तक वह इस बात को जान नहीं लेगी– यह सवाल बना ही रहेगा कि नारी दलित क्यों और कब तक?

नारी स्वतन्त्रता की बातें चारों ओर होती है। परन्तु परिणाम कुछ देखने को नहीं मिलते। नारी की स्वतन्त्रता और प्रगति बड़े शहरों की उच्च शिक्षा प्राप्त, नौकरी पेशा स्त्रियों में भी स्पष्ट रूप में दिखाई नहीं देती। उन्हें देखकर यह स्पष्ट ही नहीं हो पाया है कि वे स्वतन्त्र है या सदियों से परम्पराओं में जकड़ी हुई नारी का आधुनिकीकरण है। जिस दिन नारी अपनी स्थिति का स्वयं विश्लेषण करेगी, पूर्ण बुद्धि विवेक और तर्क के आधार पर अपने अधिकारों और कर्तव्यों को तोलेगी–उस दिन वह अपने आपको जान पाएगी तब वह अपनी सीमाएं खुद तय करेगी। अपने निर्णय स्वयं लेगी और स्वयं से सम्बधित सारे प्रश्नों को स्वयं हल करेगी इस तरह सदियों से बन्धनों में जकड़ी नारी अपनी वर्तमान पीढ़ी के लिए और आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रगति का मार्ग बनाएगी, उन्हें समता का सम्मान दिलाएगी।

(द) स्त्रियों के उत्थान में डॉ. अम्बेडकर का योगदान–

बीसवीं शताब्दीं के सुप्रसिद्व समाज सुधारकों, विचारकों और दार्शनिकों में डॉ. अम्बेडकर का नाम हमेशा स्मरण किया जाएगा। उनकी सबसे बड़ी देन यह है कि उन्होंने सामाजिक व्यवस्था को लोकतांत्रिक आधार पर पुनर्गठित किया था। उन्होंने हिन्दू समाज की समस्याओं को गहराई से अनुभव किया और शूद्रों को समानता का अधिकार दिलाने का पूरा प्रयत्न किया।

बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर ने हिन्दू समाज की आन्तरिक व्यवस्था का गहराई सक अध्ययन किया और दलित समाज को यह बताया कि किस तरह अज्ञान के अंधेरे में रखकर उनसे सवर्ण अपनी सेवा करवाते रहें। सवर्ण समाज ने शूद्रों को सभी प्रकार से अयोग्य व अधिकार हीन बना दिया।

डॉ. अम्बेडकर ने समाज की विसंगतियों और असमानता का विश्लेषण किया। उन्होंने अछूत समस्या के साथ मजदूर और नारी की स्थिति पर भी विचार किया है। उन्होंने 'द राईज एण्ड फाल ऑफ द हिन्दू वूमेन' शीर्षक का एक लेख लिखा। जिसमें लिखा था ''भगवान बुद्ध पर यह आरोप लगाया जाता है कि उनकी शिक्षा के कारण ही हिन्दू स्त्रियों की स्थिति का निरन्तर पतन हुआ है जबकि स्थिति यह है कि भगवान बुद्ध के पहले से ही हिन्दू स्त्री दासता की बेड़ियों में जकड़ी हुई थी।''[25]

हिन्दू धर्म में नारी को नरक का द्वार कहा गया है। मनु ने नारी को जीवनपर्यन्त अबला और दासी बनाए रखने के अनेक नियम और बन्धन बना दिए थे। धार्मिक अधिकार और ज्ञान से वंचित नारी के लिए मनु ने लिखा है कि ''पति की सेवा में ही गुरू का वास है और गृहस्थी का कार्य ही नित्य हवन है।''[26]

पति के मृत्यु के बाद विधवा का जीवन पूर्णतः नरक तुल्य था। उसे सम्पति का अधिकार नहीं था। धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से भी यह अशुभ और बहिष्कृत मानी जाती थी। नारी यह अन्याय अत्याचार सदियों से सहन करती आ रही है। अपने कर्तव्य वह हमेशा निभाती रही, मगर उसे स्वयं कोई अधिकार नहीं मिले। न तो समाज में समानता का अधिकार मिला न शिक्षा प्राप्त करने का और न ही धर्म के क्षेत्र में उसे कोई अधिकार मिला। डॉ. अम्बेडकर कहते हैं कि मनुस्मृति नारी की स्वतन्त्रता और समानता, सम्मान की गिरावट का कारण है। मनुस्मृति में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनके आधार पर नारी को पुरुषों पर आश्रित बताकर उसे हर आयु में पुरुष के संरक्षण में रहने का आदेश दिया है।

इस सब बातों को देखकर डॉ. अम्बेडकर ने सोचा कि नारी को सम्मानीय और स्वतन्त्र स्थान दिए बिना भारतीय समाज उठ नहीं सकता क्योंकि मनु के नियम सत्य से दूर है। जैसे–मनु के अनुसार पति अपनी पत्नी को बेच सकता है। मनु ने स्त्री को सम्पति के अधिकार से वंचित रखा है। मनु की दृष्टि में स्त्री के लिए कोई स्थान नहीं है। वह केवल दासी है, उसका जीवन पशु के समान है यह देखकर डॉ. अम्बेडकर इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ''भारतीय स्त्रियों की स्थिति के पतन का कारण मूलतः मनु है। मनु ने सामाजिक सिद्धान्तों को नियमबद्ध करते समय नारी के प्रति न्याय और अन्याय के विषय में बिल्कुल नहीं सोचा। मनु ने भारतीय समाज में नारी की गरिमा को गिराया है और शूद्रों के प्रति अन्याय और दमन के सिद्धान्तों को अपनाया है।''[27]

डॉ. अम्बेडकर दलितों, पीड़ितों के नेता थे। समाज में जहां भी बुराई नजर आती उसका विरोध करते। कानून मंत्री के पद पर रहते हुए उन्होंने भारतीय समाज में नारी की दयनीय और उपेक्षित स्थिति को सुधारने सम्बन्धी कानून बनाने का प्रयत्न किया। उन्होंने नारी को समाज का स्वस्थ और शक्तिशाली अंग बनाने का प्रयत्न किया। भारतीय स्त्रियों के उत्थान और विकास में

डॉ. अम्बेडकर का महान कार्य और योगदान 'हिन्दू कोड बिल' है। डॉ. अम्बेडकर ने भारत में नारी को पुनः सम्मान के साथ प्रस्थापित करने के लिए 'हिन्दू कोड बिल' प्रस्तुत किया था।

यह बिल हिन्दू नारी के पैरों की परम्परागत बेड़ियों को तोड़ने वाला था किन्तु स्वयं हिन्दू स्त्रियां अपने पुरुषवर्ग की बातों में आकर, अपने अधिकारों के लिए बने विधेयक को नहीं समझ पाई। अपनी मनुवादी मानसिकता के कारण वे अपना हित नहीं समझ पाई। उन्होंने 'हिन्दू कोड बिल' का विरोध किया और बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर को अपना शत्रु माना। वे अपनी दासतापूर्ण स्थिति में इतनी अभ्यस्त थी कि स्वतन्त्रता और समता की स्थिति की कल्पना भी नहीं कर सकती थी।

डॉ. अम्बेडकर दलितों और नारी का आत्मोद्वार चाहते थे। वे उनमें तेजस्विता, स्वाभिमान, स्वालम्बन और आत्मसम्मान जागृत करना चाहते थे। डॉ. अम्बेडकर ने अपने भाषणों में हमेशा नारी को स्वतन्त्रता, समानता और सम्मान का अधिकारी बनाया। दलित स्त्रियों के लिए पहला भाषण उन्होंने 27 दिसम्बर 1927 को महाड़ में दिया था। उन्होंने अपने भाषण में दलित स्त्रियों को संदेश दिया था कि तुम अपने आपको दीन–हीन मत समझो आत्मगौरव का जागरण तुम्हारे लिए पुरुषों से अधिक आवश्यक है वे नारी समाज से कहते हैं कि ''तुम स्वयं हीनता की भावना से मुक्त होओ और अपने स्वतन्त्रता, समता, मानवतावादी अधिकारों को स्वयं स्वतन्त्रता, समता, मानवतावादी अधिकारों को स्वयं प्राप्त करो।''[28]

उन्होंने स्त्रियों को कर्मकाण्ड और अंधश्रृद्धा से दूर रहने की प्रेरणा दी। सामाजिक बुराइयों को दूर करने और शिक्षा का दायित्व समझने वाली नारी की योग्यता को उन्होंने समझ लिया था। यह पुरुषों के साथ, उनके प्रति समानता का भाव था। डॉ. अम्बेडकर ने स्त्रियों को अपने अधिकारों के लिए संघर्ष की शिक्षा दी। नारी पर डॉ. अम्बेडकर के आन्दोलन का गहरा प्रभाव पड़ा और वे सक्रिय होकर भाग लेने लगी। इसी संदर्भ में डॉ. जगदीश गुप्त लिखते हैं कि'' स्त्रियों के अधिकारों की लड़ाई में वे योद्वा की भांति सक्रिय हुई''[29]

डॉ. अम्बेडकर ने 18 जुलाई 1942 को नागपुर में पिछड़े वर्ग की महिलाओं को सम्बोधित करते हुए इन्हीं बातों को दोहराया। उन्होंने कहा कि ''किसी भी वर्ग की उन्नति का अनुमान उस वर्ग की महिलाओं की उन्नति को देखकर ही हो सकता हैं। शिक्षा, स्वच्छता, महत्वकांक्षा, आत्मविश्वास, सीमित परिवार, पुरुषों के साथ कंधें से कंधा मिलाकर चलना और बराबरी का अधिकार मांगना– नारी के विशेष कर्तव्य हैं।''[30] डॉ. अम्बेडकर ने स्त्रियों को कानून के रूप में सम्पति और तलाक के अधिकार दिलाए, साथ ही 'प्रसवकाल' में छुट्टी के विशेष अधिकार दिलाये।

डॉ. अम्बेडकर ने स्त्रियों को अपने अधिकारों के लिए संघर्ष की शिक्षा दी। नारी पर डॉ. अम्बेडकर के अन्दोलन का गहरा प्रभाव पड़ा और वे भाषण और विचारों से प्रभावित होकर

दलित बहुजन और सवर्ण महिलाएं जन आन्दोलनों में स्वयं आगे आने लगी। अम्बेडकर ने अपने 'हिन्दू कोड बिल' के माध्यम से अबला नारी को सबल, शक्तिशाली बना दिया। नारी दासत्व और अन्याय से परिपूर्ण मनुस्मृति की होली जलाकर डॉ. अम्बेडकर ने नारी को अंधकार से प्रकाश में लाने का पराक्रम किया है।

फिर भी यह कहना अनुचित होगा कि आज सम्पूर्ण दलित समाज की स्त्रियां प्रगतिशील हो गई हैं। स्वयं लेखिका की आत्मकथा से यह आभास होता है कि पति उसे शिक्षित होते तो देखना चाहता है पर अपने बराबर नहीं मानता है। दलितों में भी दलित कुछ ऐसे समाज है जिन तक बाबा साहब की शिक्षा का प्रभाव नहीं पहुंचा है। ऐसे दलित समाज और उनकी उपजातियों तक डॉ. अम्बेडकर के परिवर्तनवादी विचार पहुंचाना है। सम्पूर्ण दलित समाज को, संघर्ष के क्षेत्र में आगे लाना है। तभी डॉ. अम्बेडकर के महान अभियान को पूर्णता प्राप्त हो सकेगी।

निष्कर्ष–

भारतीय समाज व्यवस्था में शोषित पीड़ित–दलित और स्त्रियां हाशिए पर हैं। उनका साहित्य और उनका विमर्श भी हाशिए पर है। 'हाशिए का विमर्श' के माध्यम से हाशिए के जाति समुदायों की जागृति और जीवन–स्तर में परिवर्तन का संदेश देने का प्रयास किया है। इस समाज व्यवस्था में व्याप्त जातिभेद और लिंगभेद की विषमता से पीड़ित हाशिए के लोगों में व्याप्त जाति उत्पीड़न, विषमता का अपमान, छुआछूत धार्मिक अन्धविश्वास और सामाजिक बहिष्कार की प्रताड़ना की ओर संकेत किया है। 'दलित स्त्री और साहित्य लेखन' में लेखिका ने दलित समाज की स्त्री के साथ हो रहे अन्याय और अत्याचार को दर्शाया है साथ ही दर्शाया है कि जितना साहित्य में पुरुषों को दबदबा है उससे बहुत कम महिलाओं का, एक महिला ही महिला की बेबसी को समझ सकती है एक पुरुष नहीं। साहित्य लेखन में महिलाओं को भी आगे आना चाहिए। 'नारी के दोहरे जिम्मेदारी कब तक' इसमें लेखिका ने नारी के दोहरे जीवन का विवरण किया है। एक नारी घर और बाहर की जिम्मेदारी कब तक उठाती रहेगी। पुरुषों को भी अपनी जिम्मेदारी समझनी चाहिए। 'नारी दलित क्यों और कब तक' लेख में लेखिका ने नारी के शोषण को दर्शाया है। नारी नौकरीपेशा है तब भी उसका शोषण हो रहा है और वह उस शोषण को नजर अंदाज कर रही है। नारी को अपने हक के लिए लड़ना चाहिए। उसको सबल बनना चाहिए। टाकभौरे जी का पति के सामने चुप रहना, पिटना, दलित महिला का दब्बूपन है लेकिन अम्बेडकर का प्रभाव ही है कि वह शिक्षित होकर न केवल नौकरी करती है अपितु लेखन के द्वारा महिला के दबे सुर को बुलन्द करती हुई पति का सामना करती है,

पुरुषसत्ता को चुनौती देती है। इसी संदर्भ में मृदुला गर्ग कहती हैं–''पुरुष को दांत से खिंचकर खून पीना फेनिजम नहीं है। मेरी ऐसी सोच कतई नहीं। खुद स्त्री सोचने और कार्य करने में सक्षम है। यही उसको साबित करना चाहिए।''[31] नारी को अपने बराबरी के हक के लिए लड़ना होगा। 'स्त्रियों के उत्थान में डॉ. अम्बेडकर का योगदान' में लेखिका ने डॉ. अम्बेडकर के योगदान को दर्शाया है। अम्बेडकर ने दलित नारी हो चाहे सवर्ण नारी सब के उत्थान के लिए प्रयास किया है। नारी खुद भी साहस करे तभी समाज के सामने अपने हक के लिए लड़ सकती है। स्त्री–पुरुष की समानता के बारे में समाज को जागरूक होना होगा। ''वस्तु स्थिति यह है कि पुरुष स्त्री के कुछ विशेष प्रकार के आदर्शों, मुल्यों नैतिकताओं गुणों की अपेक्षाएं रखता है जो की पैतृक है। जिनका लक्ष्य है स्त्री को नियन्त्रित करना एवं यथास्थिति में जीने का एहसास कराना। पुरुषों ने हमेशा ही ऐसी पितृक नैतिकताएं उस पर थोपी है।''[32] समाज में अपनी जगह बनाने के लिए नारी को स्वयं लड़ना होगा। अपनी अस्मिता की रक्षा करनी होगी।

✦✦✦

सन्दर्भ सूची–

1. हाशिए का विमर्श पृ.सं. 93
2. श्री अरविन्द– द रेनेसा ऑफ इण्डिया
3. हिरण्यमय बनर्जी– ईश्वरचन्द्र विद्यासागर– साहित्य अकादमी 2004 पृ.सं. 32
4. वीर भारत तलवार (परिशिष्ट) स्त्री–पुरुष तुलना पृ.सं. 52
5. हाशिए का विमर्श पृ.सं. 96
6. वही से पृ.सं. 97
7. प्रभा खेतान स्त्री विमर्श के अन्तर्विरोध, स्त्री अस्मिता, साहित्य और विचारधारा, सं. जगदीश चतुर्वेदी, सुधासिंह, आनन्द प्रकाशन, कोलकाता 2004 पृ.सं. 360
8. हाशिए का विमर्श पृ.सं. 99
9. मेरे सपनों का भारत– 1995 पृ.सं. 238
10. महादेवी वर्मा श्रृखला की कड़ियां तृतीय संस्करण–2001 लोकभारती पृ.सं. 79
11. हाशिए का विमर्श पृ.सं. 102
12. स्त्री विमर्श– भारतीय परिप्रेक्ष्य– पृ.सं. 150
13. भारतीय नारीवाद की अवधारणा– स्त्री विमर्श– डॉ. के एम मालती पृ.सं. 157
14. हाशिए का विमर्श पृ.सं. 102
15. सरस्वती रचनावली डी.सी. बुक्स–2001 पृ.सं. 21
16. विनोबा– स्त्री शक्ति जागरण– सम्पादन–शीला– परधाम प्रकाशन परनार– 1999 पृ.सं. 24
17. स्त्री विमर्श के दो विशिष्ट स्वर– स्त्री विमर्श– डॉ. के एम मालती– पृ.सं. 63
18. हाशिए का विमर्श– नारी दलित क्यों और कब तक पृ.सं. 108
19. महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़िया, तृतीय संस्करण, लोकभारती–2001 पृ.सं. 56
20. महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़िया, तृतीय संस्करण, लोकभारती–2001 पृ.सं. 61.62
21. महादेवी वर्मा, श्रृंखला की कड़िया, तृतीय संस्करण, लोकभारती–2001 पृ.सं. 62
22. हाशिए का विमर्श– पृ.सं. 111,
23. स्त्री विमर्श– भारतीय परिप्रेक्ष्य– पृ.सं. 63
24. हाशिए का विमर्श– पृ.सं. 112
25. हाशिए का विमर्श– पृ.सं. 121
26. हाशिए का विमर्श– पृ.सं. 121
27. द राइज एण्ड फाल ऑफ द हिन्दू वूमेन–डॉ. अम्बेडकर– पृ.सं. 26

28. हाशिए का विमर्श– पृ.सं. 126
29. डॉ. जगदीश गुप्त–महादेवी वर्मा पृ.सं. 86
30. हाशिए का विमर्श– पृ.सं. 127
31. स्त्री विमर्शः भारतीय परिप्रेक्ष्य– पृ.सं. 149
32. ओशो, ओशो टाइम्स जून–2004 पृ.सें. 30

सातवां अध्याय

सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा में दलित महिला चेतना

7. सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा में दलित महिला चेतना–

हिन्दी में दलित आत्मकथाएं दलित विमर्श और नारी विमर्श का दहकता दस्तावेज साबित हो रही है। दलित आत्मकथाओं में आत्मकथाकारों के व्यक्तिगत जीवन एवं सामाजिक जीवनानुभव बड़ी बेबाकी के साथ आये हैं। भारतीय समाज की वर्ण व्यवस्था तले हजारों वर्षों से उपेक्षित जीवन जी रहे समाज का चित्रण दलित आत्मकथाओं का विषय रहा है। मनुवादी व्यवस्था में जिनका जीवन नरक और दासता की जकड़न में रहा है। दलितों की सच्ची, जीती जागती तस्वीर दलित आत्मकथाओं में दिखायी देती है। मनुवादी समाज के शिकार दलितों ने उपेक्षा, छुआछूत, पीड़ा, विवशता, अन्याय, भूख लाचारी, अभाव, दरिद्रता, संत्रास, जातिभेद को भोगा है, ऐसे समाज में आज शिक्षा का आगमन होने से इनकी मनोव्यथा आत्मकथाओं में आने लगी। आलोच्य आत्मकथाकार अपने परिवार, समाज और दाम्पत्य जीवन को बेबाकी से उजागर करते हैं। बेबाकी, साहस और स्पष्टता विशेष उल्लेखनीय बात रही है। हिन्दी में दलित महिलाओं की दो आत्मकथाएं ही नजर आती हैं। एक कौसल्या बैसन्त्री का 'दोहरा अभिशाप' तो दूसरी सुशीला टाकभौरे की 'शिकंजे का दर्द'। दलित आत्मकथाओं में ओम प्रकाश वाल्मीकि का 'जूठन', सूरजपाल चौहान का 'तिरस्कृत', डॉ. धर्मवीर भारती की मेरी पत्नी और भेड़िया, डॉ. जाटव का 'मेरा सफर मेरी मंज़िल', श्यामलाल जैदिया का 'एक भंगी उपकुलपति की आत्मकथा', उमेश कुमार सिंह की 'दुख–सुख के सफर में' आदि प्रसिद्ध आत्मकथाओं में सुशीला टाकभौरे का 'शिकंजे का दर्द' अपना अलग महत्वपूर्ण स्थान रखती है। 'शिकंजे का दर्द' दलित महिला आत्मकथाकारों के लिए आगाज़ है।

पंकज चतुर्वेदी का कहना है कि ''सदियों से हमारी पुरुषवादी और सवर्ण– वर्चस्ववादी संस्कृति की सबसे ज्यादा प्रताड़ना स्त्रियाँ और दलित सहते आए हैं। आज यही लोग अपनी आत्मकथा के जरिए दारूण अनुभवों का विशेष संसार उद्‌घाटित करेंगे, तो हमारा भाव लोक भी बदलेगा और हमारा वस्तु जगत भी, सब कुछ वैसा ही चलता न रह पाएगा। आत्मकथा इसी दुहरी क्रान्ति की कामना से जन्म लेती है। वह साहित्यिक संस्कृति और सामाजिक संस्कृति को एक साथ बदलने का काम करती है।''[1]

(अ) 'शिंकजे का दर्द' की महिला चेतना–

दलित हमेशा से अपनी मुक्ति के लिए संघर्षरत रहे हैं। जहां स्त्री का सवाल है वो वैसे ही दलितों में भी दलित मानी जाती रही है 'शिंकजे का दर्द' आत्मकथा यही दर्शाती है। जिस प्रकार से शिंकजे में फंसा जानवर मुक्ति के लिए संघर्ष करता रहता है और मुक्ति नहीं मिलने पर छटपटाता रहता है। उसी छटपटाहट में उसका दर्द उतना ही बढ़ता जाता है। वह मजबूर और लाचार विवश होकर दर्द पीड़ा सहता रहता है। दलितों में भी दलित समझी जाने वाली स्त्री मनुवादी समाज व्यवस्था के शिंकजे से मुक्ति के लिए छटपटाती रही है। वही लाचार और विवश नारी का जीवन जीती दिखाई देती है। आत्मकथा 'शिंकजे का दर्द' में लेखिका ने स्वयं के साथ हुए शोषण, यातना, संघर्ष, पीड़ा, संत्रास का वर्णन किया है।

दलित नारी जन्म से लेकर मृत्यु तक जो पीड़ा, घुटन, अत्याचार, दुःख, दर्द, उपेक्षा को सहती रही है। अब इनके विरूद्ध विद्रोह का भाव प्रकट कर रही है 'शिंकजे का दर्द' आत्मकथा में यही विद्रोह निकलकर सामने आता है। आत्मकथा की भूमिका 'मनोगत' में कहती हैं–''बचपन से युवावस्था तक मेरे जीवन के दिन अनेक प्रकार के शिंकजों से जकड़े हुए थे इस जकड़न के कारण मेरे जीवन और व्यक्तित्व का विकास अवरूद्ध होता रहा।''[2] वे आगे अपनी विचारधारा को व्यक्त करते हुए कहती हैं कि कभी ऐसा लगता है मैनें अपने जीवन को पूर्ण रूप से नहीं जिया। इस स्थिति में सुशीला जी को शिंकजे का दर्द भोगना पड़ा है। दलित स्त्री आत्मकथाओं में सामाजिक परिवेश समस्या और संघर्ष मुख्य रूप से उजागर हुआ है।

दलित स्त्री को जीवन में शिक्षित होने के लिए संघर्ष, पारिवारिक व दाम्पत्य संबंध का दंश जातिगत पहचान की वजह से प्रगति के हर कदम पर आने वाली कठिनाइयों से जूझना, आर्थिक सबलता के लिए कठिन प्रयास, स्त्री होने के कारण घर और बाहर होने वाली अवहेलना अपमान और शोषण की तिहरी मार को झेलना पड़ता रहा है। लेखिका ने अपनी आत्मकथा में इन प्रसगों, घटनाओं संघर्षों का चित्रण प्रमुखता से किया है।

भारत में हर गांव में दलित बस्ती एक तरफ दक्षिण–पश्चिम छोर पर होती हैं। सुशीला जी की बस्ती भी गांव के अंतिम छोर पर थी। इनका जन्म दलितों में भी दलित समझे जाने वाले परिवार में हुआ। समाज में ऊंच–नीच छुआछूत की भावना सर्वत्र विद्यमान थी। सुशीला जी जहां रहती थी। वहां सवर्ण लोगों के घर गांव के ऊपर की ओर थे दूसरी ओर पिछड़े दलित मजदूरों की बस्ती थी। अछूत जाति के लोगों को समाज व्यवस्था के नियम के अनुसार गांव के बाहर बसाये जाते थे। लेखिका का परिवार भी शोषण का शिकार हुआ था। ''रेलवे स्टेशन के दूसरी तरफ 'फेल' में मजदूर वर्ग के पिछड़े लोगों की बस्तियों थी। हम लोग पिछड़ों से भी पिछड़े थे। ऊंचनीच की भावना सब तरफ व्याप्त थी। अछूत भंगी हरिजनों के घर गांव के बाहर

रहते थे, हिन्दू महाजनों की बस्ती से दूर कच्चे खपरैल घर।''[3] समाज के शिंकजे का यह पहला दर्द था। जिसमें दलित समाज छटपटा रहा था।

स्त्रियों को पढ़ाने लिखाने का रिवाज उस समय नहीं था। पढ़ने लिखने का रिवाज केवल लड़कों को वह भी दलितेचर जातियों को ही था। दलितों में लड़का हो या लड़की पढ़ाने की रूचि नहीं थी। लड़कियों को तो केवल पालपोसकर उनका विवाह करने तथा ससुराल में पति की सेवा और जाति का काम करना ही कर्तव्य समझा जाता था। गांव के बड़े बुजुर्ग अक्सर यही कहते थे। ''लड़किएं तो चिरैया हैं, समय आती ही उड़कर परदेश चली जायेंगी।''[4] सामाजिक मानसिकता की यह भावना एक शिंकजा बनकर लड़कियों की प्रगति में अवरोधक रही है। लोगों की सोच रहती थी ''लड़की जात पढ़कर क्या करेगी?''[5] लेकिन सुशीला जी का परिवार इन सब से हटकर था। नानी चाहकर भी अपनी बेटी को स्कूल नहीं भेज पाई थी। शिक्षा के प्रति ललक उत्सुकता और आदर होने के बाद भी वे शिक्षा से वंचित रहे ''मनुस्मृति में अछूतों को शिक्षा से दूर रखने के निर्देश दिये गए हैं। समाज में इन निर्देशों का पालन श्रद्धा और निष्ठा के साथ किया जाता था।''[6]

उनकी शिक्षा के लिए मां ने विशेष सहयोग दिया वो चाहती थी की मैं विशेष योग्यता प्राप्त करूं ताकि अच्छी नौकरी कर सकूं । 1960 में मां का इस तरह सोचना उनका प्रगति–परिवर्तनवादी दृष्टिकोण था। लेकिन समाज पिछड़ी सोच का शिकार था। कक्षा में ब्राह्मण बनियों के बच्चों को सबसे आगे बैठाया जाता था। पिछड़ी जाति के बच्चों को पीछे बैठाया जाता। सुशीला जी के माता–पिता तथा नानी ने अच्छी तरह समझ लिया था कि जातिभेद छुआछूत मनुवादी शोषण से मुक्ति पाना है। तो सब कुछ भूलकर अपमान अपेक्षा, प्रताड़ना, उलाहना सहते हुए शिक्षा ग्रहण करनी ही होगी। सुशीला जी शिंकजे के इस दर्द को व्यक्त करते हुए करती है–

''सच यह था कब आया योवन जान न पाया मन। शिंकजे में जकड़ा जीवन कभी मुक्त भाव का अनुभव ही नहीं कर पाया। जिन्दगी एक निश्चित की गई लीक पर चलती रही। वह उमंग कभी मिली ही नहीं जो योवन का अहसास कराती। उम्र के साथ कटु अनुभूतियों के दंश महसूस होते रहे। पीड़ा से छटपटाता मन मुक्ति का ध्येय लेकर आगे बढ़ता रहा। तब मुक्ति का मार्ग मैंने शिक्षा प्राप्ति को ही माना था।''[7]

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में दलित को शिक्षा पाने के सारे रास्ते बन्द रहे हैं। अंग्रेजों के बाद खुले अवष्य लेकिन अपमान, मजाक, प्रताड़ना के साथ। समाज के सवर्ण लोग दलित और अछूत लोगों की शिक्षा के खिलाफ ही रहे हैं। वो नहीं चाहते समाज का हर वर्ग शिक्षा पाकर आगे बढ़ सके। शिक्षा ही एक मात्र ऐसा साधन है जिसे पाकर दलित आगे बढ़ सकते हैं। सुशीला जी और उनके घरवालों ने इस बात को अच्छे से समझ लिया था। शिक्षा के बिना

कुछ भी संभव नहीं है। समाज के तिरस्कार, अपमान के दंश सहते हुए सुशीला जी ने शिक्षा ग्रहण करती गई। हर जगह उनको उपेक्षा का शिकार होना पड़ा। स्कूल में सवर्ण बच्चे उनका मजाक बनाते वहीं शिक्षक भी उनके साथ दुर्व्यवहार करते। सवर्ण बच्चे स्कूल से आते ही नहाते दूसरे कपड़े पहनते। उनके घरवाले हमारे ही सामने नाक–भौ सिकोड़कर नफरत से कहते थे– ''न जाने कौन–कौन सी जात के बच्चों के साथ बैठकर पढ़कर आते है। सबकी छुआछूत घर में लाते हैं।''[8] दलितों के साथ बैठकर पढ़ने में सवर्ण अपना अपमान समझते थे।

कक्षा में शिक्षक भी सवर्ण बच्चों पर ही ध्यान देते थे। दलितों को हमेशा ही हेय दृष्टि से देखते थे। आगे की पंक्ति में सवर्ण महाजनों के बच्चे बैठते थे। पीछे की पंक्ति में दलित बच्चे बैठते थे। एक पढ़े लिखे शिक्षक का भी इस तरह सोचना मनुवादी सोच को दर्शाती है। एक दिन लेखिका कक्षा में आगे बैठ जाती है। तो गुरूजी उसको डांटकर कहते हैं– ''सुशीला तुम आगे क्यों बैठी है। तुम्हें सबसे पीछे बैठना चाहिए।''[9] शिक्षकों की उपेक्षा और अपमान के कारण दलित बच्चे शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। लेकिन लेखिका का इन सबके बावजूद शिक्षा ग्रहण करना महिला चेतना का दर्शाती है।

मनुवादी हिन्दूधर्म से सुशीला जी ने अपने जीवन में बहुत दुःख सहा, मनु धर्म ने दलित समाज को कभी अपना नहीं समझा। दलित समाज समझ नहीं पाया की वे हिन्दू हैं या उनका कोई धर्म भी है। ऐसे ही दर्द को प्रकट करते हुए वे कहती हैं ''हमारे लोगों का अपना कोई धर्म नहीं था। हिन्दू मुस्लिम, सिख सभी धर्म के देवी देवता पीर फकीर, गुरू और महापुरुषों को मानते थे असल में यह मात्र अनुकरण था। हिन्दू कभी किसी दूसरे धर्म की बातों को नहीं मानते। हम मानते थे मतलब हम हिन्दू नहीं थे। हमें अपना धर्म पता ही नहीं था।''[10] दलित मनुवादियों के नजरों में इन्सान कभी था ही नहीं। अछूत होने के कारण उन्हें हर जगह अपमानित किया जाता था। सुशीला जी कहती है। नानी गंदगी साफ करती है इसीलिए हमें सम्मान नहीं मिलता, अपमानित होना पड़ता है। इस कारण कभी शर्म करती रही,कभी–नानी पर गुस्सा करती थी। नानी मौसम की परवाह किए बिना काम करती थी। बरसात में गंदा उठाना, टोकरे में भरना, सिर पर रखना, सिर पर रखकर, कचरा दूर फेंकना आदि अमानवीय कृत्य से दुःखी होकर कहती थी– ''यह सब तेरी ही करतूत है भगवान। जात पांत क्यों बनाई? हम ही क्यों करें ये नरक सफाई का काम।''[11]

अछूत होने के कारण स्कूल में कठोर दण्ड भोगना पड़ता था। दलित बच्चों को स्कूल में पानी ऊपर से पिलाया जाता था। एक ही जोड़ी कपड़े होने के कारण दो दो दिन स्कूल नहीं जा पाती थी। सब अभाव और दुख से बचने का उनका एक मात्र साधन शिक्षा ही था। दलितों के साथ अछूत होने के कारण उनके साथ जानवर से भी गये, गुजरे सा व्यवहार किया जाता

है। लेखिका की नानी को गांव का ब्राह्मण पंडित दीन–हीन जीवन जीने के कहता है और उसे ही आदर्श बताता है।

सवर्ण और बहुजन जाति भेद की बातों रीति परम्पराओं को गलत मानने के लिए तैयार नहीं होते। दलित लोग भी इन्हें सहज सामान्य बात मानते हुए इनका पालन करते थे। लेखिका इस बात से सहमत थी पर वे दलित समस्या का हल शिक्षा में ही देखती हैं। शिक्षा समाज की हर बुराई का हल है।

अनामिका के अनुसार– ''स्त्री मुक्ति एक साझा चुल्हा है। मुझे हमेशा लगता है कि जैसे एक स्त्री को शिक्षित करना पूरे परिवार को शिक्षित करना है, स्त्री मुक्ति में सबकी मुक्ति तैयार करनी है। एक ऐसी फिजां जहां सच कहते है या सुनते किसी की आंख ना झुके। कोई किसी का हक छीने नहीं सबकी दुनिया सबकी धरती हरी भरी उत्फुल्ल हो और झूठ किसी जीवन का चन्द्र खिलौना नहीं बने। बालपन से तो निकलना ही है। व्यस्क होना है इस पूरी मनुष्यता को उस सम्यक दृष्टि के साथ जो जिसकी लाठी उसकी भैंस के अराजकतावादी दर्शन में बिल्कुल विश्वास नहीं करती है और इतिहास की भूलों से सीख लेकर हर तरह की आंतक छीनझपट का अहिंसक किन्तु प्रतिरोध करती है।''[12]

'शिंकजे के दर्द' हिन्दू समाज की विड़म्बनाओं को उजागर करती है। ''हिन्दू धर्म में नदी पहाड़ पेड़ पौधे जानवर सभी को महत्त्व और सम्मान दिया जाता है। लेकिन अछूत मनुष्यों को कोई स्थान नहीं कोई सम्मान नहीं। हिन्दू धर्म के आडम्बर में मिट्टी से बने पुतलों को भी भगवान की तरह पूजा जाता है। मगर इन्सानों को इन्सान नहीं मानते। यह हिन्दू धर्म की विडम्बना है हिन्दू संस्कृति का कंलक है। लोग इसे ही धर्म कहते हैं।''[13] वर्षों से मनुवादी लोगों द्वारा दलितों पर किये जाने वाले अन्याय अत्याचार, सम्पूर्ण शोषण, सौतेले व्यवहार के कारण उसके भीतर की क्रोधाग्नि आज प्रचंड रूप ले रही है। यह स्वातंत्र्य समता,बन्धुत्व आदि को मांगने में विश्वास नहीं रखता अपितु छीनकर लेने को ही उचित ठहराया है। स्कूलों में अछूत लड़कों की जमकर पिटाई करते थे। सुशीला जी को भी अछूत होने के कारण डरना पड़ता था। अछूत दलित नारी पर अत्याचार और बलात्कार सामान्य बात होने के कारण घर से कहीं बाहर नहीं भेजते थे। हर समय उनकी सुरक्षा का खयाल रखने से घर में ही रहना पड़ता था। मैट्रिक तक आते–जाते सुशीला जी का स्वभाव अन्तर्मुखी, चिन्तनशील हो गया था। इनका संस्कार बन गया था कि लड़की होने के कारण ज्यादा बात नहीं करना अकेले कहीं नहीं जाना, तर्क वितर्क नहीं करना गरीबी में जीने की आदत होना। कॉलेज में लड़कियों पर विशेष पाबंदी थी। 'प्रेमलता के प्रेम प्रकरण' से डरी मां जब पूछती है तो उत्तर था कि ''मैं ऐसा क्यों करूंगी? मैं तो बूढ़ी ही जनमी हूँ।''[14] अभावग्रत जीवन में हर तरीके की समस्या का सामना करना पड़ता था। तांगे में सवर्ण लोग रहते तो अछूतों को नहीं बिठाते थे।

इसलिए ज्यादातर पैदल ही कॉलेज जाना पड़ता था। अक्सर और सुविधाओं का न मिलना भी दुखद रहा। असुविधा और समाज के नकारात्मक रवैये के बावजूद आगे बढ़ना नारी चेतना का प्रतीक है। लेखिका की बस्ती के लोग अक्सर यही कहते थे–''कब तक लड़की को पढ़ाओगे? क्या ऐसे ही बूढ़ी कर लोगे, शादी ब्याह की फिकर करो। शादी हो जाती तो अब तक लड़की एक–दो बच्चों की मां बन गई होती।''[15]

ऐसी शिक्षा विरोधी वातावरण को नकारते हुए मां कहती थी– ''शादी भी कर देंगे। अच्छा पढ़ा लिखा अच्छी नौकरी वाला लड़का मिलेगा तभी शादी करेंगे। तब तक पढ़ती है तो पढ़ने दो, पढ़ाई करके आगे चलकर वह भी अच्छी नौकरी करेगी।''[16]

लेखिका की मां भी प्रगतिवादी और परिवर्तनवादी रही है। गांव के हिन्दू महाजन दलितों को घृणा की दृष्टि से देखते थे दलित लोगों को अछूत और घृणित माना जाता था कोढ़ जैसी बीमारी से पीड़ित लोग भी दलितों को अछूत मानकर छुआछूत करते। चोर और भिखारी भी जैसे दलितों से बड़े और उच्च थे। ऐसा मानने वालों से लेखिका घृणा करती थी। अछूतों को सबसे निम्न मानकर उन्हें दूर से ही डांटा फटकारा जाता। बचपन में ऐसी स्थितियों का सामना होता रहा। सामाजिक व्यवहार की प्रताड़ना अधिक दीन हीन बना देती थी। सामाजिक अपमान और आर्थिक अभावों के सामने सिर झुकाकर दलित डरे सहमें रहते।

मैं लड़की हूँ इस कारण मेरे माता–पिता मेरी सुरक्षा के लिए अधिक चिन्तित रहते थे। समाज में स्त्री के प्रति पुरुषों की मानसिकता अधिकतर कामुक रही है। गरीब की बेटी की इज्जत को लोग सस्ती मानते हैं। गरीब अछूत की बेटी की इज्जत सरेआम कभी भी लूटी जा सकती है। अनुभवी और दूरदर्शी माता–पिता यह जानते थे। अक्सर गांवों में ऐसी घटनाएं होती रहती इसलिए इन बातों से वे डरते थे। नानी और मां ने खुद के लिए भी और अपनी बेटियों के लिए भी हमेशा सुरक्षा का घेरा बनाये रखा था। उसी सुरक्षा के घेरे के शिंकजे में मेरा बचपन, किशोर अवस्था बीती और युवावस्था का आरम्भ भी इसी शिंकजे के बीच हुआ। 1970 में भोपाल के एक समाजसेवी सवर्ण नेता द्वारा 'अछूत कन्या से विवाह' के विज्ञापन की बात सुनकर लेखिका के मन में उथल पुथल मची थी– ''क्या सवर्ण समाज के लोग हमारी जाति की लड़की के साथ विवाह कर सकते हैं? उच्च कहे जाने वाले वे अपने समाज में हमें साथ कैसे रख सकेंगे? क्या यह सचमुच उनके हृदय की विशालता है या मात्र दिखावे की समाज सेवा का ढ़ोंग।''[17] उम्र के साथ कटु अनुभूतियों के दंश महसूस होते रहे। पीड़ा से छटपटाया मन मुक्ति का ध्येय लेकर आगे बढ़ता रहा तब मुक्ति का मार्ग शिक्षा प्राप्ति को ही माना।

लेखिका के जीवन में कॉलेज का अनुभव भी कड़वा ही रहा है। घर से निकलते ही दलित होने का अहसास कराया जाता था। तांगे वाले सवर्ण सवारी के साथ नहीं बिठाते थे। अधिकतर कॉलेज पैदल ही जाना पड़ता था। कॉलेज में भी दुर्व्यहार किया जाता था। गरीब

अछूत होने के साथ लड़की होना दोहरे सन्ताप की बात है अछूत की बेटियां दुर्घटनाओं का सामना करती रही है। दलित स्त्रियां जीवन का सन्ताप सदियों से भोग रही है। सीमोन बोउआ का मानना है कि यथास्थिति तथा परम्परा प्रिय लोगों की इस धारणा में कोई वैज्ञानिक सार्थकता नहीं है कि औरत औरत ही रहेगी तथा उसे स्वतंत्र करने पर वह स्त्री सुलभ कोमलता को खोकर विकृत हो जायेगी। स्त्री की नियती पुरुषों ने तय की है। वह परिस्थितियों का उत्पाद बन गई है उसकी स्थिति में युगीन तथा क्रान्तिकारी बदलाव आवश्यक है ''अब आवश्यक है कि स्त्री को बाध्य किया जाए कि वह परजीवी न होकर अपने पैरों पर खड़ी हो विवाह दो व्यक्तियों के बीच एक स्वतन्त्र अनुबंध हो, जिसको स्वेच्छा से तोड़ा जा सके, समाज स्त्री को ऐच्छिक मातृत्व का हक दे ताकि गर्भ निरोध एवं गर्भपात को वैध बनाया जा सके तथा विवाहेत्तर संतान नाजायज न कहलाए, उनका समानाधिकार हो ताकि बच्चों का भार राज्य संभाले, बिना बच्चों को मां की कोख से छीने।''[18]

अनमेल दाम्पत्य जीवन के कई पहलू उजागर होते हैं। 6 मार्च 1974 में नागपुर के सुन्दरलाल टाकभौरे से विवाह हुआ। 20 साल का अन्तर होने से, यह एक अनमेल विवाह था। नया सपना लेकर ससुराल में आई सुशीला को एक ओर शिंकजे का दर्द भोगना पड़ा। पति का मारना पीटना, पुरुष सत्ता का प्रदर्शन था। कितनी भी पढ़ी लिखी स्त्री हो, पुरुषों के अत्याचार का शिकार होना पड़ता है क्योंकि लड़कियों को यही सिखाया जाता था पति परमेश्वर होता है। स्त्री की बुनियादी भूमिका में बदलाव न आने के बारे में महादेवी वर्मा ने कहा है ''मुझे बड़ा ही दुःख होता है जब मैं आजादी मिलने के तीन दशक सात वर्ष बिताए समाज को देखती हूँ। आज की नारी को कुछ भी नहीं मिला है। जो कुछ मिला हुआ था वह भी छिन गया।''[19]

आज की नारी व्यक्ति नहीं वस्तु मानी जाने लगी है। सब उसका उपयोग व उपभोग ही करना चाहते हैं। पुरुष को अपने जीवन यापन के लिए धन चाहिए और धन संपदा के साथ ही नारी चाहिए। नारी के साथ आए वैभव और धन संपदा और नारी दोनों को समान रूप से भोगता है। पुरुष बिना दहेज के नारी को स्वीकार ही नहीं करता। इसी संदर्भ में महादेवी वर्मा कहती हैं– ''मुझे सौ ऐसी लड़कियां मिल जाए जो बिना दहेज ससुराल जाना चाहती हैं तो मैं अपनी इस वृद्वावस्था में भी क्रान्ति ला सकती हूँ।''[20] लड़कियों को बचपन में सिखाये आदर्श और संस्कारों से बनी अपाहिज मानसिकता के कारण अपने जीवन के विषय में कुछ सोच ही नहीं पाती हैं समाज में अधिकतर लड़कियों की ऐसी ही स्थिति रहती है। सुशीला जी की भी यही स्थिति रही। जो माता–पिता ने तय कर दिया उसी को स्वीकार करना। शादी के बाद सुशीला जी के साथ भी वैसा ही व्यवहार होने लगा जैसा अन्य लड़कियों के साथ होता है। सास ननद के ताने सुनना, घर के सारे काम काज करना, मारना–पिटना, पैरों की जूती समझना नौकर सा बरताव करना आदि। अपने से उम्र में कई साल बड़े होने के बावजूद उन्होंने

उनसे आधुनिक विचारों के होने के कारण विवाह किया था। किन्तु जल्द ही उनका भ्रम टूटे हुए काल की तरह चकनाचूर हो गया था। वहां भी वही सदियों से चली आ रही मानसिकता थी। स्त्री जाति संस्कारगत रूप से पितृसत्तात्मक व्यवस्था की शिकार रही है। उसकी गुलामी की कड़िया असंख्य है। सीमोन ने कहा है। ''पत्नी से घृणा होने पर पति उससे दूर रहना चाहता है, पत्नी घृणा करती हुई भी पति के समीप ही रहना चाहती है। परेशानियों से मुक्त होने के बदले वह शहीद हो जाने में ज्यादा विश्वास करती है।''[21]

सुशीला जी ने सीमेन बोउआ की इस कथन को गलत साबित किया है। एक बार जब खर्चों के सन्दर्भ में उनके पति ने चप्पल निकाल कर उन्हें मारने की कोशिश की तब भीतर का आक्रोश विद्रोह प्रतिरोध, क्रान्ति के रूप में भड़क उठा, उन्होंने उसी चप्पल से अपने पति को शांत किया था। यहां आत्मकथा में चेतना दिखाई देती है।

समाज में स्त्रियों के प्रति यह मानसिकता सहज रूप में व्याप्त है। पितृसत्ता प्रधान भारतीय समाज में स्त्रियों को बराबरी का दर्जा नहीं दिया जाता। उनकी प्रताड़ना और शोषण को पारिवारिक और व्यक्तिगत माना गया है। स्त्रियां अपने शोषण उत्पीड़न की बातें बताए इसे भी समाज में पुरुषों ने अच्छा नहीं माना। पुरुष जिस हाल में रहे, अपनी पत्नी के सामने स्वयं को शक्ति और अधिकार सम्पन्न सर्वसर्वा मानते हैं। इस एकाधिकार के तहत ही वे पत्नी पर जुल्म करते हैं। सुशीला जी भी आर्थिक शोषण और घरेलू हिंसा की शिकार थी। वे आत्मकथा में एक स्थान पर इस दर्द को व्यक्त करती हैं। ''स्कूल से या बाहर से आने के बाद कभी–कभी टाकभौरे जी मेरे सामने पैर लम्बे कर देते। मेरा ध्यान न रहने पर हाथों से ईशारा करके जूते उतारने के लिए कहते। मैं चुपचाप उनके पैरों के पास बैठकर जूते के फीते खोलती जूते उतारती, मौजे उतारती। यह बात मुझे अजीब लगती थी।''[22] पति द्वारा स्त्री को गुलाम बनाकर रखने की मानसिकता रही है। जो दलितों में भी समान रूप से पाई जाती है।

पुरुष स्त्री को हमेशा भयभीत रखकर डरा धमकाकर अपने शासन सत्ता को कायम रखना, यह पुरुष मानसिकता है। पुरुष सत्ता बनी रहे इसलिए स्त्रियों को शुरू से कमजोर बनाकर रखा जाता है। समाज की परम्पराए स्त्री विरोधी हैं इन्हें तोड़कर ही स्त्री स्वतन्त्रता समता और सम्मान पायेगी, तब वह अबला नहीं रहेगी सबला बन जायेगी। चन्द्रा सदायत की प्रतिक्रिया यहां अवलोकनीय है–''भारतीय स्त्री के जीवन की समस्याओं उसकी और उससे मुक्ति की आकांक्षा के लिए वे जीवन भर जूझती रही। यह काम उन्होंने दो स्तरों पर किया लेखन के स्तर पर और जीवन व्यवहार के स्तर पर।''[23]

सुशीला जी अधिक दिनों तक गुलामी कहां सहने वाली थी वह बचपन से ही शोषण से मुक्ति के लिए निरन्तर संघर्ष कर रही थी। जब कॉलेज में अध्ययन कर रही थी तब कुछ सड़क छाप लड़कों ने उन्हें परेशान करने का प्रयास किया पर वे निडर हो वही खड़े होकर

लड़कों को देखने लगी परिणाम स्वरूप लड़के वहां से भाग खड़े हो गये थे। हांलाकि ससुराल में अत्याचार सहती गई। जुल्म करने वाले से जुल्म सहने वाला ज्यादा गुनहगार होता है। सुशीला जी ने शिक्षा से बाद में समझी। यह उनकी कमजोरी थी या माता–पिता के दिए गए संस्कारों की कमजोरी? शोषण कैसा भी हो उसका मुंहतोड़ जवाब देना चाहिए।

सुशीला जी को अपनी ननद, पति, सास के व्यवहार ने और घर में हमेशा के लड़ाई झगड़ों ने झगडालू बना दिया था। तब वे बराबरी से अपने हक की बात करने लगी थी। एक शिक्षिका होने के नाते समाज में जागरूकता फैलाना मेरा फर्ज था। समाज को सड़ी गली परम्पराओं में लिपटा देखकर मन बड़ा दुखी होता था। शिक्षा के उच्च स्तर के बावजूद लोग सड़ी गली परम्पराओं को मानते आ रहे हैं। लेखन के अलावा सामाजिक कार्यों में भाग लेती और समाज का मार्ग दर्शन भी करती। बूटासिंह ने प्रशंसा करते हुए कहा था। ''सुशीला बहन जैसी हमारी महिलाएं सामने आएंगी तो हम प्रगति जरूर होगी।''[24] यहां लेखिका ने नारी चेतना को जागृत किया है। समाज स्त्रियों को राजनीति से दूर रखता रहा है। लेखिका का उद्देश्य भी समाज जागृति और समाज सेवा रहा है। लेखिका ने समाज की इस मानसिकता को करारा जवाब दिया है। समाज में जागृति लाने का काम एक पुरुष ही नहीं महिला भी कर सकती है। समाज को स्त्री के अस्तित्व को पहचानना चाहिए। सुशीला जी ने अपने अस्तित्व को बनाने के लिए घर परिवार और समाज से लड़ाई खुद लड़ी है। इस दौरान समाज की परम्पराओं से पुरुषसत्ता वादी सोच से भी दो चार होना पड़ा है। एक बार डॉ. अजयमित्र शास्त्री ने लेखिका से कहा–''आप अपने साइन करते समय टाकभौरे क्यों लिखती हैं? टाकभौरे आपके पति का सरनेम है। अपने साइन अपनी खुद की पहचान होती है।''[25]

उस समय मुझे पहली बार महसूस हुआ था, हर व्यक्ति का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है उसकी स्वतंत्र पहचान होनी चाहिए। यहां लेखिका में नारी चेतना क्रमशः जागृत होती है स्त्री लेखिका समाज में बहुत कम है। एक स्त्री की पीड़ा को एक स्त्री ही समझ सकती है। पुरुष लेखन में स्त्री की बाहरी पीड़ा को ही समझ सकते हैं। लेकिन एक स्त्री अगर स्त्री के लिए लेखन करती है तो उसकी आंतरिक पीड़ा भी नजर आती है जो कि असहनीय है। सुशीला जी को लेखन का शौक पहले से ही था लेकिन समाज के डर पति के डर से खुलकर सामने नहीं आने देती थी। धीरे–धीरे समाज सुधारक कार्यों से जुड़ने के दौरान अपने लेखन को गति दी और दलित समाज की नारी किस पीड़ा से गुजर रही है। उस पीड़ा को बड़ी बेबाकी से समाज के सामने लाने का अथक प्रयास किया है। स्त्री लेखन आज के समाज की आवश्यकता है। स्त्री के रंग– रेशे से गुजरे अनुभव स्त्री की कलम से लिखे जाने पढ़े जाने का दावा स्त्रीवादी विमर्श की आत्मा है। सुधीश पचौरी का मन्तव्य है। ''स्त्रीत्व के हमदर्द बहुत से मर्द हो सकते हैं, लेकिन वे चाहकर भी उस लिंग भेदभावी अनुभव को नहीं पूरी तरह पढ़ सकते जो एक लिंग

भेदी समाज में स्त्री लिंगी अनुभव का हिस्सा है। प्रजनन या छेड़छाड़ या बलात्कार का जो पाठ स्त्री बना सकती है वह मर्दवादी विमर्श नहीं बना सकता। साहित्य के सार्वभौतिकतावाद का उत्तर आधुनिक विकेन्द्रण, स्त्रीत्ववादी साहित्य करता है। इस तरह स्त्रीत्ववादी लेखन जितना लेखन में है। उससे ज्यादा वह उसके पाठ में होता है। एक स्त्री की तरह पढ़ना पुरुष के लिए संभव नहीं। ऐसा ही एक्सक्लूसिव एकांत लिंग भेद में बनता है। इसलिए जो 'स्त्री के पक्ष' में लिखते हैं उस स्त्री पाठ को सन्देह की नजर से देखा जा सकता है।''[26]

समय बीतता जा रहा है उद्योगीकरण निजीकरण के साथ हम भूमण्डलीकरण की संस्कृति से जुड़ रहे हैं फिर भी जाति से जुड़े रोजगार की बातें अपमान पूर्ण जातपांत, भेदभाव की बातें अभी भी होती हैं। जिन्हें सुनकर दुख और चिन्ता हिलोरें लेने लगते हैं ये बातें खत्म होनी चाहिए दलित साहित्य के माध्यम से ऊंच नीच भेदभाव का विरोध करके सामाजिक समानता लाने का प्रयत्न जारी है। विरोध आक्रोश और विद्रोह का बिगुल बजाने वाला दलित साहित्य मनुवादी जड़ मानसिकता को तोड़कर विचार परिवर्तन के आन्दोलन का काम कर रहा है। लेखिका की नानी सामाजिक भेदभाव, जाति प्रताड़ना की कहानियां सुनाती थी। नानी की कहानियों ने ही लेखिका के लेखन प्रतिभा को प्रेरित किया है। लेखिका उसी व्यथा कथा की परम्परा को तोड़ने के लिए साहित्य सृजन कर रही है। आत्मकथा में लेखिका एक एक जगह कहती हैं ''मेरा लेखन यदि रोका जाता तो आज क्या मैं सामान्य रूप में रह पाती? लेखन ने मुझे बहुत सहारा दिया है जिससे मैं प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में, अपनी अभिव्यक्ति के साथ जीवन संघर्ष में सन्तुलित रह सकी हूँ। मुझे लेखन से केवल समय बिताने का नहीं बल्कि समय का पूरा उपयोग करने का और सही दिशा में आगे बढ़ने का रास्ता मिला है।''[27]

स्त्री अगर चाहे तो वह क्या कुछ नहीं कर सकती है। वह अपना रास्ता खुद बना सकती है। अपने पैरो में सदियों से बंधी बेड़ियों को खुद तोड़ सकती है। लेकिन अगर खुद नहीं चाहे तो वह उन्हीं बेड़ियों में लिपटी रह सकती है। स्त्रीवादी अवदान के विषय में ममता कालिया की युगीन प्रतिक्रिया देखी जा सकती है। ''आधुनिक तकनीकी ज्ञान–विज्ञान का उपयोग स्त्री का नामो निशान मिटाने में हो रहा है। कन्या भ्रूण हत्याएं आज बड़े पैमाने पर सुनियोजित तरीके से चिकित्सकों की निगरानी में की जा रही है और परिवारों के हृदय इन हादसों पर नहीं पसीजते''[28]

दलित उत्पीड़न की अनेक घटनाएं घटती हैं। खुल्लम खुल्ला जातिभेद की कटु बातें कही जाती हैं। सुशीला जी की कहानी 'सिलिया' 'बदला' 'संघर्ष' 'छौआ' 'मां' उसके प्रमाण है। इनकी कहानियां भी अधिकतर दलित शोषित पीड़ित पात्रों का दुख दर्द हैं। आत्मकथा में नारी चेतना जाग्रत होती है। लेखिका के घरवाले शिक्षा के माध्यम से ही उनको सक्षम बना पाये है। हांलाकि शिक्षा पाने के लिए कदम–कदम पर उनको जलील होना पड़ा है। हर जगह संघर्ष

करना पड़ा है। लेखिका औरों की तरह साबित नहीं हुई है जो संघर्षों से हार कर घर बैठ जायें। बल्कि उन्होंने इसका डटकर मुकाबला किया है। लेखिका के लिए समाज में जगह बना पाना इतना आसान नहीं रहा होगा। इस मुकाम तक पहुंचने में समाज के सामने लोहे सा बनकर खड़ा होना पड़ा होगा। पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रीवादी स्वर गूंजना कोई छोटी बात नहीं है। मनुवादी व्यवस्था के खिलाफ होकर समाज का रूप बदलना इतना आसान नहीं है। मनुवादी व्यवस्था में स्त्री का अस्तित्व नहीं था। महादेवी वर्मा ने जागरण की मुद्रा में उद्‌बोधन किया है। ''असंख्य विषमताओं का कारण स्त्री का अपने स्वतंत्र व्यक्तिगत को भूलकर विवेक शक्ति को खो देना है।''[29]

'शिंकजे का दर्द' आत्मकथा में लेखिका ने असंख्य विषमताओं से लड़कर अपनी विवेक शक्ति से समाज में नारी चेतना को जाग्रत किया है। अपना खुद का सम्मान करके अपनी कार्य क्षमता और योग्यता से ही समाज की नारी शक्ति को जाग्रत करने का प्रयास किया है। खालिदा अन्सारी की प्रतिक्रिया देखिए। ''अधिकार मंच पर गाल बजाने से नहीं मिलते उन्हें वह व्यक्ति पा सकता है जो स्वयं अपना सम्मान करना जानता हो। जो वास्तव में योग्य है वह अपनी क्षमता कार्य करके सिद्व करता है बड़े–बड़े दावे करके नहीं''[30]

सुशीला जी को जीवनभर मनुवादी व्यवस्था, मनुवृत्ति वाले पुरुष की उपेक्षा उलाहना, मारपीट, गाली गलौच, अस्तित्वहीनता का शिकार होकर शिंकजें के दर्द को सहना पड़ा और लगातार उससे मुक्ति के लिए वे संघर्ष करती रही हैं। आर्थिक तौर पर भी समाज में स्त्री का शोषण होता रहा है। अगर स्त्री नौकरीपेशा है तो भी उसका पैसों पर कोई अधिकार नहीं रहा है। सुशीला ने ऐसे दंश झेले है। समाज की रूढ़िवादी सोच का हर जगह सामना करना पड़ा है। सुशीला जी ने यह भी समझा है अगर सक्षम होना है तो पहले आर्थिक रूप से सुदृढ़ होना होगा। सीमोन बोउआ की प्रतिक्रिया भी देखी जा सकती है– ''मुक्ति की चेष्टा सामूहिक होनी चाहिए। इसके लिए सबसे पहले स्त्री की आर्थिक स्थिति का मजबूत होना आवश्यक है। अनेक ऐसी स्त्रियां हुई है और अब भी हैं जो अपने प्रयत्नों से ही मुक्त हो सकती हैं। वे इस विश्व में अपना अस्तित्व सिद्ध करने की चेष्टा करती हैं। या यह कहा जाए की वे विश्वव्यापी स्थिति में सर्वोपरि उठना चाहती है। स्त्री की अंतिम चेष्टा बन्दीगृह को स्वर्ण की गरिमा में बदलने की है। अब वह अपनी दासता को उच्च स्वतंत्रता में परिणत करना चाहती है।''[31]

'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा में लेखिका अपने भोगे हुए बीहड़, अविश्वसनीय अनुभवों को व्यक्त करती हैं। वे कहना चाहती हैं कि मानव सृष्टि में व्याप्त दुख, शोषण, अन्याय, अत्याचार, विषमता,पराधीनता का अन्त होना चाहिए। पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था के विरूद्ध स्त्री पुरुष समानता का निर्माण हो। धर्मान्धता के विरूद्ध मानवतावादी विचार हो। 'जीयो और जीने दो' की

भावना हो। शोषित पीड़ितों के उत्थान के साथ समतावादी नई समाज व्यवस्था हो–नया समाज हो इसके लिए सभी लोगों को प्रयत्नशील होना चाहिए।

(ब) 'दोहरा अभिशाप' (कौशल्या बैसन्त्री) से तुलना–

कौशल्या बैसन्त्री जी की आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' 1999 ई.में प्रकाशित दलित समाज में महिला जीवन के तमाम संघर्षों को चिह्ना खोलती है। इनकी आत्मकथा अन्य आत्मकथाओं की तरह अत्याधिक पीड़ा घृणा और जुगुप्सा के भावों का संचालन नहीं करती बल्कि लेखिका के संघर्षों को व उनके मां–बाप के संघर्षों से भरे जीवन का भी चित्रण करती है।

लेखिका ने दलित समाज की अच्छाई बुराई सभी का विवरण अपनी आत्मकथा में दिया है। जहां सवर्णों में विधवा विवाह को मान्यता नहीं दी जाती है वहीं दलित समाज में विधवा अगर दुबारा शादी करना चाहे तो कोई रोक–टोक नहीं है लेकिन इस दूसरी शादी की विधि अलग है और इसे विवाह न कहकर 'पाट' कहा जाता है। जो भी हो लेकिन यहां दलितों की चेतना जाग्रत होती है। कि वे विधवा विवाह का समर्थन करते हैं।

समाज में स्त्रियों की क्या दशा है यह किसी से भी छुपी नहीं है और उस पर भी दलित महिलाओं की स्थिति का दुखद यथार्थ स्पष्टतः 'दोहरे अभिशाप' और 'शिंकजे के दर्द' दोनों आत्मकथाओं में लगभग समान रूप से देखने को मिलता है। ''दोहरे अभिशाप'' की लेखिका की नानी का भी पाट हुआ था जहां उनका घर ठीक–ठाक था नाना साहुकार थे और पहले से शादीशुदा थे और पहली पत्नी से उन्हें एक बेटा और एक बेटी थे। कौशल्या जी की नानी एक साहसी महिला थी। घर के झगड़ों से तंग आकर एक दिन नानी ने घर छोड़ दिया। घर छोड़ने के दौरान रास्ते मे एक बच्ची की मौत हो जाती है। ''आजी ने अपने दिल पर पत्थर रखा। मन को काबू किया। पास में ही एक गड्डे में दफना दिया। आजी के मन पर क्या बीती होगी।''[32]

इतना हो जाने पर भी वह हिम्मत नहीं हारती है और आजीबा के घर ना जाने का ही निश्चय करती है। नागपुर किसी तरह से पंहुच जाती है। वहां ईट पत्थर ढ़ोने का काम करती है। सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' में बिल्कुल इसके विपरीत है दलित अपना जीवन गरीबी में यापन करते है। सुशीला जी की नानी साहुकारों के घरों में गंदगी साफ करके खाने का इंतजाम करती है। ''नानी को गांव का काम पैतृक दाय के रूप में मिला था दिनभर कड़ी मेहनत करने के बाद रूखा, सूखा, जूठा पाना ही उसका प्राप्य था। नानी अपने काम से अपनी स्थिति से और मजबूरी से दुखी थी। मगर न तो उसके पास जीवन यापन का कोई

दूसरा विकल्प था और न ही उसे कोई नई राह, नई दिशा की जानकारी देने वाला मिला जो उससे इस नरक सफाई के काम को छोड़ने की बात कहता।''[33]

दलित लोगों को रोज कुआं खोदकर पानी पीना पड़ता है। काम पर जाने से ही रोजाना के खाने का इंतजाम हो पाता है। यही वजह है कि दलित परिवार शिक्षित नहीं हो पाते। इनके बच्चे या तो घर के काम करे या छोटे बच्चों की देखरेख करते हैं। लेकिन कौशल्या जी कि मां चाहती थी कि बच्चे पढ़े लिखे। क्योंकि उस पर अम्बेडकर जी के भाषण का प्रभाव था। कौशल्या जी लिखती है कि मेरी मां पर 'पढ़ो–लिखो शिक्षित बनो और आगे बढ़ो' का प्रभाव पड़ चुका था। स्वयं पति के साथ काम में खटती रहती थी। लेकिन बच्चों की पढ़ाई में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं होने देती थी। सुशीला जी ने भी अपनी आत्मकथा में बताया है कि उनकी मां और नानी भी यही चाहती थी कि मैं पढू–लिखू, शिक्षित बनूं और अच्छी नौकरी पा सकूं। ''मां पन्नाबाई स्कूल नहीं जा सकी थी। लड़की जात पढ़कर क्या करेगी। यह भावना और छुआछूत की पराकाष्ठा के कारण स्कूल के दरवाजे उनके लिए बन्द ही रहे। नानी के समय में शिक्षा पाने की बात सोचना संभव नहीं था। लेकिन मां और नानी ने मिलकर मुझे पढ़ाने का जिम्मा उठाया।''[34] यहां दोनों आत्मकथाओं में समानता दर्शित होती है। लेखिकाओं के माता–पिता शिक्षा के प्रति जागरूक थे।

कौशल्या जी के माता–पिता का जीवन संघर्ष भरा जरूर था लेकिन उनमें जुझारूपन था कि वे अपने बच्चों को पूर्ण शिक्षा दे सके और इस प्रकार माता–पिता के आपसी तालमेल की वजह से ही लेखिका के सभी भाई–बहन अच्छे पढ़ लिख गए है। वरना ऐसा संयोग तो बहुत कम ही बन पाता था। कौशल्या जी ने अपने समाज की औरतों पर हो रहे अत्याचारों का भी उल्लेख किया है जहां स्त्रियां काम पर जाती थी और मर्द उनके पैसों से अय्यासी करते हैं। उनके साथ मारपीट करते हैं।

सुशीला जी जीवन में भी शिक्षा को लेकर संघर्ष करना पड़ा इनकी भाई–बहनों में सुशीला जी है जिन्होंने मुकाम हासिल किया है। शिक्षा प्राप्ति के दौरान हर तरीके से रोका व प्रताड़ित किया जाता था। लेकिन इन्होंने हर बात को सहन करके मुकाम को हासिल किया।

दोनों लेखिकाओं ने अपनी आत्मनिर्भरता से अपने साहस से शिक्षा ग्रहण की। स्त्री दासता के संस्कार केवल आत्मविश्वास और स्वावलम्बन के जरिये ही दूर हो सकते हैं। 'नरदंश' का सुन्दर कहता है– ''औरत के लिए समाज में अपनी स्थिति को दृढ़ करने का केवल एक ही रास्ता है आत्मनिर्भरता का रास्ता। आर्थिक मानसिक दोनों तरह की आत्मनिर्भरता का रास्ता। औरत के लिए यह अहसास दृढ़ होना ही चाहिए कि वह आदमी के बिना भी जी सकती है।''[35] दोनों लेखिकाओं में यही आत्मनिर्भरता नजर आती है। इसी कारण अपने जीवन में आगे बढ़ पायी है।

कौशल्या जी दलित स्त्री के सन्दर्भ में तीहरा शोषण बताती है। भारतीय समाज में स्त्री का दर्जा मात्र एक दासी का है। साथ ही स्त्री होने के कारण भी सवर्ण पुरुषों के साथ–साथ पति के शोषण का भी शिकार होना पड़ता है। इस सम्बन्ध में कौशल्या जी लिखती हैं–''सखाराम की औरत दिहाड़ी पर मजदूरी कर रही थी वह सीमेन्ट–ईंटे ढ़ोकर मिस्त्री को देती थी। वह देखने में सुन्दर थी। मिस्त्री बदमाश था। वह आते–जाते उसे छेड़ता था। एक दिन उसने सिमेन्ट का गोला बनाकर उसकी छाती पर मारा। उस औरत ने उसे गांलिया दी परन्तु वह बेशर्म हंसता रहा। साथ में खड़े मजदूर भी देखकर हंस रहे थे। यह बात उस औरत ने अपने पति से कही। पति का काम था जाकर उस बदमाश को डांटे फटकारे। परन्तु उसने अपनी औरत को ही डांटना शुरू किया मारा और कहने लगा कि और औरतें भी तो वहां काम करती हैं, उन्हें वह कुछ नहीं कहता और तुम्हें ही क्यों छेड़ता है। तुम ही बदचलन हो, यह कहकर उसे रात भर घर के बाहर रखा वह बिचारी घर के पीछे रात भर डर–डर के रही और सवेरे उसे गधे पर बैठाया गया। बस्ती के बाहर निकालने के बाद वह बिचारी झाड़ी में छिपी रही क्योंकि उसके बदन पर पूरे कपड़े नहीं थे। रात में वह बस्ती के कुएं में कूद गई। सवेरे उसका शरीर पानी के ऊपर तैर रहा था। उसके मां बाप आए और कहने लगे कि इसने हमारी नाक कटवाई अच्छा ही हुआ कि यह कुलटा मर गई।''[36] स्वाभाविक है कि पुरुष यहां भी अपना वर्चस्व स्थापित करना चाह रहा है। स्त्री पर नैतिकता लादने में दलित पुरुष भी कम नहीं ठहरते हैं।

भारतीय हिन्दूवादी समाज में स्त्री को निम्नतम स्थान दिया गया है। इन्हीं के अनुसार दलित पुरुषों का व्यवहार देखा जा सकता है। नारी का सम्मान समाज को गवारा नहीं। पुरुष हर बार स्त्री को ही दोषी ठहराता है। चाहे उसकी गलती हो या न हो। वह अपना वर्चस्व कायम रखने की पूरी कोशिश करता है।

सुशीला जी ने आत्मकथा में एक नारी शोषण में पति और समाज हर तरह से भागीदार होता है। नारी अगर कमाती है तो पुरुष को भी उसी के बराबर काम करना चाहिए अय्याशी नहीं। सुशीला जी के माता–पिता ने भी बराबर पैसे कमाये और अपने बच्चों को पाला। चन्द्रगहण और सूर्यग्रहण लगने पर, ग्रहण छूटने के समय नानी और मां गांव के लोगों से ग्रहण का दान लेने जाती थी।

दलित स्त्री आत्मकथाओं में अभिव्यक्ति संदर्भ परिवेश, समस्या और संघर्ष का स्वरूप मुख्य रूप से उजागर हुआ है। दलित स्त्री का जीवन शिक्षित होने के लिए संघर्ष, जातिगत पहचान की वजह से प्रगति के हर कदम पर आने वाली कठिनाइयों से जूझना आर्थिक संबलता के लिए कठिन प्रयास, भूख से लड़ाई, स्त्री होने के कारण घर और बाहर होने वाली अवहेलना अपमान और शोषण की तिहरी मार को झेलना पड़ता है। लेखिकाओं ने अपनी आत्मकथाओं में

समाज की सोच व पुरुष मानसिकता के प्रसंगों घटनाओं संघर्षों का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है।

कौशल्या जी ने अपने जीवन में एक स्त्री होने के कारण सारी पीड़ा को सहा है जो एक स्त्री सदियों से सहती आ रही है। उसका पति एक बड़ा लेखक व स्वतंत्रता सेनानी था लेकिन अपनी पत्नी को मुक्ति नहीं दे सका। उसके लिए उसकी पत्नी मात्र भोग्य वस्तु थी। कौशल्या जी अपने पति के बारे में लिखती हैं– ''देवेन्द्र कुमार (मेरे पति) को पत्नी सिर्फ खाना बनाने और उसकी शारीरिक भूख मिटाने के लिए चाहिए थी। दफ्तर के काम और लिखना यही उसकी चिंता थी। मुझे किसी चीज की जरूरत है, उसका उसने कभी ध्यान नहीं दिया।''[35] उससे वह मात्र नौकरानी की तरह बरताव करना, बात–बात पर गालियां देना, हाथ उठाना। अपने पति के बारे में कौशल्या जी भूमिका में लिखती हैं– ''मेरे उच्च शिक्षित पति, लेखक और भारत सरकार में उच्च पद पर सेवारत रहे। उन्हें ताम्रपत्र भी मिला और स्वतन्त्रता सेनानी की पेंशन भी। पति ने कभी मेरी कदर ही नहीं की बल्कि रोज–रोज के झगड़े, गालियों से मुझे मजबूरन घर छोड़ना पड़ा और कोर्ट केश करना पड़ा।''[38]

कौशल्या जी शिक्षित होने के बावजूद जीवन भर संघर्ष करती रही। पति पढ़ा लिखा होने के बावजूद भी उनकी मानसिकता को समझ नहीं पाया। वे असंवेदनशील एवं असहिष्णु थे। कौशल्या जी ने समाज व पति की निम्न सोच को उजागर किया है। पुरुष चाहे कितना भी शिक्षित क्यों न हो पर उसकी मानसिकता स्त्री के प्रति घिसी पीटी ही रहेगी। लेकिन कौशल्या अपने पति के खिलाफ खड़ी रही और संघर्षमय जीवन का चुनाव किया।

यहां दोनों आत्मकथाओं में समानता नजर आती है सुशीला के पति भी शिक्षित और नौकरी पेशा इन्सान थे फिर भी मानसिकता उन्हीं सड़ी गड़ी परम्परा में जकड़ी हुई थी। पति द्वारा मारना पीटना, पैरों की जूती समझना, नौकरानी के समान व्यवहार करना गाली गलौच करना यही व्यवहार उनके साथ भी रहा। उनका खुद की कमाई पर भी उनका हक नहीं था। उनसे रूपये छीन लिए जाते। पत्नी पर तरह–तरह के अत्याचार करना आम बात मानी जाती है। ये बाते समाज में इस तरह व्याप्त है। कि लोग इन्हें बुरा भी नहीं मानते। पत्नी पर हाथ उठाना मानों पति का अधिकार माना जाता है। सुशीला जी अपने पति के लिए कहती है। ''कभी कभी वे स्पष्ट शब्दों में कहते थे। मेरे पैर पर अपना सिर रखकर माफी मांग तब मैं तेरी बात मानूंगा।''[39] छोटी–छोटी बातों पर अपनी नाराजगी बताना पति का गुण कहलाता था। लेकिन सुशीला जी ज्यादा दिन तक उनकी गुलामी की शिकार नहीं रही। उन्होंने अपना हक हासिल करना शुरू कर दिया। एक सम्मान की जिन्दगी के लिए संघर्ष करने लगी। बाद में हासिल भी किया। सुशीला जी अपनी कमाई अपने पास रखने लगी। जिससे परिवार में उनकी बात मानने लगे। प्रभा खेतान कहती है– ''आप नहीं जानती बहिनजी, औरत की सारी

स्वतन्त्रता उसके पर्स में निहित होती है।''[40] सदियों से स्त्री पितृसत्तात्मक समाज में पुरुष पर निर्भर रहने का सबसे बड़ा कारण पूंजी ही रहा है। पहले स्त्री आर्थिक परावलंबन में विवशता में पति और परिवार की यातनाओं को चुपचाप सह लेती थी। आज आर्थिक स्वतन्त्रता के कारण स्त्री के समक्ष सम्भवनाओं का खुला आकाश है। राजेन्द्र यादव के अनुसार– ''मगर सच यह है कि स्त्री की बुद्धि की पहचान तभी हुई है जब भौतिक कारणों से वह पुरुष के अंकुश से मुक्त हुई है। परिवार और देश चलाने वाली स्त्रियां वे ही रही है जिन्हें अपने कार्यों का हिसाब किसी मालिक को नहीं देना होता या जो अपने फैसले खुद ले पाई हैं।''[41]

कौशल्या जी ने अपनी आत्मकथा में बताया है कि पति को यातनाओं की वजह से उन्हें घर छोड़ना पड़ा कोर्ट जाना करना पड़ा। लेकिन इसके बिल्कुल विपरीत सुशीला जी है जिन्होंने उसी घर में रहकर अपने अधिकार लिए है। दलित समाज को एक नई दिशा दी है। समाज में नारी की महत्ता को बताया है। पुरुष सत्ता के विरोध में खड़ी रही है। उनमें पलायनवादी दृष्टि न होकर परिवर्तनवादी दृष्टि दिखाई देती है।

कौशल्या जी को वैसे तो अन्य दलित आत्मकथाकारों की तरह शिक्षकों से कोई कटु वचन सुनने और बिना वजह मार खाने को नहीं मिली। लेकिन उसकी शिक्षिका उससे काम लेती थी जबकि अन्य विद्यार्थियों से कुछ नहीं कहती थी। कुछ भी करना होता तो लेखिका से ही करने को कहती। कौशल्या जी को हमेशा यही डर लगा रहता कि कहीं जाति का भेद न खुलकर सामने आ जाए। किन्तु समय के साथ–साथ जैसे ही उनके विचार खुलते गये उनका सारा डर भी लुप्त होता गया और जहां उसे लगता है भेदभाव किया जा रहा है तो वह इसका विरोध भी करती है। इसके साथ ही वह तमाम रूढ़ियों और अंधविश्वास का भी विरोध करती है जिन्होंने समाज को खोखला बना दिया है और साथ ही इन्होंने अपनी आत्मकथा में उन राजनेताओं की ओर भी संकेत दिया है। जो दलितों की समस्यों को देखकर भी अनदेखा कर देते हैं। तथा इनके विषय में बात तक नहीं करते हैं। कौशल्या जी स्वयं के अनुभव पर दलितों में आन्दोलन को लेकर कम होते उत्साह को भांपा है तथा इस पर चिन्ता भी व्यक्त की है इसके लिए दलितों का एकजूट होना भी जरूरी है। लेखिका ने एक जगह दलितों में भी ऊंच–नीच बरते जाने का संकेत किया है और अगर कोई दलित व्यक्ति पढ़ लिख कर आगे बढ़ना चाहता है तो अपने ही समाज के लोग उसे नीचे गिराने का भरसक प्रयास भी करते हैं। लेखिका का अनुभव इस तथ्य की पुष्टि करता है। जब कौशल्या जी के मां–बाप अपने बच्चों को स्कूल भेजने लगे तो इन्हें पढ़ता देख सवर्णों के साथ–साथ इनके अपने ही लोगों के द्वारा इन्हें ताने सुनाये जाते थे और भिन्न–भिन्न तरीकों से सताने का प्रयास किया जाता था। क्योंकि ये सारे लोग उनसे जलते थे इसलिए ये नहीं चाहते थे कि इनका परिवार पढ़े–लिखे। इस वजह से सताने के नये–नये हत्थकंडे अपनाये जाने लगे थे फिर भी अन्होंने हिम्मत नहीं हारी

और आगे बढ़ते गए। सवर्ण क्या दलित समाज भी अपने ही लोगों को आगे बढ़ता नहीं देख सकता था।

सुशीला जी कौशल्या के विपरीत भेदभाव का शिकार होती है। स्कूल के दिनों में जाति के कारण ही कक्षा में सबसे पीछे बैठाया जाता था। शिक्षकों का रैवेया भी इनके लिए खराब ही रहा है। शिक्षक गांव के सवर्णों के बच्चों पर ही ज्यादा ध्यान दिया करते थे। स्कूल के शिक्षक गांव के सवर्ण हिन्दू महाजनों का बहुत सम्मान करते थे। उसी प्रकार उनके बच्चों को भी सम्मान देते। अछूत बच्चे उपेक्षा के शिकार रहते। सवर्ण सम्पन्न घरों के बच्चों को सजा से छुटकारा तुरन्त मिल जाता था। गरीब, पिछड़े अछूत वर्ग के बच्चे घंटों सजा भोगते, मानो गुरूजी उन्हें सजा देकर भूल गये हैं। बच्चे रोने लगते तब जैसे गुरूजी को याद आता वे कहते– अच्छा–अच्छा.... ठीक है, ठीक है,..... बैठ जाओ। ''मेरी सजा ऐसी ही लम्बी होती थी।''[42] गांव में छुआछूत की भावना बहुत थी, हमारे स्कूल में भी थी।

कौशल्या जी के 'दोहरे अभिशाप' और सुशीला जी के 'शिकंजे का दर्द' में सबसे बड़ी भिन्नता देखी जा सकती है शिक्षा प्राप्ति में कौशल्या जी को बाधा उत्पन्न नहीं हुई उनके लिए आगे बढ़ने के सारे रास्ते खुले रहे हैं। वहीं दूसरी और सुशीला जी को स्कूल से लेकर कॉलेज और अध्यापिका बनने के बाद तक जातिभेद का लगातार सामना करना पड़ा और हर बार संघर्ष करती रही।

दोनों दलित महिला लेखिकाओं की पारिवारिक पृष्ठभूमि के अनुसार विचार धारा रही है। कौशल्या जी की आत्मकथा में अम्बेडकर विचारधारा प्रवाहित है। दलित लोग अम्बेडकरवादी विचारवादी होने के कारण अपना मार्ग स्वयं चुनते हैं। यहां तक कि कौशल्या जी के माता–पिता अम्बेडकर के विचारों से प्रभावित होकर ही अपने बच्चों को स्कूल भेजने लगे थे जबकि सुशीला जी ने लिखा है। कि हमारे यहां दलित गांधीजी को आदर्श मानते थे। क्योंकि गांधीजी दलित वर्ग को भ्रमित कर रहे थे और दलित वर्ग भ्रमित हो भी रहा था। हमारे क्षेत्र में गांधीजी के 'हरिजन उद्धार' का प्रचार प्रसार बहुत था लेकिन हमारे लोगों की दशा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था हमारे लोग यह बात समझ नहीं पाये थे। वे गांधीजी के प्रति श्रृद्वा और आस्था रखते हुए कहते थे– ''महात्मा गांधी अपना पाखाना खुद साफ करते थे। उनकी शिक्षा से गांव के सेठ साहुकार भी घर के आसपास की गन्दगी या कचरा, मैला खुद उठाकर फेंक देते थे। जब इतने बड़े बड़े लोग ऐसे काम करने में शरम नहीं करें तो अपन की का बात है? अपनो तो जनम ही इस जात में हुओं है। दुख हो चाहे तकलीफ, करने तो पड़ेगो।''[43]

यह एक प्रकार की साजिश थी, भ्रमित करने का जाल था जो हमारे भोले–भाले लोगों को कभी विरोध विद्रोह की बात सोचने ही नहीं देता था। महात्मा गांधी के प्रपंचों में उलझकर ये अछूत हरिजन ही बने रहे। बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा न तो इन तक पहुंच

सकी, न ही ये उन विचारों को समझ सके, न ही उन पर कभी अमल कर सके। वे अपने काम से और अपमान भरी दीन–हीन जिन्दगी से दुखी थे मगर 'किस्मत का खेल' और 'जन्मान्तर के पाप' की उलझाने वाली बातों से आगे नहीं सोच पाते थे। आज भी देश तरक्की कर रहा है, देश की तकनीकी विकास हो रहा है लेकिन इसका लाभ दलित परिवार को नहीं मिला। दलित जाति समुदाय के लोग गरीबी और भूख से जुझते हुए अपना पैतृक रोजगार कर रहे हैं। इनके रोजगार में तकनीकी सुधार नहीं हो रहा है।

इस प्रकार दोनों आत्मकथाओं में समानता और भिन्नता मौजूद रही है। दोनों की आत्मकथाओं में पुरुषसत्तात्मक समाज में स्त्री का निरन्तर शोषण उसके अस्तित्व और अस्मिता को कुचला जाना और इनके विरोध में स्त्री संघर्ष आदि महत्वपूर्ण पहलू उभरे हैं। आज भी पुरुष नारी को अबला ही समझता रहा है। लेकिन यही अबला नारी अपना उग्र रूप ले ले तो समाज का कैसा रूप होगा ये पुरुष ने कभी नहीं सोचा। स्त्री की दासता की गाथा के यथार्थ को महादेवी वर्मा ने इन शब्दों में व्यक्त किया– ''पुरुष की शक्ति और दुर्बलता उस आदिम नारी से नहीं छुपी रही होगी जिससें पुरुष की बर्बता को पराभूत कर उसकी सुप्त भावना को जगाया। इन पवित्र गृहों की नींव स्त्री की बुद्धि पर रखी गई है। पुरुष की शक्ति पर नहीं। अपनी सहज बुद्वि के कारण ही स्त्री ने पुरुष के साथ अपना संघर्ष नहीं होने दिया। यदि होने दिया होता तो आज मानव जाति की दूसरी ही कहानी होती।''[44] दलित स्त्री मध्यम वर्गीय हो अथवा निम्नवर्गीय, मजदूर हो अथवा सामाजिक कार्यकर्ता या कॉलेज में अध्यापिका, उसे दलित और स्त्री होने की पीड़ा साथ–साथ झेलनी पड़ती है। यह बात लगभग सभी दलित स्त्री लेखिकाओं के यहां देखने को मिलती है।

स्त्री चाहे सवर्ण हो या दलित, पुरुष की नजर में उसका दरजा निचले पायदान पर ही रहा है। हांलाकि सवर्ण स्त्री इसे आज भी मानने को तैयार नहीं है कि उनका शोषण हो रहा है और अपने ही घर में पुरुषों द्वारा ठगी जा रही है। दलित स्त्री सहने के साथ कहने का साहस रखती है। आज भौतिकवादी युग में मनुष्य बर्बर युग के क्रूर पुरुष से अधिक भयानक हो उठा है– ''बाहर संघर्ष है, कर्म इतना रूक्ष है कि पुरुष स्त्री और गृह को जीवन की आवश्यकताओं में एक समझता है, परन्तु उसे यह सह्य नहीं कि स्त्री उसके अधिकार लिप्सा में बाधक बनें।''[45]

दोनों आत्मकथाओं में समाज में व्याप्त सभी रूढ़ि अंधविश्वासों तथा दलित समाज पर किए जा रहे शोषण तथा विशेषकर स्त्रियों पर हो रहे अत्याचारों पर प्रश्न खड़ा करती हुई आलोचनात्मक तेवरों के साथ हमारे सामने आती है। इन आत्मकथाओं में लेखिकाओं ने परिवार तथा अपने जीवन के संघर्षों का बखान किया है। ऐसे संघर्ष दलित और सवर्ण, दोनों जातियों की महिलाओं को झेलने पड़ते हैं। कौशल्या जी ने न सिर्फ सवर्ण पुरुष बल्कि दलित स्त्री पुरुष का दोहरा चरित्र भी आत्मकथा के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

आत्मकथाओं पर विचार करने के बाद यह निष्कर्ष निकल कर सामने आता है कि 'दोहरे अभिशाप' और 'शिकंजे का दर्द' दोनों ही दलित स्त्रियों के संघर्ष की गाथा है। लेकिन 'दोहरे अभिशाप की लेखिका का संघर्ष अपने परिवार से ज्यादा था वहीं दूसरी और 'शिंकजे का दर्द' की लेखिका का संघर्ष समाज के हर वर्ग से था। जहां पारिवारिक परिस्थिति भी कमजोर होती है वहां संघर्ष दुगुना हो जाता है। 'शिकंजे का दर्द' की लेखिका को जातिगत भेदभाव से भी गुजरना पड़ा वहीं दूसरी ओर 'दोहरे अभिशाप' में ऐसा कोई जिक्र नहीं है। 'दोहरे अभिशाप' में लेखिका अपने पति से दुखी होकर घर छोड़ देती है वहीं 'शिकंजे का दर्द' में लेखिका अपने पति से दुखी होकर घर न छोड़कर परिवर्तन लाती है और अपने अधिकारों की रक्षा करती है अपने संघर्ष के बलबूते पर अपने बच्चे को भी शिक्षा ग्रहण करायी है समाज में अगर कोई दलित आगे बढ़ना चाहता है। तो सवर्ण वर्ग तो उसको नीचे गिराने का काम करेगा वहीं दलित वर्ग भी नहीं चाहेगा। कि वह आगे बढ़े। सुशीला जी ने अपने जीवन में संघर्ष करके समाज के सामने एक नई मिसाल दी है। सुशीला जी लिखती है– ''मैने अपने जीवन में अनेक समस्याओं का सामना किया है। पुरुषों की अपेक्षा नारी अपने जीवन में अधिक समस्याओं का सामना करती है। इन समस्याओं से डरकर यदि वह प्रगति–पथ से पीछे हटेगी, तो सफलता प्राप्त नहीं कर सकेगी। जीवन को संघर्ष मानकर, अपने लक्ष्य की ओर बढ़ना ही जीवन में विजयी होना है। नारी किसी भी जाति धर्म की हो, वह कष्टों से घिरी होती है। संघर्ष से ही वह जीवन में सुख और सम्मान पाती है।''[46]

महादेवी वर्मा ने भी स्त्री को उद्‌बोधन दिया था। ''भविष्य में भारतीय समाज की क्या रूप रेखा हो, उसमें नारी की कैसी स्थिति हो, उसके अधिकारों की क्या सीमा हो आदि समस्याओं का समाधान आज की जाग्रत और शिक्षित नारी पर निर्भर है। यदि वह अपनी दुरवस्था के कारणों को स्मरण रख सके और पुरुष की स्वार्थ परता का विस्मरण कर सके तो भावी समाज का स्वप्न सुन्दर और सत्य हो सकता है।''[47]

स्त्री शिक्षित होकर अपने अधिकारों को पा सकती है। अपने स्वामित्व की मांग कर सकती है अपनी स्वतन्त्रता खुद चुन सकती है। 'शिकंजे का दर्द' में सुशीला जी ने शिंकजे का दर्द भोगा और शिक्षित होकर उससे मुक्त होने का प्रयास किया।

(स) दलित आत्मकथाओं की महिला चेतना और 'शिकंजे का दर्द' का तुलनात्मक अध्ययन–

आत्मकथा में लेखक नितांत व्यक्तिगत अनुभव को व्यक्त करने के साथ समसामयिक परिवेश से अपने को मुक्त नहीं कर पाता हिन्दी की प्रारम्भिक आत्मकथाओं में आनन्द मनोरंजन हर्ष उल्लास वैभव को महत्व प्रदान किया गया है तो समकालीन दलित आत्मकथाओं में गरीबी, कुपोषण कुव्यवस्था के साथ शोषण–अत्याचार के विभिन्न रूपों का चित्रण है। दलित रचनाकार आत्मकथा शैली में जब भोगी गई पीड़ा को व्यक्त करता है तो उसमें अनुभव की प्रामाणिकता का आ जाना स्वाभाविक है जिस प्रकार हिन्दी का दलित साहित्य मराठी भाषा से प्रभावित और प्रेरित है उसी प्रकार आत्मकथाएं भी। दलित आत्मकथाओं के संदर्भ में डॉ. जयप्रकाश कर्दम का कहना है कि ''समाज के जिस विद्रूप, वीभत्स, क्रूर और अमानवीय चेहरे पर गैर दलित लेखक पर्दा डालते आए थे और समाज जिस सच से साक्षात नहीं करना चाहता था इन आत्मकथाओं ने समाज के उस नग्न सच को बेपरदा किया।''[48]

दलित समाज का अलग से कोई लिखित इतिहास नहीं है लेकिन उसकी संवेदना, चेतना और अपेक्षाएं दलित समाज के लोगों में जरुर रहती है। जिसे दलित आत्मकथाओं में देखा जा सकता है गैर दलित समाज ने अपने पराजित अतीत का गौरवशाली इतिहास का रूप देने में जितनी ऊर्जा खर्च की है। उसका लेशमात्र भी दलित जीवन की अभिव्यक्ति पर व्यय नहीं किया गया। फलतः दलित समाज का लिखित इतिहास वैसा नहीं बन पाया जैसा होना चाहिए था। लेकिन अब वह निर्माणाधीन है दलित समाज अपने अनुभवों को पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप में ही हस्तगत करता आया है। बेचैन जी की यह टिप्पणी दलित आत्मकथाओं की सार्थकता को और स्पष्ट कर देती है। ''दलित आत्मकथाएं सवर्ण समाज का संबोधित संवाद हैं, इसमें दायित्वबोध से भरे अनुभवों की आग है, किन्तु अपील की शक्ल में यह विचारों की वह मशाल है जिसे पिछली पीढ़ी अगली पीढ़ी को इस उम्मीद से हस्तगत करती है कि वह मुक्ति की राह रोशन करती रहे।''[49]

हिन्दी साहित्य की प्रारम्भिक दलित आत्मकथाओं में मोहनदास नैमिशराय की, 'अपने अपने पिंजरे' (1995) और ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन' (1996) अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है श्योराज सिंह बेचैन की 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' तुलसीराम की 'मुर्दहिया' उमेश कुमार सिंह की 'दुख–सुख के सफर में' डॉ. धर्मवीर की 'मेरी पत्नी और भेड़िया' कौशल्या बैसन्त्री की 'दोहरा अभिशाप' सुशीला टाकभौरे की 'शिकंजे का दर्द' आदि हैं। ये आत्मकथाएं लेखक की आत्मपीड़ा के साथ सामाजिक संघर्ष को भी व्यक्त कर रही हैं।

दलित आत्मकथाएं जितनी व्यक्तिगत दलन, शोषण, उत्पीड़न का परिचय करवाती है उतना ही दलित समाज की समस्याओं से भी रूबरू करवाती हैं जिसकी वास्तविकता से समाज अनभिज्ञ है। दलित आत्मकथाओं ने सवर्ण समाज व्यवस्था के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त किया है। मोहनदास नैमिशराय अपनी आत्मकथा की भूमिका मे लिखते हैं।– ''व्यक्ति हो या समाज

उसे अपने हक, अधिकार स्वयं ही लेने होते हैं। बैसाखियों पर जीवन नहीं चलता। चलेगा भी तो कितने दिन.....।''[50] दलित आत्मकथाओं में आत्मकथाकारों ने भोगे हुए यथार्थ, संघर्ष, जातिदंश, परिवेश समस्या, पारिवारिक व दाम्पत्य संबंध का दंश, आर्थिक सबलता के लिए प्रयास अपमान और शोषण का चित्रण प्रमुखता से किया है।

दलित आत्मकथाकार सर्वप्रथम अपनी बस्ती, गांव की स्थिति से परिचय करवाता है जो उनकी सामाजिक सरंचना में दोयम स्थिति को स्पष्ट करता है। सदियों से हर दलित बस्ती गांव के बाहर ही होती हैं। तो जाहिर सी बात है कि दलित आत्मकथाकारों के घर भी गांव के बाहरी छोर पर ही रहे हैं। आत्मकथा 'अपने–अपने पिंजरे' में मोहनदास नैमिशराय जी कहते हैं कि ''मेरठ शहर में छोटी सी हमारी बस्ती और ढेर सारे हमारे दुःख। वे दुख दर्द व्यक्तिगत भी होते और सामूहिक भी, किसी के कच्चे घर की छत टपकती तो किसी के घर में दिवारों में पानी रिसता''[51] दलितों के संघर्ष का पता उनके घरों से ही चल जाता है इसी तरीके के घर 'जूठन' आत्मकथा में भी नजर आते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी कहते हैं कि ''मेरा जन्म मुजफरनगर जिले के बरला गांव की जोहड़ी के किनारे बने एक चूहड़े परिवार में होता है। एक ओर सवर्ण तगाओं के मकान हैं तो दूसरी ओर दलितों के मकान और मकानों के पीछे गांव भर की जवान – बूढ़ी औरतों का खुला शौचालय है। इस तरह चारों ओर गन्दगी भरी होती है। ऐसी दुर्गन्ध उठती है कि मिनट भर में सांस घुट जाय। उनकी तंग गलियों में सुअर और कुत्तों के साथ नंग– धड़ंग बच्चे घूमते हैं। वर्णव्यवस्था को आदर्शव्यवस्था कहने वाले सवर्णों को यदि दो चार दिन रहना पड़ जाए तो उनकी राय बदल जाए।''[52] ऐसे माहौल में ओमप्रकाश वाल्मीकि का बचपन बीता जिसकी यादों भरी कड़वी सच्चाई उनके जेहन में मौजूद है। यही हालात 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' आत्मकथा में नजर आते हैं। ''स्वतंत्र भारत की राजधानी दिल्ली से कुछ ही दूरी पर बसे हुए पश्चिमी उत्तर प्रदेश के बदायूं क्षेत्र में श्यौराज सिंह की दलित बस्ती में अनेक प्रकार की यातनाओं अभावों को झेलते रहे हैं।''[53] हर दलित आत्मकथाकार की तरह शिकंजे का दर्द' की आत्मकथाकार सुशीला जी की बस्ती भी गांव के अंतिम छोर पर थी। सुशीला टाकभौरे का जन्म मध्यप्रदेश के बानापुरा गांव में दलितों में भी दलित समझे जाने वाले परिवार में हुआ। जहां सुशीला जी रहती है वहां सवर्ण सम्पन्न लोगों के घर गांव के ऊपर की ओर थे दूसरी ओर पिछड़े दलित मजदूरों की बस्ती थी। अछूत जाति के लोगों को नियम के अनुसार गांव के बाहर बसाये जाते हैं। 'दोहरा अभिशाप' में भी कौशल्या बैसन्त्री ने यही उजागर किया है कि ''दलितों की बस्ती सवर्ण बस्तियों से अलग होती थी। बस्ती से सटा नाला बहता था। सड़क के दूसरी ओर पक्की सड़के बनी थी जो सवर्ण मकानों की ओर जाती थी। दलित बस्ती में अधिकांश अछूत थे अनपढ़ और मजदूर।''[54] समाज में दलितों और सवर्णों के घर

अलग–अलग होने से समाज की वर्ण व्यवस्था का पता चलता है। उपर्युक्त बातों से स्पष्ट है कि भारतीय गांव व्यवस्था में दलितों का जीवन भेदभाव पूर्ण रहा है।

हिन्दू समाज में ऊंच–नीच, छोटा–बड़ा, गरीब–अमीर हमेशा से रहा है। धर्म ग्रंथों, पंडे–पुजारी, सन्त–महन्तों ने जातिवाद को फैलाया है, इसकी जड़े हिन्दू समाज में गहरे तक जाती है जिसे भोगता है दलित समाज.....। दलित लेखकों ने अपने जीवन के जातीय–दंशों को और उनसे उपजी शोषण की विभीषिका को अभिव्यक्त किया है। जिससे जाति– व्यवस्था की अमानवीय विद्रूपता सामने आई है। आत्मकथा 'अपने–अपने पिंजरे' में मोहनदास नैमिशराय जी भी यही बताना चाह रहे हैं कि जाति कभी नहीं जाती। ''हमारे स्कूल को बाहर के लोग अक्सर चमारों का स्कूल कहा करते थे। जैसे चमारों का नल, चमारों का नीम, चमारों की गली, चमारों की पंचायत आदि।''[55] सन् 1931 की जनगणना के अधीक्षक जे.एच.हटन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक भारत में जाति प्रथा में भारतीय जाति प्रथा के बारे में लिखा था कि ''भारत में जाति व्यवस्था जितनी जटिल सुव्यवस्थित और रूढ़ है उसकी मिसाल विश्व के किसी भी भाग में कहीं भी नहीं मिलेगी। वस्तुतः जब हम गहराई से सोचते हैं तो यही पाते हैं कि यह भारत में ही मिलती है अन्यत्र नहीं।''[56] उच्च जाति का होने की ग्रन्थि सवर्ण समाज की मानवीयता को अन्दर ही अन्दर खोखला कर रही है। 'जूठन' में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने हिन्दू समाज की विकृतियों का पर्दाफाश किया है। जाति व्यवस्था ने दलितों को ऐसे घाव दिए हैं जो असहनीय हैं ''अस्पृश्यता का ऐसा माहौल कि कुत्ते–बिल्ली, गाय भैंस को छूना बुरा नहीं था, लेकिन यदि चुहड़े को स्पर्श हो जाए तो पाप लग जाता थ। सामाजिक स्तर पर इन्सानी दर्जा नहीं था। वे सिर्फ वस्तु थे। काम पूरा होते ही उपभोग खत्म, इस्तेमाल करो, दूर फैंको।''[57] दलितों पर होने वाले जुल्मों की संख्या गांव में अधिक रही है। दलितों की तबाही और समस्याओं का मूल कारण जाति ही रही है। 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' आत्मकथा में श्यौराज सिंह बेचैन भी अपने हालात कुछ इस तरह ही बयान करते हैंः– ''जिन चमारों ने मवेशी उठाने का काम धन्धा छोड़ दिया था वे स्वयं को ऊंचे दर्जे का मानने लगे थे। जबकि माली हालत उनकी भी खराब थी। जाट– बामनों में इस तरह का काम नहीं होता था वे ऊंची जाति के थे। दलित व्यवसाय बदल कर नई सम्भावनाएं तलाशते के पक्ष में थे। सवर्णों को दलित जाति के कार्यों का न अनुभव था न जरूरत बल्कि इसका आभास भी अपमानजनक लगता था।''[58]

दलित लेखकों की भांति दलित लेखिकाओं के साथ भी जातिगत भेदभाव हमेशा ही रहा है। 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा में सुशीला टाकभौरे कहती हैं कि ''मैं देखती थी, सवर्ण घरों में स्कूल से लौटे बच्चों पर घर के बाहर ही पानी छिड़क दिया जाता था और पहने हुए कपड़े उतारकर उन्हें दूसरे कपड़े पहनने के लिए दिए जाते थे। हमारे ही सामने वे नाक–भौं सिकोड़कर नफरत से कहते थे– न जाने कौन–कौन सी जात के बच्चों के साथ बैठकर पढ़कर

आते हैं। सबकी छुआछूत घर में लाते हैं।''[59] दलितोत्थान की चाहे कितनी भी बड़ी–बड़ी बाते की जाएं, किन्तु यह जाति का सच ज्यों का त्यों रहता है। 'दोहरा अभिशाप' भी इसी प्रकार की आत्मकथा है जहां जाति शब्द जुड़ा हुआ है। आत्मकथाकार बयान करती हैं कि– ''सफाई कर्मचारियों से छुआछूत बरतते थे। उनके यहां कोई नहीं आता था न उनके बच्चें दूसरे बच्चों के साथ खेलते थे। दलित जाति के अलग–थलग रहकर अपने ही समाज में रहते थे। दलित जाति के पुरुष और औरतें सड़क बुहारने का पब्लिक लैट्रीन साफ करने का काम करती थी। सवर्ण जाति के लोग इनसे छुआछूत रखते थे।''[60] जाति के कारण ही दलित समाज ऊपर उठने के लिए हमेशा से ही संघर्षरत रहा है। डॉ. उमेश कुमार सिंह अपनी आत्मकथा 'दुख–सुख के सफर में जातिभेदभाव को कुछ इस तरह बयान करते हैं–''तालाब में पशु लौटते थे,
पंछी पंख भिगोते थे, परन्तु अछूतों को उस तालाब का पानी छूने तक की मनाही थी।''[61] दलितों को हमेशा उनके जातीय हीनता से दबा दिया जाता है तथा उनको जाति का ओछापन याद दिला दिया जाता है।

दलित को उसकी जाति के कारण हीनता का बोध होता है और स्वयं काफी अपमानित महसूस करता है। नैमिशराय जी कहते हैं कि ''हम कहीं भी जायें, कितनी भी बड़ी कक्षा में पढ़े, जातियां हमेशा पीछा नहीं छोड़ती। जहां भी हम जाते, वे भी बिना किसी रोक–टोक के जा पहुंचती थी। बल्कि हमारे साथ–साथ चलती, उठती बैठती थी। कभी–कभी तो सांप भी केंचुली त्याग देता है, पर आदमी अपनी जाति को केंचुली नहीं छोड़ पाता। वह जीवन से मृत्यु तक उसी केचुंली के भीतर रहता है।''[62]

दलित आत्मकथाओं में जातिदंश सभी में लगभग एक जैसा ही रहा है। दलित आत्मकथाओं के साथ जातिगत दुर्व्यहार किया गया। कदम–कदम पर दलित जाति का होने का अहसास कराया जाता रहा। दलितों को जाति के नाम पर प्रताड़ित करना सवर्णों के लिए आम बात थी। एक आदमी स्वयं को कितना अपमानित महसूस करता है तब उसके साथ भेदभाव किया जाता है ये आत्मकथाकारों से बेहतर कौन जान सकता है। इनकी स्वयं की भोगी हुई पीड़ा है। जाति का ऐसा बहुरूपिया रूप देखकर दिल को ठेस पहुंचती है। जाति के रूप में दलित आज भी सवर्णों के जुल्मों का शिकार हो रहा है।

दलित समाज के लिए कभी भी शिक्षा का कोई प्रावधान नहीं रहा है। सवर्ण हमेशा से यही चाहते हैं कि दलित शिक्षा से दूर रहे और हमारी गुलामी करते रहे। शूद्र को शिक्षा ना मिले सारे शास्त्र इसी कोशिश में रहे हैं। दलित न पढ़े यह भावना आज भी लगातार जारी है। दलितों के लिए शिक्षा किसी मजाक से कम नहीं रही है। ओमप्रकाश वाल्मीकि 'जूठन' में अपनी पीड़ा व्यक्त करते हुए लिखते हैं– ''जब मैं स्कूल में पढ़ा करता था मुझे स्कूल के कार्यक्रम से बाहर रखा जाता था। मुझे सांस्कृतिक कार्यक्रमों क्रियाकलापों से दूर रखा जाता था। ऐसे वक्त

मैं सिर्फ किनारे खड़ा होकर दर्शक बना रहता था। स्कूल के वार्षिक उत्सव में जब नाटक आदि का पूर्वाभ्यास होता था, मेरी भी इच्छा होती थी कोई भूमिका मिले। लेकिन हमेशा दरवाजे के बाहर खड़ा रहना पड़ता था। दरवाजे के बाहर खड़े रहने की इस पीड़ा को तथा कथित देवताओं के वंशज नहीं समझ सकते।''[63] शिक्षा के मंदिर में एक शिक्षक का ऐसा व्यवहार देखकर मन बड़ा दुखी होता था पर मजबूरन कुछ भी नहीं कर पाते थे। श्यौराज सिंह बेचैन लिखते हैं कि–''स्कूल में जाने के बाद चोरी छिपे मरे हुए ढोर उठाने में शामिल रहता था। किन्तु वहां यह सब बहुत ही छिप–छिपाकर करना पड़ता था अन्यथा गांव में सवर्ण जाति के लड़के स्कूल में मेरा क्या हाल करते, कल्पनातीत था।''[64] दलित आत्मकथाकारों को शिक्षा के लिए बड़ी जद्दोजहद करनी पड़ती थी।

शिक्षक का व्यवहार दलितों के लिए शिक्षक की गरिमा के एकदम विपरीत रहा है। कोई दलित शिक्षा ग्रहण करने का विचार भी लाता था तो सवर्ण मानसिकता से ग्रस्त शिक्षक दलितों को विद्यालय की देहरी से ही वापिस कर देता था। सूरजपाल चौहान ने आत्मकथा 'तिरस्कृत' में शिक्षक के लिए लिखा है कि वह जाति का ओछापन किस तरह याद दिलाते रहते थे। एक दिन सूरजपाल की ओर संकेत करते हुए कहा था– ''यदि देश के सारे चुहड़े–चमार पढ़–लिख गए तो गली मोहल्लों की सफाई और जूते बनाने का कार्य कौन करेगा।''[65]

इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि स्कूल का अध्यापक दलित को गली–मोहल्लों की सफाई और जूते बनाने के लिए अनपढ़ रखना चाहता है। इसी तरह आत्मकथा 'अपने–अपने पिजंरे' में जब पी.टी. इंस्ट्रक्टर स्कूल में वर्दी मुआयना करते हैं तो लेखक और उनके दलित साथियों का अपमान करते हुए कहते हैं– ''अबे तुमसे पढ़ने के लिए कौन कहता है। बस जुते–चप्पल बनाओं और आराम से रहो। चले आते हैं ससुरे न जाने कहां–कहां से।''[66]

शिक्षकों को ऐसा घिनौना रूप देखकर शिक्षक नाम पर विचार करने की जरूरत लगती है। शिक्षक को गुरू की पदवी दी जाती है और उसी का ऐसा रूप देखने को मिलता है। दलित बस्तियों में शिक्षा का माहौल वैसे ही कम रहता है। अगर कोई पढ़ना चाहे तो दलित और सवर्ण उसकी टांग खींचने में लगे रहते हैं। यही सब डॉ. उमेश कुमार सिंह के साथ शिक्षा ग्रहण करने के दौरान हुआ था– ''बुद्दिका और स्याही में सवर्ण छात्र पेशाब कर देते थे। शिक्षक उन्हें अधिक मारते, बात, बात पर बुरी तरह से पीट डालते थे। दलित छात्र अगर कभी शिकायत भी करे तो उनकी कौन सुनने वाला था।''[67] शिक्षा ग्रहण करने में भी दलितों को सवर्णों और शिक्षकों से दो चार होना ही पड़ता था।

डॉ. तुलसीराम द्वारा लिखित 'मुर्दहिया' अपशकुन से शिक्षा तक के सफर को वर्णित करती है। शिक्षा से कौनसा परिवर्तन हो सकता है इसका आदर्श उदाहरण 'मुर्दहिया' प्रस्तुत करता है। दलित होने के नाते समाजिक बहिष्कार और एक आंख से अन्धा होने के कारण

पारिवारिक उपेक्षा के शिकार तुलसीराम दोहरी मार झेलते हैं। ज्ञान और शिक्षा पाकर वे जिस मुकाम तक पंहुच चुके हैं जो उनके लिए बहुमूल्य है। हमारे देश की शिक्षा व्यवस्था निजीकरण के दौर से गुजर रही है और सरकारी नीतियां, प्राथमिक शिक्षा से उच्च शिक्षा तक नकारात्मक बनती जा रही है। 'मुर्दहिया' को पढ़ते हुए इसका एहसास हो जाता है कि हमारे देश मे प्रतिभा को निखारने के लिए उचित शिक्षा तंत्र की आवश्यकता है। आत्मकथा में जाति बदलकर रहने का प्रकरण सामने आता है– ''जातिगत यथार्थ के कारण बार–बार नए कमरे की तलाश में मैं दोहरा जीवन जीने लगा था मैं विश्वविद्यालय में दलित होता था और शहर के कमरे में आते ही 'शर्मा जी' बन जाता था''[68]

दलित आत्मकथाएं व्यक्तिगत होते हुए भी सामाजिक होती हैं। एक सामान्य व दलित बालक शिक्षा के मंदिर में अलग–अलग व्यवहार पाता है। दलित बालक शिक्षक के दो रूप देखता है एक सवर्ण के लिए दूसरा दलित के लिए। दलित अक्षर ज्ञान को हासिल करने में कदम–कदम पर अपमान का शिकार होता है। श्योराज सिंह बेचैन हो या टाकभौरे या डॉ. उमेश कुमार सिंह। सभी की पीड़ा काफी हद तक एक सी लगती है। लगन, जुनून और सहन करने की भावना समान रही है।

डॉ. उमेश कुमार सिंह की आत्मकथा 'दुख–सुख के सफर में' दलित समाज की कथा रही है। इस आत्मकथा में दलित वर्ग, दलित समाज केन्द्र में रहा है दलित समाज की गरीबी हिन्दू समाज की देन रही है। आत्मकथा में आत्मकथाकार का बचपन, जन्म, बीमारी, समाज परिवेश और शिक्षा के अलावा कर्ज गरीबी आम दलित आत्मकथाओं से बिल्कुल अलग है। दलितों, पिछड़ों के लिए शिक्षा किसी मजाक से कम नहीं रही है। दलितों में शिक्षा का माहौल बिल्कुल भी नहीं होता। स्कूलों में भी जातिदंश बना रहता है। आत्मकथाकार ने भी जातिदंश को भोगा है आत्मकथा के कुछ अंश– ''सवर्ण छात्र ठाकुर के यहां ठहरते हैं, दलित छात्र गंदी नाली के चबुतरे पर रहते हैं। पानी जब चाहे पी लेना संभव नहीं है। इन्हें पानी के लिए सवर्ण बच्चों का इंतजार करना पड़ता था।''[69] जयप्रकाश कर्दम लिखते हैं कि ''विषम परिस्थितियों से जूझते हुए भी हमने क्या मुकाम हासिल किया है दलित आत्मकथाओं में यह बताना सही है बहुत से लोगों के लिए साथ–साथ दूसरों के लिए क्या किया है क्या दिया है इसका उल्लेख भी होना चाहिए।''[70]

दलित आत्मकथाकारों की ही तरह सुशीला टाकभौरे को शिक्षा ग्रहण करने में जद्दोजहद करनी पड़ी है– ''कक्षा में शिक्षकों की उपेक्षा और अपमान से मेरा मन दुखी हो जाता था। स्कूल के शिक्षक, गांव के सवर्ण हिन्दू महाजनों का बहुत सम्मान करते थे उसी प्रकार उनके बच्चों को भी मान सम्मान देते थे। अछूत बच्चे उपेक्षा के पात्र रहते। सवर्ण सम्पन्न घरों के बच्चों को सजा से छुटकारा तुरन्त मिल जाता था। गरीब पिछड़े, अछूत वर्ग के बच्चे घंटों सजा

भोगते, मानो गुरूजी उन्हें सजा देकर भूल गये हों। बच्चे रोने लगते तब जैसे गुरुजी को याद आता और वे कहते– अच्छा, अच्छा..... ठीक है ठीक है..... बैठ जाओं मेरी सजा ऐसी ही लम्बी होती थी।''[71] शिक्षा में भी दलितों के साथ दुर्व्यवहार होता था। यहां भी सवर्ण हमेशा ही आगे रहते थे। दलित आत्मकथाओं की तुलना की बात करे तो सभी आत्मकथा लगभग एक जैसे ही रही है। 'दोहरा अभिशाप' आत्मकथा में आत्मकथाकार के साथ कम दुर्व्यवहार रहा है। समाज में भी दलित होने का दंश ज्यादा नहीं भुगतना पड़ा। वहीं स्कूल में भी शिक्षकों का व्यवहार ठीक ही रहा है। बल्कि दलित आत्मकथाकारों को जाति और शिक्षा के नाम पर सवर्ण समाज और शिक्षकों से दो चार होना ही पड़ा। लेखिका को वैसे तो अन्य दलित आत्मकथाकारों की तरह शिक्षकों से कोई कटु वचन सुनने और बिना वजह मार खाने के उदाहरण नहीं मिले। लेकिन शिक्षिका उनसे काम लेती थी जबकि अन्य विद्यार्थियों से कुछ नहीं कहती थी। कुछ भी करना होता तो लेखिका से ही करने को कहती। लेखिका को हमेशा इस बात का डर लगा। रहता था कि कहीं उसकी जाति का भेद न खुल जाए। यहां पर लेखिका को वैसा संघर्ष नहीं करना पड़ा जैसे बाकी दलित आत्मकथाकारों को करना पड़ा।

उपरोक्त आत्मकथाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि भारतीय वर्ण व्यवस्था ने दलित जाति रूप में समाज के एक बड़े समुदाय को समस्त मानवीय, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा अधिकारों से हजारों वर्षों तक वंचित रखने का अमानवीय कार्य किया। शिक्षा पद्धति के विरूद्ध भी अपना आक्रोशपूर्ण विरोध दर्ज कराते हुए दलित समाज में शिक्षा के महत्त्व को रेखांकित किया है। अपने–अपने अनुभवों के आधार पर आत्मकथाकारों ने जाति, शिक्षा, रूढ़ि, अंधविश्वास और गलत रीति रिवाज पर गहरा आक्षेप किया है।

जहां 'दोहरा अभिशाप' से हम भिन्नता की बात करे तो इसमें 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा से काफी ज्यादा भिन्नता नजर आती है। 'दोहरा अभिशाप' की लेखिका गरीबी के दौर से नहीं गुजरी है जबकि 'शिकंजे का दर्द' की लेखिका ने अपने जीवन में गरीबी का दौर देखा है। 'दोहरा अभिशाप' की लेखिका के नाना साहूकार थे और जिस घर में गरीबी नहीं होती वहां आधी समस्या वैसे ही समाप्त हो जाती है।

वहीं दूसरी और 'शिकंजे का दर्द' में लेखिका का परिवार बहुत गरीब था उनकी नानी गांव में दाई का काम करती थी लेखिका बताती हैं कि ''नानी को गांव का काम पैतृक दाय के रूप में मिला था। दिनभर कड़ी मेहनत करने बाद रूखा, सुखा, जूठा पाना ही उसका प्राप्य था। नानी अपने काम से अपने स्थिति से और मजबूरी से दुखी थी।''[72] वहीं 'दोहरे अभिशाप' में शिक्षा के बतौर कोई संघर्ष नहीं करना पड़ा 'शिकंजे का दर्द' में लेखिका को शिक्षा के लिए शिक्षकों, सवर्ण समाज यहां तक की दलित समाज से भी दो चार होना पड़ा। 'दोहरे अभिशाप' की लेखिका को जाति के नाम पर भी जलील नहीं होना पड़ा जबकि 'शिकंजे का दर्द' की

लेखिका को जाति के नाम पर जन्म से लेकर, यहां तक की कॉलेज प्राध्यापिका बनने तक भी जाति के नाम पर अपमान सहे हैं। 'दोहरे अभिशाप' में जहां ससुराल के अन्य व्यक्तियों द्वारा प्रताड़ित करने का कहीं कोई जिक्र नहीं है जबकि 'शिकंजे का दर्द' में सास, ननद द्वारा भी उनको प्रताड़ित किया गया। सुशीला जी बताती हैं– ''मेरी सास ननद ने मुझे बहुत सताया, मेरे साथ मनमाना बुरा व्यवहार किया, हमेशा मेरे लिए बैर–भाव रखा। सास, ननद मेरे पति को मेरे विरूद्व भड़काकर झगड़ा करवाती।''[73]

समानता भी रही है दोनों आत्मकथाओं में लेखिकाएं अपने पति से संघर्ष करती नजर आती है। हालांकि कारण दोनों में अलग–अलग है। 'दोहरे अभिशाप' की लेखिका बताती है– ''देवेन्द्र कुमार को पत्नी सिर्फ खाना बनाने और अपनी शारीरिक भूख मिटाने के लिए चाहिए थी। दफ्तर के काम और लिखना यही उसकी चिंता थी। मुझे किसी चीज की जरुरत है उसका उसने कभी ध्यान नहीं दिया।''[74] 'शिकंजे का दर्द' में भी लेखिका पति के व्यवहार से दुखी है वे बताती है कि– ''स्कूल से या बाहर से आने के बाद कभी–कभी टाकभौरे जी मेरे सामने पैर आगे बढ़ा देते। मेरा ध्यान न रहने पर हाथ से ईशारा करके जूते उतारने के लिए कहते। मैं चुपचाप उनके पैरों के पास बैठकर, जूते उतारती, मोजे उतारती यह बात मुझे अजीब लगती थी।''[75] इन दोनों आत्मकथाओं में लेखिकाओं ने, पति के दुराचार सहन किया। लेकिन 'दोहरे अभिशाप' में लेखिका संघर्ष करने के बजाय कानूनी शरण लेती है और तलाक की मांग करती है। अगर वे संघर्षशील नारी होती तो वे परिवर्तन लाती जिस प्रकार से 'शिकंजे का दर्द' की लेखिका ने किया। इसमें लेखिका अपने पति से संघर्ष करती नजर आती है। हर बार अपने हक की मांग करती है। अंत में अपना हक लेकर रहती हैं। एक शिक्षित होने का सबसे बड़ी मिशाल समाज के सामने प्रस्तुत की है। 'दोहरे अभिशाप' की लेखिका अपने पति से मात्र छुटकारा चाहती है।– उससे लड़ना नहीं चाहती। डॉ. धर्मवीर लेखिका पर आरोप लगाते हुए लिखते हैं। ''यदि वे अच्छे हाथ–पांव लेकर भी द्विज नारी की तरह भरण–पोषण पर पलने वाली डायनोसोर की नस्ल की औरत न होती तो दलित कानून का सहारा लेकर अपने जीवन की धारा को पूर्णतया बदल सकती थी। पति के अत्याचार सहने में जो लाचार है वह द्विज नारी है क्योंकि उसके पास ब्राह्मण विवाह की वजह से तलाक लेने का विकल्प नहीं है। लेकिन नारी निठल्ला होकर ही शिकायत कर सकती है कि उसका पति क्रूर है।''[76] स्पष्ट है कि जिस प्रकार दलित स्त्री सवर्ण पुरुषों के द्वारा प्रताड़ित हुई। उसी प्रकार दलितों के द्वारा भी विभिन्न प्रकार के आरोप लगाये जाते हैं।

'दोहरे अभिशाप' और 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथाओं की तरह की एक ओर आत्मकथा है 'मेरी पत्नी और भेड़िया' जिसमें पति पत्नी पीड़ित है। यह तीसरी तरह की आत्मकथा है। पत्नी या स्त्री, पति या पुरुष को भी प्रताड़ित कर सकती है। दलित आत्मकथाओं में यह एक

मात्र ऐसी रचना है जिसमें दलित रचनाकार भी असहमत है। दलित लेखिकाएं धर्मवीर को नारी विरोधी मानती हैं। स्वयं सुशीला जी धर्मवीर को स्त्री विरोधी मानती हैं।

जहां उपरोक्त आत्मकथाओं में महिला चेतना की बात आती है तो ये है कि दोहरा अभिशाप, 'शिकजें का दर्द' आत्मकथा के अलावा पुरुष आत्मकथाओं में महिला चेतना नजर नहीं आती है यहां यह बात सिद्ध होती है कि एक महिला का दर्द सिर्फ एक महिला ही समझ सकती है दलित आत्मकथाकार समाज के सम्पूर्ण दलित समाज की समस्या को दर्शाते हैं लेकिन दलित महिलाओं की क्या स्थिति है? उसको उजागर करने में हिचकते हैं। जब इनको ये पता होता है कि एक दलित के साथ सवर्णों का व्यवहार कैसा होता है? तो ये बात तो बिल्कुल साफ है कि निचले तबके की स्त्री के साथ और भी ज्यादा अमानवीय व्यवहार होता होगा। डॉ. धर्मवीर अपनी आत्मकथा में स्त्री चेतना का वह रूप उजागर करते हैं जो दोनों महिला दलित लेखिकाओं के विपरीत जाता है। ये दलित विद्वान अंबेडकरी चेतना से सम्पन्न हैं लेकिन दलित महिला के दर्द, उत्पीड़न, पति सुख की अनुभूति से मुक्त रहा है। टाकभौरे जहां परिवार में पति से पत्नीगत हक के लिए अकेली लड़ती है, वहीं धर्मवीर पत्नी के हक छीनने वाले साबित होते हैं। दलित लेखकों में धर्मवीर एकमात्र विवादास्पद आत्मकथाकार रहे हैं जो टाकभौरे के विपरीत हैं, दूसरे छोर पर हैं। 'मेरी पत्नी और भेड़िया' में वे हर पाठ में पत्नी को दोषी, अपराधी और कटघरे में खड़ा करते हैं। वे स्वयं जज की भूमिका में पत्नी को दोषी करार देते हैं ऐसे में वे महिला विरोधी और टाकभौरे की तुलना में एक पक्षीय लगते हैं। अन्य दलित आत्मकथाओं महिला या पत्नी का जिक्र नहीं आता है। अधिकांश रचनाओं में जाति उत्पीड़न, उपेक्षा और भेदभाव के दंश होने से महिला चेतना का अभाव रहा है। बैसंत्री एक मात्र आत्मकथाकार है जिनकी महिला चेतना तुलनीय है लेकिन वे दूसरे स्तर की महिला है जो पति से मुक्ति चाहती है जबकि टाकभौरे पति के साथ रहकर लड़ती है। इस अर्थ में टाकभौरे का संघर्ष सामाजिक व दलित महिला चेतना के कई आयामों से ओत–प्रोत है। टाकभौरे न केवल धर्मवीर अपितु बैसंत्री से अधिक महिला चेतना से ओत–प्रोत रही है। यह रचना दलित महिलाओं में जीने का जज्बा, सघंर्ष ही चेतना भरती है तो 'मेरी पत्नी और भेड़िया' स्त्री विरोधी रचना के रूप में जानी जायेगी। मोहनदास नैमिशराय ने अपने अपने पिंजरे में महिलाओं के भोग्या रूप को ही चित्रित किया है उनकी चेतना नजर नहीं आती। 'दोहरा अभिशाप' 'शिंकजे का दर्द' आत्मकथा चूंकि इनको लिखने वाली महिलाएं है तो स्वाभाविक बात है कि महिला चेतना होगी। इन्होंने समाज के हर पहलू पर ध्यान दिया है जो सराहनीय है।

शिंकजे का दर्द' से तुलनात्मक अध्ययन–

उपरोक्त आत्मकथाओं की अन्तर्वस्तु में ज्यादा अंतर नहीं है। सभी दलित आत्मकथाएं लगभग एक जैसी है इसका कारण यह नहीं है कि उनके जीवनानुभव में कोई भिन्नता नहीं है। बल्कि इसका कारण यह है कि इन सभी का लक्ष्य पाठक एक मानकर लिखने और अपने ऊपर गुजरी कठिनाइयों, उत्पीड़न, सामाजिक व्यवस्था तथा दर्द को सार्वजनिक करने दुःसाहस है जिसमें कुछ असमानताओं के बावजूद इनका जीवनानुभव लगभग एक जैसा है क्योंकि सभी दलित पूरे भारत में कमोवेश एक ही अनुभव से गुजरे हैं। जिसमें जाति उत्पीड़न मुख्य कारक रही है और आर्थिक स्थिति भी सामाजिक स्थिति को बहुत हद तक परिवर्तित नहीं कर पाती। उदाहरण के लिए सुशीला टाकभौरे ने फ्लैट खरीदकर जहां अपार्टमेंट में रहना शुरू किया उसकी पड़ोसन अभी भी उन्हें झाड़ू वाली मानती है जैसा कि उन्होंने स्वयं लिखा कि वे पीएचडी कर चुकी ऊंची स्थिति और आर्थिक रूप से सम्पन्न और कॉलेज में प्राध्यापिका है। इसका अर्थ यह है कि शिक्षा आर्थिक स्थिति और सामाजिक हैसियत को बनाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। लेकिन सामाजिक स्थिति तथा जाति का दंश अभी भी समाज में विद्यमान है।

सभी दलित आत्मकथाओं में 'शिंकजे का दर्द' की तरह ही जातीय दंश सामाजिक संघर्ष, गरीबी छुआछूत शिक्षा के लिए संघर्ष अंधविश्वास नजर आता है। लेकिन यहां असमानता भी नजर आती है। एक पुरुष और एक दलित महिला चेतना में अन्तर रहा है। जो 'शिकंजे का दर्द' में उजागर होती है 'शिंकजे का दर्द' आत्मकथा में एक महिला के दर्द को व्यक्त किया है। जहां पुरुष भी उसका शोषण करता है। वह दोहरे शोषण का शिकार होती है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था की शिकार हमेशा महिला ही रही हैं न कि पुरुष। इस तरीके से स्त्री की पीड़ा दोगुनी हो जाती है। महिला का शोषण समाज परिवार हर तरीके से करता है। एक महिला के लिए शिक्षा पाना बहुत ही मुश्किल है जो कि 'शिंकजे का दर्द' में बताया गया है। हर जगह समानता हो सकती है लेकिन जहां पुरुष और महिला की बात आती है तो असमानता के कुछ महिलागत तत्व नजर आते हैं। दलित आत्मकथाकारों ने दलित समाज का खुद का, अपने घर का चित्रण किया है लेकिन एक दलित महिला की बेबसी को नकारा है वही बेबसी और संघर्ष 'शिंकजे के दर्द' में नजर आती है। बाकी दलित आत्मकथाओं में नारी के लिए कहीं कोई चेतना नजर नहीं आती। जबकि आत्मकथाकारों को ये भी पता होता है कि समाज में स्त्री की दशा है वो किस तरह संघर्षरत है फिर भी स्त्री को नजरअंदाज किया है। 'शिंकजे के दर्द' आत्मकथा में लेखिका ने स्त्रियों को मजबूरियों से बाहर निकलने के लिए प्रोत्साहित किया है। उन्होंने कहा है कि आधुनिक युग मजबूरियों से बाहर निकलने का युग है। समय की मांग के अनुरूप स्त्रियों को भी साहस और हिम्मत के बल पर सोने की जंजीरों को तोड़ना होगा। मुक्त होना ही होगा। नारीत्व की नैतिकवादी परिभाषाओं को युगानुरूप परिभाषित करना होगा। तसलीमा नसरीन स्त्री

को समस्त मजबूरियों से मुक्त होने की राह दिखाती हैं ''स्त्री एक बार खुद को खुद की सहायिका समझे। अगर जाल तोड़ना ही है तो स्त्री तोड़े। अगर बंद कमरे की कुन्दी तोड़ना पड़े तो स्त्री ही उसे तोड़ें। लोग उस पर थूकेंगे, लोग उसे दरिद्र कहकर गाली देगे इससे क्या? लोगों की बातों का क्या होता है। इन्हीं लोगों के मुंह पर स्त्रियां थूंकने की आदत डाले? स्त्री इन्हीं लोगों के चेहरे पर कालिक पोतने की आदत डाले।''[77] ऐसा ही 'शिकंजे के दर्द' आत्मकथा में देखने को मिला।

निष्कर्ष–

प्रारम्भिक आत्मकथाओं में जहां व्यक्ति महत्वपूर्ण होता था, वहीं दलित आत्मकथाओं में लेखकों के व्यक्तिगत जीवन एवं उनके समाज का आईना है। इन आत्मकथाओं में एक ओर मर्मांतक पीड़ा है तो दूसरी ओर सवर्णवादी आंतक लेखक का जीवन संघर्ष है तो सामाजिक आन्दोलन और स्वाभिमान की लड़ाई भी। दलित साहित्य में आत्मकथाओं का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इसके साथ ही महिलाओं ने भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। दलित आत्मकथाएं जीवन की जिस विद्रूपता को समाज के सामने लाती है। वहां तो दलित लेखक सबसे पहले स्वयं को ही नग्न करता है। महिमामंडन की तो वहां गुंजाइश ही नहीं रहती है। दलित लेखकों ने अपने जीवन के जातीय दंशों से उपजी शोषण की विभिषिका को अभिव्यक्त किया है। जिससे जातिव्यवस्था की अमानवीय विद्रूपता सामने आई है। किसी भी गैर दलित आत्मकथाकार में यह दिखाई नहीं देता है। इसके संदर्भ में प्रेमसिंह कहते हैं। ''दलित को मनुष्य नहीं मानने के लिए इस तरह का सामाजिक, आर्थिक धार्मिक, सांस्कृतिक तन्त्र रचा गया है कि उसे मनुष्य बनने न दिया जाए। दलित साहित्यकार अपनी आत्मकथा और दूसरी ज्यादातर रचनाओं में इसी पीड़ा की अभिव्यक्ति करता है। वह इस पीड़ा को पैदा करने और बनाए रखने वाली संरचनाओं, संस्थाओं, ताकतों का चित्रण और प्रतिरोध दोनों करता है। अपनी निःसहायता बेबसी और आक्रोश का भी।''[78] टाकभौरे की आत्मकथा अनूठी, बेजोड़ और जरुरी रचना है। दलित आत्मकथाओं में महिला चेतना गौण रही है या डॉ. धर्मवीर महिला विरोधी, पत्नी विरोधी रूख अख्तियार किये रहे हैं इस अर्थ में आलोच्य आत्मकथा का महिला चेतना का एक मात्र रचना के रूप में जानी पहचानी जायेगी। महिला दलित होते हुए भी समाज, परिवार और पति से अपने हक हासिल करती है।

✦✦✦

सन्दर्भ सूची–

1. हंस पत्रिका अप्रैल 2011, पृ.सं. 37 (अक्षर प्रकाशन)
2. शिंकजे का दर्द– मनोगत, पृ.सं. 3
3. शिंकजे का दर्द– मनोगत, पृ.सं. 13
4. वहीं से, पृ.सं. 17
5. वहीं से, पृ.सं. 16
6. वहीं से, पृ.सं. 16
7. शिंकजे का दर्द, पृ.सं. 19
8. शिंकजे का दर्द, पृ.सं. 19
9. वहीं से, पृ.सं. 22
10. शिंकजे का दर्द, पृ.सं. 35
11. वहीं से, पृ.सं. 26
12. स्त्री मुक्तिः साझा चुल्हा– अनामिका– पृ.सं. 28
13. शिंकजे का दर्द– पृ.सं. 42
14. शिंकजे का दर्द, पृ.सं. 116
15. वहीं से, पृ.सं. 107
16. शिंकजे का दर्द, पृ.सं. 107
17. शिंकजे का दर्द, पृ.सं. 115
18. स्त्री–उपेक्षिता–सीमान बोडआर (अनु.प्रभाखेतान) पृ.सं. 17
19. स्त्री–विमर्श के प्रश्न और महादेवी वर्मा पृ.सं. 127
20. महादेवी रचना संचयन– निर्मला जैन– साभार
21. स्त्री उपेक्षिता– सीमोन बोडआर (अनु. प्रभा खेतान) पृ.सं. 309
22. शिंकजे का दर्द, पृ.सं. 143
23. लेखिकाओं की दृष्टि में महादेवी वर्मा सं. चन्द्रा सदायत– भूमिका से
24. शिंकजे का दर्द– पृ.सं. 177
25. शिंकजे का दर्द, पृ.सं. 186
26. मधुमती अगस्त–सितम्बर 1999 पृ.सं. 115 (स्त्री–दर्द के कथन)
27. शिकंजे का दर्द– पृ.सं. 269
28. लेखिकाओं की दृष्टि में महादेवी वर्मा– सं. चन्द्रा सदायत पृ.सं. 116
29. श्रृंखला की कड़िया– महादेवी वर्मा– पृ.सं. 15

30. हंस– अक्टुबर–2003 पृ.सं. 42
31. स्त्री उपेक्षिता– सीमोन बोडआर (अनु. प्रभा खेतान) पृ.सं. 322
32. कौशल्या बैसन्त्री, दोहरा अभिशाप, परमेश्वरी प्रकाशन दिल्ली– पृ.सं. 20
33. शिंकजे का दर्द, पृ.सं. 24
34. शिंकजे का दर्द, पृ.सं. 16
35. नरदंश– राकेश वत्स– पृ.सं. 267
36. दोहरा अभिशाप– कौशल्या बैसन्त्री, परमेश्वरी प्रकाशन नई दिल्ली– पृ.सं. 56
37. हंस पत्रिका, दलित विशेषांक अंक–1 अगस्त 2004 संपादक राजेन्द्र यादव दिल्ली– पृ.सं. 70
38. कौशल्या बैसन्त्री दोहरा अभिशाप, परमेश्वरी प्रकाशन दिल्ली 110092, प्रथम संस्करण 1999 पृ.सं. 7
39. शिंकजे का दर्द, पृ.सं. 144
40. आओ पेपे घर चले–प्रभा खेतान– पृ.सं. 35
41. आदमी की निगाह में औरत– राजेन्द्र यादव पृ.सं. 62
42. शिंकजे का दर्द, पृ.सं. 21
43. शिंकजे का दर्द, पृ.सं. 28
44. श्रृंखला की कड़ियां–महादेवी वर्मा पृ.सं. 21
45. वहीं से– पृ.सं. 33
46. शिंकजे का दर्द, पृ.सं. 09
47. श्रृंखला की कड़ियां– महादेवी वर्मा– पृ.सं. 54
48. हंस मासिक पत्रिका, अप्रैल 2011 पृ.सं. 37
49. हंस त्रैमासिक पत्रिका, अगस्त 2004 पृ.सं. 106
50. मोहनदास नैमिशराय, अपने–अपने पिंजरे भाग–2 भूमिका
51. वहीं से पृ.सं. 11
52. ओमप्रकाश वाल्मीकि, जूठन पृ.स. 15
53. श्यौराज सिंह बेचैन, मेरा बचपन मेरे बंधों पर पृ.सं. 11
54. दोहरा अभिशाप, कौसल्या बैसन्त्री पृ.सं. 27
55. अपने–अपने पिंजरे मोहनदास नैमिशराय पृ.सं. 22
56. भारत में जाति प्रथा जे. एच. हटन पृ.सं. 45
57. ओमप्रकाश वाल्मीकि, जूठन पृ.सं. 11–12
58. मेरा बचपन मेरे कंधों पर, श्योराज सिंह बैचेन पृ.सं. 12

59. शिकंजे का दर्द सुशीला टाकभौरे पृ.सं. 19
60. दोहरा अभिशाप, कौसल्या बैसन्त्री पृ.सं. 31
61. डॉ. रमेशचन्द मीणा (एक दलित छात्र के जीवन का सच–लेख) पुस्तकवार्ता पृ.सं. 48
62. अपने–अपने पिंजरे मोहनदास नैमिशराय पृ.सं. 51
63. ओमप्रकाश वाल्मीकि, जूठन पृ.सं. 35
64. हंस पत्रिका अप्रैल 2011 पृ.सं. 40
65. सूरजपाल चौहान, तिरस्कृत पृ.सं. 13
66. मोहनदास नैमिशराय, अपने–अपने पिंजरे पृ.सं. 76
67. दुख सुख के सफर में, डॉ. उमेश कुमार सिंह पृ.सं. 54
68. मुर्दहिया, तुलसीराम पृ.सं. 41
69. डॉ. रमेशचन्द मीणा (एक दलित छात्र के जीवन का सच–लेख)
पुस्तकवार्ता पृ.सं. 47–48
70. हंस पत्रिका अप्रैल 2011 पृ.सं. 37
71. शिकंजे का दर्द सुशीला टाकभौरे पृ.सं. 21
72. शिकंजे का दर्द सुशीला टाकभौरे पृ.सं. 22
73. वहीं से पृ.सं. 146–147
74. हंस पत्रिका, दलित विशेषांक अंक 1, अगस्त 2004 संपादक– राजेन्द्र यादव पृ.सं. 70
75. शिकंजे का दर्द सुशीला टाकभौरे पृ.सं. 143
76. हंस दलित विशेषांक अप्रेल– 11 पृ.सं. 48
77. औरत के हक में–तसलीमा नसरीन पृ.सं. 136
78. प्रेमसिंह अपेक्षा 4 जुलाई–सितम्बर 2003 नई दिल्ली

आठवां अध्याय

सुशीला टाकभौरे के साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र

8. सुशीला टाकभौरे के साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र–

(अ) यथार्थ बोध–

दलित साहित्यकार हिन्दी साहित्य में यथार्थ अभिव्यक्ति को आत्मभिव्यक्ति ही स्वीकार करते हैं। कंवल भारती कहते हैं कि उनके लेखन में आपबीती का इजहार है। जिसे स्वानुभूति मानते हैं। यह उस यथार्थ का लेखन है जिसका व्यक्तिगत रूप लेखक होता है दलित साहित्य ही दलितों की वास्तविकता है। दलित साहित्य को समझाते हुए शरण कुमार लिम्बाले कहते हैं– ''दलित साहित्य के तीन सूत्र है– पहला हजारों बरसों से ये समाज जिसे जी रहा है। वह वेदना दलित साहित्य का प्रमुख अंग है पूरे दलित साहित्य में वेदना दिखाई पड़ेगी। दूसरा सूत्र है नकार कि हम यह जिन्दगी नहीं चाहते, हम इंसान की जिन्दगी चाहते हैं। नकार के बाद तीसरा स्टेज है– विद्रोह। इस व्यवस्था को नष्ट करने की बात आती है। कि समता स्वतन्त्रता, न्याय, बंधुत्व के रूप में जो भी समाज आएगा वो समाज हमारा होगा। हमें जो अछूत बनाता है, दोयम स्थान देता है वो हमारा नहीं है।''[1] दलित साहित्य यानि दलितों के द्वारा दलितों के विषय में किया गया लेखन है। दलित साहित्य मुख्यधारा के समाज की गुलामी से अवगत करता है और उसके विरूद्ध संघर्ष करने के लिए प्रेरित करता है। दलित लेखकों ने अपने साहित्य की जनवादी, यथार्थवादी के साथ–साथ ही दलित साहित्य के अलग सौन्दर्यशास्त्र की मांग भी की है। इसका अर्थ यह हुआ कि ''जहां दलित लेखक पारंपरिक सौन्दर्यशास्त्र को नकारता है वहीं अपने साहित्य के लिए अलग सौन्दर्यशास्त्र की जरूरत को भी स्वीकारता है।''[2]

दलित साहित्य ने नकार और विद्रोह को अपनाया है। यह नकार और विद्रोह अपने ऊपर लादी गई अमानवीय व्यवस्था के विरूद्ध है। ''जिस प्रस्थापित विषम व्यवस्था ने दलितों का शोषण किया, उस व्यवस्था को दिया गया यह नकार है। इस नकार का स्वरूप दुधारी है। यह विषय व्यवस्था को नकारते हुए समता, स्वतंत्रता, न्याय और बंधुत्व की मांग करने वाली सोच है। इसलिए यह ध्यान में रखना चाहिए कि दलित साहित्य में नकार–यथार्थ परक विधायक दृष्टि रखने वाला न्यायपरक प्रतिकार है।''[3] लेकिन ये ही यथार्थवाद की पहचान हैं।

दलित साहित्य का उद्देश्य एक वैकल्पिक संस्कृति और समाज में दलितों की एक अलग पहचान सृजित करना है। दलित लेखन किसी समूह किसी जाति विशेष, सम्प्रदाय के खिलाफ नहीं है। लेकिन व्यवस्था के विरूद्ध है चाहे वह सरकारी सामाजिक, धार्मिक संस्था की व्यवस्था हो, जो अपनी सोच और दृष्टिकोण से दलितों का शोषण और दमन करती हो। दलितों के यथार्थ की बात करे तो दलितों की सबसे प्राथमिक आवश्यकता अपनी अस्मिता की तलाश

करना है, जो हजारों साल के इतिहास में दबा दी गई है। सामाजिक जीवन में एक दलित को जिस तरह मानसिक प्रताड़ना वहन करते हुए जीना पड़ता है उसे केवल भुक्तभोगी ही जान सकता है। एक दलित की भोगी हुई पीड़ा और वेदना उसकी रचनाधर्मिता की संवेदना इन आलोचकों सम्पादकों को स्पर्श नहीं करती। इसलिए उन्हें यह सब बनावटी लगता है। ''दलित लेखकों की प्रतिबद्धता की भावना, उनकी दलित चेतना, उनकी भाषा और यथार्थ चित्रण ही दलित साहित्य को सवर्ण साहित्य से अलग कर देता है।''[4] दलित लेखकों के सामने वर्तमान चुनौतियों को लेकर लिम्बाले का कहना है– ''इण्डिया इक्कीसवीं सदी में जा पहुंचा है और बहिष्कृत भारत आज भी पंद्रहवीं सदी में जी रहा है। आज भी दलित पीने के पानी के लिए कुंए तक नहीं जा सकते हैं। सांप को ईश्वर मानते हैं, दूध पिलाते हैं, लेकिन दलित का स्पर्श भी अपराध है।''[5] यह वर्तमान सवर्ण समाज का यथार्थ है।

सुशीला टाकभौरे के साहित्य में हम यथार्थ की ही बात करे तो उनके साहित्य में उनका भोगा हुआ विवरण है। तो भोगे हुए में कल्पना का सार तो हो ही नहीं सकता। दलित जो सदियों से ही हाशिए पर रहे हैं। उनकी उन्नति के सारे रास्ते सवर्णों द्वारा बन्द कर दिये गये। सुशीला जी का साहित्य यथार्थ से भरा हुआ हैं। समाज में जो भी दलितों के शोषण हुए है लेखिका उनमें खुद भी शामिल हैं। यथार्थवाद पर बात करते हुए कंवल भारती लिखते हैं कि ''साहित्य में यथार्थवाद के जनक दलित रचनाकार रहे हैं दलित साहित्य ने ही यथार्थ के धरातल पर सवर्ण साहित्य को चुनौती दी हैं।''[6]

सैकड़ों वर्षों से इस देश के दलित वर्ण व्यवस्था के शिकार रहे हैं दलितों को हमेशा से पीसा और रौंदा जाता रहा है। वर्षों तक देश के दलित इस गुलामी से छुटकारा नहीं पा सके। वर्ण–व्यवस्था की गुलामी से छुटकारा डॉ. बाबा साहब ने ही दिलाया है। उन्होंने इस देश के दलितों को नई अस्मिता प्रदान की। उसी को लेकर दलितों में जाग्रति आने लगी। ''प्रगतिशील लेखकों द्वारा दलित समाज का ठीक–ठाक व सकारात्मक चित्रण न करने के कारण दलित लेखक उनके लेखन से अपनी सहमति प्रकट नहीं करता। दलित लेखक भोगा हुआ यथार्थ लिखता है। भोगा हुआ यथार्थ, उनकी भाषा और सामाजिक संदर्भ में उसका व्यक्त होना ही दलित–लेखन में महत्वपूर्ण है।''[7]

गैर दलित लेखकों की शुरू से ही मानसिकता रही है कि समाज में कितने अत्याचार, बलात्कार या घिनौने काम होते रहे, उस पर कलम कतई न चले। ये समाज के सच्चे यथार्थ पर चुप्पी साध कर रह जाते हैं। जबकि दलित साहित्यकार इसके विरोध में उठ खड़ा होता है। गैर दलित लेखक को दलित जीवन से सच्चे यथार्थ में भी इन्हें नंगापन व घिन दिखाई देती है।

जहां दलित साहित्य के लेखन के यथार्थ की बात करें तो दलित साहित्य को पुरुष प्रधान कहा जाता है क्योंकि उसमें दलित स्त्री का नहीं बल्कि दलित पुरुष का दर्द और यथार्थ ही ज्यादा होता है। इसके जवाब में लिबांले कहते हैं– ''दलित पुरुषों का समाज भी ऐसा है कि स्त्री को शिक्षा नहीं दी जाती। आन्दोलन में भी पुरुष ज्यादा हैं मराठी में दलित महिलाएं लिख तो रही हैं पर पुरुष लेखक ही ज्यादा हैं। दलित महिला दलित पुरुष से ज्यादा गुलाम हैं। एक तो जाति व्यवस्था की शिकार हैं, दूसरा पुरुष प्रधान व्यवस्था की या पति की शिकार भी रही है। ज्यादातर अन्याय दलित स्त्री पर ही होते हैं।''[8] अगर दलित स्त्री का लेखन भारी पैमाने में आए तो दलित साहित्य का रूप सचमुच कुछ अलग होगा। गेल ओमवेट के अनुसार– ''दलित साहित्य में न केवल हिन्दू समाज की विकृतियों और ज्यादतियों की आलोचना की बल्कि साथ ही हिन्दू धर्म पर प्रहार भी किया। उनका कहना था कि यह ब्राह्मणवादी समाज है, जो जातियों में बंटा हुआ है और अतार्किक है। उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि हिन्दू संस्कृति में नहीं था बल्कि सारा धर्म जबरदस्ती लादा हुआ है।''[9] यदि दलित शोषण से बचना चाहते हैं तो इस बात की आवश्यकता है कि नीची जातियां इस लादे हुए धर्म को नकार दें।

दलित साहित्य में जितना यथार्थ आत्मकथा में है उतना अन्य विधाओं में नहीं हैं। इसमें व्यक्तिगत अनुभव खुद का भोगा यथार्थ निहित है कांचा ऐलय्या का कहना है– ''आत्मकथा ऐसा लेखन है जो व्यक्तिगत अनुभव से उपजा हो, आश्यचर्यजनक ढ़ंग से सच्चाई को सामने लाता है। अम्बेडकर और पेरियार ने दलित बहुजन समाज के रोजाना के अनुभवों को वाणी दी है और उन पर लिखा है। छायावाद में निज वेदना के सामने समाज देश की पीड़ा और दुख सुख दर्द गौण था। इसके विपरीत दलित साहित्य समाज के दुख दर्द से जूझकर मनुष्य की लड़ाई लड़ता है। यह कोई ईर्ष्या द्वेष या घृणा की बात नहीं है कि भारत की आबादी का बहुलांश पिछड़े, दलित और आदिवासी समूहों से आता है। आध्यात्मिक रूप से नहीं, लोकोचरता के रूप में भी नहीं अपितु वास्तविक रूप में भौतिक यथार्थ के रूप में, अपनी अस्मिता की स्थापना में लगा है। इस बहुलांश को शास्त्रोक्त पारंपरिक और ऐतिहासिक अनुगमन से नहीं, अपितु यथार्थ और वास्तविकताओं के रूप में राष्ट्र और समाज में दलित की संलग्नता की दरकार रहने लगी है।''[10]

दलित साहित्य में यह भी है कि दूसरों के बहाने से नहीं अपितु अपने अनुभवों में आए यथार्थ को व्यक्त करना, अपनी पीड़ा यातना तुच्छताबोध से उबरने के उपाय खोजता दलित लेखन के उद्देश्यों में आते हैं। अपनी पीड़ा को व्यक्त करना मात्र उद्देश्य नहीं है, अपनी पीड़ा के माध्यम से बहुजन की पीड़ा को अभिव्यक्ति देना ही उद्देश्य है। ''दलित काव्य में अनुभव तत्व महत्त्वपूर्ण है। अतः यहां पर यथार्थ और विचार में खींचतान करके संगति बैठाने का व्यायाम नहीं करना पड़ता ।''[11] दलित लेखन से दलित शोषित समाज का विद्रोह मुखरित हुआ है।

जिसे अछूत रहकर सदियों तक मनुष्य जीवन की सभी आवश्यकताओं और सुविधाओं से वंचित रखा गया और जिसे केवल दुख वेदना गुलामी अपमान आसुओं से भरी जिन्दगी बिताने के लिए विवश किया गया। ''हिन्दूधर्म वर्ण व्यवस्था ने जातियों के लिए कटघरों से निर्मित इस समाज व्यवस्था में उसे वह स्थान दिया जो गांवों नगरों के अहातों से दूर था और जहां केवल अन्धकार ही अन्धकार था। उस अन्धकार जीवन से निकालकर उनके जीवन में रोशनी लाने का कार्य डॉ. अम्बेडकर ने किया।''[12]

दलित कविता ने सामाजिक जीवन में गहरें जड़ जमाए बैठी घृणा की जगह सामाजिक समता बन्धुत्व और मनुष्य की स्वतन्त्रता दलित समूह के पक्ष में खड़ी हुई, जो तीन हजार साल की दासता से मुक्ति की आकांक्षा अपने भीतर संजोए हुए था और सामाजिक धार्मिक नियमों और शास्त्र सम्मत वर्जनाओं के सामने अपने आपको बेबस मान बैठा था। दलित चेतना ही है जिसने दलितों की चुप्पी तोड़ी है। जिसने उन्हें मुखर किया और मुक्ति संघर्ष के लिए उनके भीतर एक जज्बा पैदा किया है।

सुशीला जी की दलित कविता में अम्बेडकर विचारधारा के कारण दलित चेतना विकसित हुई है इसके बावजूद भी वर्चस्विता एवं दलित चेतना का द्वन्द्व समाज में उभर रहा है। पुरातन स्थितियां मुखौटे बदलकर फिर हावी हो रही हैं। यही यथार्थ इन पंक्तियों में दर्शित होता है–

''शम्बूक आज भी मारे जा रहे हैं
चल रहे हैं आज भी झूठी कथायें
धूर्त ढ़ोंगी वर्ग आज भी
श्रेष्ठ माने जा रहे हैं।''[13]

हजारों साल के उत्पीड़न, शोषण, सामाजिक विद्वेष, धार्मिक प्रतिबन्धों मानवीय अधिकारों से वंचित दीनहीन दलित नारकीय जीवन को भोग रहा था। जिसके पक्ष में न साहित्य था न धर्म न देवी–देवता न तथाकथित विद्वानजन। उसकी गिनती कुत्ते–बिल्लियों से भी निम्न थी। न वह गांव की बस्तियों में रह सकता था, न गांव की गलियों में एक सामान्य नागरिक की तरह चल फिर सकता था। हजारों साल वह इसी तरह जीता रहा। समाज के सवर्णों ने उसका इस्तेमाल तो किया लेकिन एक जरूरत भर के लिए। इस बीच उसने अनेकों बार संघर्ष करने के लिए कदम बढ़ाए लेकिन धार्मिक प्रतिबन्ध इतने सख्त थे कि हर बार उसे और ज्यादा नरकीयता भोगनी पड़ी। ''डॉ. शरण कुमार लिम्बाले की 'अक्करमाशी' पढ़ते हैं तो ऐसा लगता है कि किसी ने बन्द तहखाने का दरवाजा खोल कर सदियों से दबे रहने को मजबूर यथार्थ के कंकाल बाहर रख दिये हैं जिससे पूरा बाहरी जगत बेखबर था, हांलाकि भारतीय मानस अपने इस कृत्य को अपना अधिकार मानता था।''[14] दलित जो हजारों साल से शोषित, प्रताड़ित,

सामाजिक विद्वेष से नारकीय जीवन जीने के लिए बाध्य किया गया, मानवीय अधिकारों से वंचित, वर्ण व्यवस्था में सबसे नीची पायदान पर खड़ा, अन्त्यज, पंचम कहा जाने वाले व्यक्ति की चेतना यानी दलित चेतना कही जाती है।

दलित लेखक प्रस्थापित परम्परा नकारते हैं लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि दलित लेखकों के पास परम्परा नहीं है। दलित लेखक बुद्व, कबीर, फुले, और अम्बेडकर की परम्परा मानते हैं। ''दलित साहित्य में नकार और विद्रोह दलितों की वेदना के गर्भ से पैदा हुआ है। यह नकार अथवा विद्रोह अपने ऊपर लादी गई अमानवीय व्यवस्था के विरुद्व है। जैसे दलित साहित्य में वेदना समूह स्वर में व्यक्त होने वाले सामाजिक स्वरूप की है, वैसे ही नकार और विद्रोह भी सामाजिक और समूह स्वरूप का है।''[15] लेकिन ये दलित यथार्थवाद की पहचान है।

दलित कविता भाववादी कविता से एकदम भिन्न प्रकार की कविता है इसमें मनोवैज्ञानिक शक्तियां क्रियाशील रहती है। वास्तविकताओं का यथार्थ अनुभव के आधार पर होता है। फिर उन अनुभवों का वैसा ही बाह्मयीकरण होता है। ''कलाकृति का सौंदर्य विश्वचैतन्य अथवा अध्यात्मवादी कहलाता है कलाकृति का सौन्दर्य वास्तविकता की कलात्मक अभिव्यक्ति होती है। यह प्रतिपादित करने वाला सौंदर्यशास्त्र भौतिकवादी अथवा बाह्ययथार्थवादी होता है। दलित साहित्य अध्यात्मवाद और गूढ़वाद को नकारता है। इस कारण यह मानना होगा कि इस साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र अध्यात्मवादी न होकर भौतिकवादी है।''[16]

दलित साहित्य की प्रेरणा डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर का विचार है और दलित साहित्य का सृजन 'दलित चेतना' से हुआ है। यह गुलामी के विरूद्ध चेतना है। इसमें समता, स्वतन्त्रता, न्याय और बंधुभाव आदि मूल्यों का समावेश है। दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र प्रस्तुत करते हुए अम्बेडकरवादी विचार से प्रेरित हुई दलित चेतना महत्वपूर्ण होती है। काल्पनिक और बनावटी अयथार्थवादी साहित्य की भूमिका के स्थान पर जीवनवादी दलित साहित्य ने हंगामा मचाया। ''दलित लेखक की पीड़ा काल्पनिक नहीं है। इस व्यवस्था की उपज है। जो उसके अपने प्रश्न है वे इस पीड़ा दुख दर्द से अलग हटकर नहीं है। इनसे लहू का रिश्ता है। मेरे अनुभवों से मेरा रक्त सम्बन्ध है। इसलिए मैं तटस्थ नहीं रह सकता हूँ। अन्याय सहते हुए तटस्थ रहकर कैसे रियेक्ट करूं। यह तटस्थ भाव मुझे उदासीन भाव लगता है।''[17]

यही दलित यथार्थवादी चेतना है। दलित लेखक यदि कलावाद अपनाएगा तो वह जीवनवादी नहीं हो सकता। दलित लेखक की प्रतिबद्धता जितनी प्रखर है, उस व्यवस्था के, खिलाफ समता, स्वतन्त्रता, न्याय, बन्धुत्व का विचार उसके मन में जितना प्रखर है उतनी ही उसकी कलाकृति अच्छी है। ''दलित लेखक खुद के अनुभव लिखता है, भोगा हुआ यथार्थ लिखता है। महिला का प्रसूति के बारे में बयान डॉक्टर के बयान से हमेशा ही ज्यादा प्रमाणिक

होगा।''[18] दलित का आन्दोलन यथार्थ से जुड़ा आन्दोलन है जो अपनी अस्तिमा और पहचान की तलाश में है।

वर्तमान समय में कविता एक कवि के आत्मसंघर्ष तक ही सीमित नहीं रह गई है। अपितु सामाजिक संघर्ष का हिस्सा भी बन गई है। अब वस्तुगत यथार्थ को अनुभव के हाथों से पकड़ने की जद्दोजहद है। कविता की अभिव्यक्ति जितनी व्यक्तिगत है, उतनी ही या उससे ज्यादा सामाजिक है। यदि और गहराई से देखे तो दलित कविता राजनीति व्यवस्था से भी उतने ही गहरे स्तर पर जुड़ी हुई है। ''दलित कविता में अस्तित्व से परिचय कराने की क्षमता है। चेतना को जागृत कराने का प्रयास है। यह जीवन की विद्रूपताओं के कारणों से लेकर उनके परिवर्तनों की अंतर्निहित शक्तियों को प्रत्यक्ष करके परिवर्तनकारी किसी तंरग क्रम को अनुभवों के संज्ञान में उतारने का प्रयास करती है।''[19]

यहां पर यह जान लेना है कि दलित साहित्य अनायास या भावातिरेक में किया जाने वाला कलात्मक कार्य नहीं है। यहां पर सहज अनुभव विवेक विश्लेषण और प्रत्यक्ष यथार्थ के सम्मिश्रण से तैयार पदार्थ से साहित्य में कलात्मक कार्य किया जाना है। दलित साहित्य में अनुभव सत्य को साहित्यिक सौन्दर्य के रूप में स्वीकार किया गया है। जहां पर दलित कविता जन्म लेती है। सबसे पहला स्थल अनुभव का है। अनुभव की स्मृति है। क्रूरता को झेलने रहने की इतिहास–स्मृति है। भोगे हुए यथार्थ का स्मृति बोध है। दलित कविता में जो कुछ है वह ठोस यथार्थ है। दलित कविता भाववादी कविता से एकदम अलग प्रकार की कविता होती है। ''दलित कविता में शब्दों के माध्यम से भाव प्रकट करने के स्थान पर आशय को प्रकट करने का प्रयास किया जाता है दलित जीवन के संघर्ष का, जिसमें सामाजिक, आर्थिक धरातल पर झेले जा रहे यथार्थ के साथ मानसिक उत्पीड़न से मुक्त होने के लिए किया गया चिंतन मनन भी है, उसका चित्रण यहां पर किया जाता है।''[20]

दलित साहित्य में सामाजिक विसंगतियों, विद्रूपताओं और विडम्बनाओं को इस सजगता के साथ व्यक्त किया गया है कि जो सामाजिक वर्ग इस सामाजिक असंगत अस्वीकार्य और अमानवीय स्थिति के लिए जिम्मेदार है, वह भी इसकी मुखरता को आत्मसात करके सामाजिक परिवर्तन के विषय में सोचने लगेगा। दलित साहित्य में समाज की जटिल सच्चाई सीधे सरल तरीके से उकेरी जा रही है। दलित साहित्य में अनेक ऐसे कटुसत्य हैं जिनको हजारों साल से सहते–देखते लोग उनके प्रति अनुकूलित हो गए। समाज को नई दृष्टि से देखने समझने और बदलने के प्रति वे संशकित है। ऐसे लोगों की शंकाओं के निवारण हेतु दलित साहित्य एक कारगर कला के रूप में उभरा है। सामाजिक यातना झेलते मानव को उसकी इस योजना का एहसास कराने के साथ उसके भीतर इस यातना से मुक्त होने की चेतना जाग्रत करना अभिप्रेत है।

(ब) दलित विमर्श में सुशीला टाकभौरे का स्थान–

दलित साहित्य केवल दलितों के अधिकार और उनके जीवन मूल्यों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक सन्दर्भों के साथ जुड़कर समूचे समाज की स्वर दलित विमर्श की अन्तर्धारा का प्रयास है। यह वेदना हजारो वर्षों की है। यह वेदना सिर्फ मैं की नहीं समूचे समाज की वेदना है। इसलिए सामाजिक यथार्थ दलित विमर्श का प्रमुख स्वर है।

दलित विमर्श की दुनिया में दलित साहित्यकारों में ओमप्रकाश वाल्मीकि, हरपाल सिंह अरूष, मोहनदास नैमिशराय, अनिता भारती, कौशल्या बैसन्त्री, शरण कुमार लिम्बाले, डॉ. रजतरानी, कंवल भारती, सुशीला टाकभौरे आदि नाम आते हैं। इन दलित साहित्याकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से दलित विमर्श पर जांच–पड़ताल करके अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है। दलित विमर्श में इन सबका स्थान महत्वपूर्ण है। दलित विमर्श जितना पुरुषों का लेखन है उसमें स्त्री लेखन बहुत कम है। गिने चुने ही दलित स्त्री लेखन में नाम आते हैं। जिसमें सुशीला टाकभौरे का नाम भी प्रमुख रूप से आता है।

आधुनिक काल में दलित लेखन में डॉ. सुशीला टाकभौरे एक ऐसा नाम है जिसने अनुभूति की मौलिकता और कलात्मक उत्कृष्टता में अपना विशेष स्थान बनाया है। इनका समाज सेविका दलित चेतना से भरपूर रहा है। समाज की एक अति निकृष्ट समझी जाने वाली भंगी जाति में जन्म लेकर, संघर्षों के पायदान चढ़ती हुई सुशीला टाकभौरे जी नागपुर कामठी के कॉलेज में अध्यापन कार्य करती है। अब तब उनकी कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनमें चार कविता संकलन, दो नाटक संकलन, तीन कहानी संग्रह और तीन समीक्षात्मक पुस्तकें और एक आत्मकथा का प्रकाशन हो चुका है।

हिन्दी के दलित साहित्य में जिन महिला रचनाकारों ने दलित और स्त्री विमर्श के लिए जमीन तैयार की उसमें टाकभौरे का सक्रिय हस्तक्षेप रहा। वे लम्बे समय से कविता, कहानी, उपन्यास, विचारात्मक लेख, आत्मकथा जैसी विधाओं में अपनी रचनात्मकता का परिचय दे रही हैं। 1970 में अम्बेडकरवादी चेतना के प्रभाव से दलित साहित्य की जो अलग पहचान बनी उसमें स्त्री स्वर को बहुत गंभीरता से नहीं लिया गया। नब्बें के दशक में यह स्थिति बदली और पत्र–पत्रिकाओं में दलित स्त्री रचनाकारों ने अपनी उपस्थिति के महत्व का एहसास कराया। स्त्री साहित्य के इस उन्मेष में सुशीला टाकभौरे साहित्य की सभी विधाओं में, एक महत्वपूर्ण नाम बनकर उभरी किन्तु जितनी चर्चा उनकी आत्मकथा 'शिंकजे का दर्द' तथा उनके कहानी संग्रहों की हुई है उतनी अन्य विधाओं की नहीं हुई है। सुशीला टाकभौरे का कार्य अध्यापन और अध्ययन से जुड़ा है। ऐसे में उनका साहित्य के प्रति लगाव अथवा लेखन क्षेत्र में पर्दापण हुआ,

तो यह स्वाभाविक है। अध्ययन और अध्यापन के क्षेत्र में जुड़ा व्यक्ति अक्सर साहित्यिक क्षेत्र की ओर उन्मुख होता ही है। वे भी उन्मुख है लेकिन वास्तविकता यह है कि उनकी स्वानुभूतियों ने उन्हें लेखन के लिए बचपन से ही प्रेरित किया था। सुशीला जी का लेखन बुद्ध, फूले और अम्बेडकर अर्थात बहुजन दलित साहित्य से जुड़ा है। ''प्रारम्भ में भले ही किसी वाद से जुड़ी न थी, लेकिन यह सच्चाई रही कि वे दलित भी है और नारी भी है और इन दोनों के प्रति हमारे समाज का जो नजरिया है, उसके प्रति एक संवेदनशील रचनाकार की कलम से, उसका सामाजिक परिवेश उसकी रचनाओं में अनायास तौर पर ही सही, उसकी छवि शब्द चित्र बनकर साहित्यकार कैनवास पर उभर आती है।''[21]

दलित विमर्श धीरे–धीरे पहचान बना रहा है। उसमें आक्रोश प्रवाहित हो रहा है। दलित रचनाकारों ने जोर–शोर से, अपनी कलम से अपना संघर्ष, विद्रोह और नकार को साहित्यिक पटल पर रखा है। सुशीला टाकभौरे की प्रारम्भिक रचनाएं हिन्दी के परंपरावादियों के मिथकों को तोड़ती ही नहीं, बल्कि पूर्णरूपेण आश्वस्त भी करती है। वास्तविकता तो यह है कि दलित रचनाकारों के लेखन का उद्देश्य साहित्य में अपना आक्रोश दर्ज करना तथा परम्परावादियों को धिक्कार देना रहा है। दलित की संख्या आज भले ही कम है लेकिन उनके लेखन का आधार विरोध आक्रोश और विद्रोह है। वे सदियों से चली आ रही शोषण की परम्पराओं की तोड़ने की कोशिश कर रहे हैं।

सुशीला टाकभौरे ने अपने लेखन में सक्रियता के कारण, जिन समस्याओं का सामना किया है, उनका भी चित्रण किया है। ताकि दलित समाज इस बात को समझ सके। अपने साहित्य के माध्यम से उन्होंने युगों से चली आ रही अमावनीयता वहम अंधविश्वास और जातिवाद जैसी पीड़ाओं का प्रतिकार करने के लिए कलम उठाई और उपनी सृजनात्मक गतिविधियों के माध्यम से हमेशा समाज को झकझोरते उनका बहुविध साहित्य दलितों के लिए मील का पत्थर साबित हो रहा है। इस सन्दर्भ में लेखिका कहती हैं– ''मेरी रचनाएं दलित जीवन की समस्याओं से जुड़ी रचनाएं है। साथ ही नारी भावनाओं से भी जुड़ी हैं। ये दलित या अदलित किसी भी नारी की हो सकती हैं। हृदय की कोमल भावनाओं को जिन बातों और घटनाओं से छू लिया, वे ही अमिट छाप के रूप में बन गई।''[22]

दलित विमर्श के सन्दर्भ में डॉ. गंगाधर पानतावर्ण कहते हैं। ''मेरे लिए दलित एक जाति नहीं है। वह व्यक्ति जिसका इस देश की सामाजिक आर्थिक परम्पराओं ने शोषण किया है। वह ईश्वर पुनर्जन्म आत्मा उन पवित्र पुस्तके में भाग्य और स्वर्ग में विश्वास नहीं करता है। क्योंकि इन सबने इसे गुलाम बनाया है वह मानवता में विश्वास करता है। दलित परिवर्तन और क्रान्ति का एक प्रतीक है।''[23] दलित लेखन में सुशीला टाकभौरे जी आज भी समाज बदलाव के अपने उद्देश्य पर कायम है।

आधुनिककाल के साहित्य में नारी लेखन को एक नयी दिशा दी है। नारी समाज और साहित्य को अपनी दृष्टि से परखने लगी है। डॉ. सुशीला टाकभौरे ने नारी की स्थिति को इतिहास के पन्नों पर से यथार्थ सामाजिक जीवन में उपस्थित किया। सुशीला जी ने दलितोत्थान के औजारों के चयन पर विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करते हुए अम्बेडकर की जिजीविषा को महत्व दिया है। फुले अम्बेडकरवादी विचारधारा ने हिन्दी साहित्य के हर क्षेत्र में क्रान्ति के बीज बोए हैं जो आज समूची भारतीय साहित्यिक भूमि के बोधिवृक्ष बनकर उठ खड़े हुए हैं। सुशीला टाकभौरे इसी विचारधारा का प्रतिनिधित्व करती हैं और अपनी कृतियों के द्वारा जनमानस को झकझोर देती हैं तथा अपने समाज को अपनी जाति के परास्त लोगों को नयी दिशा का भावबोध कराती है। डॉ. दयानन्द बटोही के शब्दों में– ''सुशीला जी का साहित्य पढ़ने के बाद सामाजिक संदर्भों की परत पर परत दर्द, पीड़ा टीस चीत्कार को हम सुन सकते हैं। यह हमारी संवेदना है पूरे समाज की है संसार की है।''[24] इनके साहित्य में अनुभूतियों और वेदना संवेदना की प्रस्तुति ही नहीं, बल्कि शोषण और अन्याय के विरूद्ध विद्रोह तथा संकटों से निरन्तर जूझने का दलितों को संदेश मिलता है।

अपनी दलितवादी चेतना के संबंध में सुशीला जी का कहना है– ''दलितों में अधिकतर ने डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर की विचारधारा को अपनाया है वे प्रगति के मार्ग पर बहुत आगे बढ़ गए हैं। स्वतन्त्रता के बाद देश की समाज व्यवस्था और शासन व्यवस्था में परिवर्तन आया है। स्वतन्त्र भारत के समतावादी संविधान से प्राप्त अधिकारों से देश के दलितों की स्थिति में बहुत परिवर्तन आया है लेकिन दलितों में कुछ ऐसी भी जातियां है, जो गांधीधारा से अलग हैं। वे जातियां और उनका समुदाय प्रगति परिवर्तन से बहुत दूर है। वे अज्ञान और भ्रम के अंधेरे में भटक रहे हैं। वे शोषण उत्पीड़न की शिकार, शिक्षा संगठन से दूर आज भी दलित शोषित जीवन पी रहे हैं.....वाल्मीकि, सुदर्शन हेला, रूखर, डूमार, मखियार, माला आदि नाम भले ही अलग ही मगर उसके काम और स्थिति लगभग एक जैसी है। मेरा साहित्य में इन जातियों की यातनाओं, समस्याओं और वर्तमान स्थिति को स्वर दिया गया है।''[25]

सुशीला जी ने डॉ.अम्बेडकर महात्मा फुले, सावित्रीबाई फुले से आदर्श ग्रहण किए है तथा उनके आन्दोलन और विचारधारा से अपना सम्बन्ध रखती है। यह उनकी प्रेरणा से ग्रहण किए गए आदर्श है जो लोगों के अन्दर समतामूलक जीवन जीने का भाव जगाते हैं। वह बहुआयामी सुखद स्वप्नों की लेखिका है तथा दलित की स्वतन्त्रता का स्वप्न उनकी आंखों में बसा है। इनका साहित्य समता स्वतन्त्रता और बंधुता का भाव तो जगाता ही है, मानव मुक्ति का भी संदेश देता है इनका साहित्य दलितों के लिए एक ऐसा चित्र उपस्थित करता है जिससे हाशिए के समाज को आवाज मिली है। सुशीला जी न केवल पुरुष प्रधान समाज में स्त्री मुक्ति और स्त्री चेतना से सम्बधित विभिन्न पहलुओं पर अपनी लेखनी चलायी है, बल्कि दलित समाज

के आत्मसम्मान को जागृत करने में भी पहल की है हाशिए पर जीने वाले स्त्रियों और दलितों पर सदियों से शोषण और जुल्म हो रहे थे, उन्हें दबाया कुचला जा रहा था उनके विरुद्ध विद्रोह और दुश्मनों को ललकारने की चेतना दी है। इनके लेखन में दलित विमर्श को ही बुलन्द अभिव्यक्ति मिलती है।

लेखिका की लेखनी दलितों के उत्थान में सहायक रही है। दलित विमर्श उनके साहित्य में बखूबी नजर आता है। हांलाकि दलित लेखन में पुरुषों के बजाय स्त्री बहुत ही कम है। देश को स्वतन्त्रता मिलने के बाद, स्त्रियों में जागरूकता आयी और उसने शिक्षा के क्षेत्र में कदम रख अपनी अस्मिता और अस्तित्व को स्थापित करने का प्रयास किया। ''वह अनेक संदर्भों में अपने सीमित और संकीर्ण परिवेश से बाहर निकली परिणामस्वरूप लेखिकाओं की अभिव्यक्ति में परिवर्तन हुआ उनकी विश्लेषण शक्ति बढ़ी और उन्होंने समस्याओं के गहराई में जाकर, उनका निदान खोजने की दशा में भी प्रयत्न किया।''[26]

दलितों की व्यथा एक दलित ही समझ सकता है। गैर दलित लेखक अगर दलित लेखन करता है तो वह बाहरी बातों का विवरण करेगा जबकि एक दलित लेखक आन्तरिक व्यथा को उकेरेगा। दलित समाज कई प्रकार की समस्याएं है जिसको लेखिका भली भांति जानती है। उन समस्याओं को प्रमुख रूप से दलित समाज को बताने का प्रयास भी किया है। उन समस्याओं का समाधान भी इनके साहित्य में नजर आता है। दलित विमर्श में इनका स्थान प्रमुख ही रहा है। वर्गवादी, जातिवादी, विषमतावादी, व्यवस्था का नकाब दूर करने की कोशिश भी लेखिका करती है। गुलाम बने दलित समाज के अस्तित्व पर लेखिका सवाल खड़े करती हैं डॉ. अम्बेडकर के युग प्रवर्तक कार्यों का स्मरण कराती हैं। वे परिवर्तन की लड़ाई का आगाज भी करती हैं। इस प्रकार सुशीला टाकभौरे जी का सम्पूर्ण लेखन दलित विमर्श का दस्तावेज तो है ही, दलित विमर्श के साथ नारी शोषण का सच्चा व खुला बयान और उससे मुक्ति पाने का आह्वान भी है। उनका यह कथन कड़ा मर्मस्पर्शी और सारगर्भित है कि– ''अपमान वही महसूस करते हैं, जिन्होंने सम्मान को समझा हो।''[27] सुशीला जी अपनी कलम के माध्यम से दलितों को जागरूक करती रही हैं।

इनकी रचनाओं में दलित समाज की सभी परिस्थितियों की विवेचना की है। डॉ. रजत रानी 'मीनू' लिखती हैं ''महाराष्ट्र की दलित महिलाओं ने अपने परिवार समाज, शिक्षा सामाजिक सांस्कृतिक और दलित आन्दोलनों को अपनी आत्मकथाओं में दर्ज किया है। हिन्दी क्षेत्र की दलित स्त्रियों को अभी पुरुषों के साथ शैक्षिक एवं साहित्य कार्य–क्षेत्रों में हिस्सेदारी नहीं मिल पाई है। जिससे वे अपने अनुभवों को शब्दबद्ध कर सके। यहां महाराष्ट्र की तरह कोई संस्कृति आन्दोलन भी नहीं बना है। यही कारण है कि हिन्दी क्षेत्र की शिक्षित दलित लड़कियों को

अभिभावकों द्वारा प्राथमिकता से अफसर पतियों के स्वप्न दिखाये जाते रहते हैं पर यह संभव कम ही होता है, जबकि स्त्री की अपनी कोई पहचान नहीं बनती हैं।''[28]

आज का दलित लेखन अम्बेडकरवादी चिंतन से ऊर्जा पाकर मनुवादी व्यवस्थाओं से डटकर संघर्ष कर रहा है। इसमें भी दलित विमर्श का ही हाथ रहा है। दलित मनुवादी व्यवस्थाओं का अनुशरण पहले से ही करते आ रहे हैं। ये कहीं न कहीं अपने पूर्ण जन्मों के कर्मों का फल मान लेते हैं। लेकिन दलित लेखन ने इनको सोचने समझने की क्षमता प्रदान की है। सही रास्ते पर चलना सिखाया है। इनको शोषण विरूद्ध खड़े होकर मुकाबला करना सिखाया है। भारतीय समाज व्यवस्था के इतिहास पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि ''मनु स्मृति से पहले ब्राह्मणी पितृसत्ता पूरी तरह से संस्थाबद्ध नहीं थी। लेकिन मनु ने उसे पूरी तरह से संस्थाबद्ध करके धार्मिकता से जोड़कर राजसत्ता द्वारा संरक्षित करा दिया। लेकिन उसका मुख्य आधार जाति की श्रेष्ठता ही रही। इस तरह मनु की संस्थाबद्ध ब्राह्मणी पितृसत्ता जाति और जेंडर से जुड़कर एक सामाजिक व्यवस्था में तब्दील हो गई जो दुनिया की सबसे घृणित सामाजिक व्यवस्था बन गई। इस तरह भी 'मनुस्मृति' द्वारा संस्थाबद्ध ब्राह्मणी पितृसत्ता एक सामाजिक व्यवस्था के रूप में शूद्रों और नारियों के शोषण और उत्पीड़न का सबसे बड़ा विनाशकारी हथियार बन गई। जिसका इस्तेमाल ब्राह्मण वर्ग द्वारा आज भी किया जा रहा है, कहीं प्रत्यक्ष रूप से तो कहीं अप्रत्यक्ष रूप से।''[29] दलित समाज में आज भी उसी मनुवादी पितृसत्ता का अनुसरण किया जा रहा है।

सुशीला जी ने अम्बेडकरवादी विचारधारा को दलित समाज तक पहुंचाया है। जिससे समाज जागृत होकर समानता के अधिकारों के लिए संघर्ष करके आगे बढ़ने का प्रयास कर सके। उन्होंने अपने लेखन दलित विमर्श में वर्णभेद, जातिभेद, छुआछूत, स्त्री शोषण अभावग्रस्त परिस्थितियां आदि को उकेरा है ताकि दलित समाज जागरूक हो सके। दलित समाज में शिक्षा का अभाव होने के कारण, दलित समाज अपने अधिकारों को जानता ही नहीं है, तथा सदियों से चली आ रही। परिपाटी के कारण अन्याय अत्याचार, वर्णभेद, जातिभेद, कलुषित परम्पराओं को सहते आ रहा है। लेखिका ने दलित समाज को नयी दिशा, समान अधिकार आदि के लिए दिशा दिखाने का प्रयास अपने साहित्य के माध्यम से किया है। लेखिका दलित समाज के परिवर्तन की समर्थक हैं। दलित समाज की दयनीय स्थिति में सुधार लाने के लिए वे यथाशक्ति कार्य कर रही हैं।

दलित साहित्य के क्षेत्र में सुशीला जी की एक विशेष पहचान है ''साहित्य मानव जीवन से ही पैदा होता है, इसी कारण इसका मानव जीवन के साथ अटूट सम्बन्ध है। लेखिका उसी को अपने ढ़ग से अभिव्यक्ति देने की कोशिश करती हैं। तरह–तरह के अनुभव घटनाएं परिस्थितियां आपसी रिश्ते, दलित समाज के भीतर चलने वाले संघर्ष सभी जीवन की परिधि में

आते हैं। ये परिस्थितियां लेखिका की संवेदना को छूती हैं उन्हें उत्तेजित करती हैं। इन्हीं के आधार पर लेखिका के संवेदन को अभिव्यक्ति की दिशा मिलती हैं।''[30]

इसलिए इनके लेखन की कथावस्तु दलित जीवन का यथार्थ है। सवर्णों के षड़यन्त्रों के साथ दलितों के शोषण, उत्पीड़न और अभावपूर्ण जीवन का चित्रण इसमें है जे एन.यू.के प्रोफेसर वीर भारत तलवार ने अपने संबोधन में कहा था कि– ''लेखिका के मन का आकाश अपेक्षाओं का है इसमें समाज के मर्म का वर्णन है। सुशीला टाकभौरे ने जिन चार सरोकारों का उल्लेख 'नीला आकाश' उपन्यास में किया है। उनमें दलितों में जातिवाद और इसके प्रति विरोध है दलित बच्चों की शिक्षा, पुश्तैनी धन्धों से बाहर निकलने की छट्पटाहट और मुख्य सरोकार के रूप में स्त्री पक्ष है।''[31]

आजकल 'दलित' शब्द को लेकर साहित्य के क्षेत्र में काफी चर्चा चल रही है जो दबाया गया हो अथवा जिसे पनपने या बढ़ने नहीं दिया गया हो वहीं दलित है। दलितों समस्याएं से चली आ रही है। आजादी के बाद कुछ मात्रा में समस्याएं हल हो चुकी हैं परन्तु आज भी कुछ समस्याएं वैसी ही जटिल बनकर रह गयी हैं। आज दलित एवं विमर्श ने समाज में हलचल पैदा कर दी है। यह जाहिर है कि दलित साहित्य दलितों द्धारा भोगे हुए शोषण, उत्पीड़न और संघर्ष का साहित्य है, जिसमें भोगे हुए यथार्थ, कटु अनुभवों एवं विद्रोह की सशक्त अभिव्यक्ति है। सदियों से सामाजिक व्यवस्था के तहत दलितों और नारियों का शोषण होता रहा है। लंबी श्रृंखला है दलितों के दुखों की। सुशीला जी ने युगों से चली आ रही अमानवीयता, वहम, अंधविश्वास और जातिवाद जैसे पीड़ाओं का प्रतिकार करने के लिए कलम उठाई। सुशीला टाकभौरे ने दलित लेखन के क्षेत्र में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई हैं।

(स) भाषा शैली–

किसी भी रचना में विषयवस्तु के साथ–साथ भाषा शिल्प भी महत्वपूर्ण होता है। जब तक साहित्यिक कृति के माध्यम के रूप में भाषा के शिल्प का महत्व भी बना रहेगा। इस दृष्टि से प्रत्येक रचनाकार को भाषा शिल्प का सहारा लेना पड़ता है। लेखक जिस विधा में लिख रहा है। उसे उसी भाषा में लिखना चाहिए। भाषाशिल्प पाठकों की रूचि के अनुसार साहित्य चुनाव में सहायक होता है। इसके साथ ही अपनी शिल्पगत विशेषताओं के आधार पर उसे स्थायित्व प्रदान करता है। यही आकर्षित पाठक को, किसी भी रचना को आरम्भ से लेकर अंत तक पढ़ने के लिए विवश कर देता है। जब भी कोई रचनाकार अपने विषय के प्रति उचित न्याय और शिल्प योजना करता है, तभी वह रचना सफल सिद्ध होती है।

सुशीला जी के लेखन में गद्य की भाषा में शब्द चयन और वाक्य प्रयोग का उपयोग साहित्य की भाषा शैली में किया गया है। जिससे साहित्य पाठकों को झकझोर कर रख देती है। इनके लेखन की भाषा शैली सरल, सुगम, संतुलित, प्रवाहपूर्ण है, जिससे पाठक सरल भावप्रवाह का रसास्वादन कर सकता है। इनके गद्य की भाषा जीवन्त प्रतीत होती है। इनकी रचना में कुछ भी आरोपित नहीं लगता हैं। ''भाषा इतनी स्वाभाविकता पूर्ण है कि रचना खुद बोलने लगती है। तथा यथार्थ चित्रण, पात्र व परिस्थिति के अनुकूल सिद्ध हस्त हैं।''[32]

इनकी भाषा में आंचलिक शब्दों का प्रयोग किया गया है। भाषा में स्वच्छन्दता सरलता बोधगम्यता व रोचकता है। उनकी भाषा सरल रोचक होने के कारण पाठकों के हृदय को मोह लेती है। कुछ–कुछ आंचलिक कठिन शब्दों का उपयोग किया है।

ग्रामीण बोध, आंचलिकता गद्य सौन्दर्य की दृष्टि से चक्की ''घर्र घर्र..... की आवाज के साथ आटा पीसती रहती। चक्की चलाते हुए मां और नानी गाने भी गाती थी। ''मारी थारों कांई गोपाल।'' उनके गीत की पक्तियां गद्य के सौन्दर्य में चार–चांद लगाती है। इस वाक्यों से भी गद्य का सौन्दर्य प्रभावपूर्ण दिखाई देता है। ''सोना बरस रहा है, मोती बरस रहे हैं, गेहूं बरस रहे हैं।'' भाषा शैली की दृष्टि से देखा जाए तो सुशीला जी का साहित्य सफल रहा है। भाषा के विभिन्न प्रयोगों से इनके साहित्य में निखार आया है। भाषा शिल्प का भी अत्याधिक सुन्दर प्रयोग किया है। सुन्दर बिंब योजना, समृद्ध भाषा, कलात्मक शैली और उद्देश्यपूर्ण योजना स्पष्ट दिखाई देती है।

इनके साहित्य में भाषा के शब्द प्रयोग के विभिन्न रूप दिखाई देते हैं जैसे तत्सम शब्द, अरबी, फारसी शब्द, अंग्रेजी शब्द, सार्थक–निरर्थक शब्द, आंचलिक शब्द, मुहावरे, लोकोक्तियां आदि दिखाई देती हैं। उन्होंने वर्णानात्मक, संवादात्मक, मनोविश्लेषणात्मक, स्मृतिपरक आदि कई प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया है। भाषा शैली की दृष्टि से उनका साहित्य सफल रहा है।
मुहावरे– पेट गिराना, चेहरे पर बारह बजना, दाने दाने को तरसना, पीड़ा से छटपटाना, मुक्ति का ध्येय लेकर आगे बढ़ना, मुख नहीं खोलना, नींद में छटपटाना मुंह में कीड़े पड़ना, गिरगिट की तरह रंग बदलना।
लोकोक्तियां– ''दुख के बाद सुख भी मिलता है इसलिए संतोष रखो'' ''आशा से ही आसमान टिको है वरना कहां धरती, कहां चांद, कहां सूरज कैसे सब बन्धन में बंधते।''
उर्दू शब्द– गुंजाइश, जिद्द, कोशिश, हैसियत, हुकुमत, नामोनिशान, शहजादी, बन्दिशें आदि।
उदाहरणार्थ प्रवृति– सुशीला जी को समझाया जाता है ''गुरू ईश्वर से बड़ा होता है, गुरु ज्ञानवान और महान होता है।''

''गुरू गोविन्द दोनों खड़े काके लागू पाय,
बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताए।''

लोकगीत– जब सुशीला जी तीसरी कक्षा में थी तब छात्राओं को गाना सिखाया था।

''वृदावन का कृष्ण कन्हैया, सबकी आंखों का तारा
मन ही मन क्यों जले राधिका मोहन तो है सबका प्यारा।''

शेर शायरी– ''जब तक सूरज चांद रहेगा बाबा तेरा नाम रहेगा।
जो हमसे टकरायेगा ..... मिट्टी में मिल जाएगा।''

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि लेखिका के लेखन की भाषा पाठकों को प्रभावित करने की क्षमता रखती है। इनके साहित्य की भाषा देश काल वातावरण पर सटीक बैठती है। जिन आंचलिक शब्दों का प्रयोग किया वे थोड़े समझने में पाठक को अटपटे लगे लेकिन वातावरण के अनुसार उचित प्रयोग किया गया। जहां अंग्रेजी, उर्दू शब्दों का प्रयोग होना था वहां उन्हीं का प्रयोग करना भी एक कला है। जो सुशीला जी के लेखन में देखने को मिली। भाषा ओजमय, प्रवाहमय, स्पष्टता आदि को लिए हुए है। ग्रामीण क्षेत्र से सरोबार भाषा का उचित प्रयोग करना हर किसी के बस की बात नहीं है। जबकि लेखिका ने उसी की अनुरूप भाषा का प्रयोग किया है। लेखन की भाषा शैली पाठक को आकर्षित करने वाली है। लेखन में शब्दों का चयन और मुहावरों का प्रयोग, लोकोक्तियों का प्रयोग भाषा के अनुरूप ही किया गया है। इनके भाषा प्रयोग से साहित्य जीवन्त प्रतीत होती है।

(द) सुशीला टाकभौरे के साहित्य के विविध आयाम–

दलित साहित्य में सुशीला टाकभौरे स्त्री विमर्शकार के रूप में जानी जाती है। दलित साहित्य एक आलोचना दृष्टि महत्वपूर्ण कृति है शीर्षक इस रूप में सार्थक है कि इस पुस्तक में संग्रहित लेख विशेष दृष्टिकोण से लिखे गये हैं। आजकल दलित विमर्श और दलित साहित्य की बहुत चर्चा है। इस विचार प्रवाह के बढ़ते प्रभाव को देखकर पहले गैर दलितों ने ही इन पर बहुत लिखा है। फिर शिक्षित और सक्षम होकर दलित भी इन विषयों पर लिखने लगे। अब स्थिति यह है कि दलितों की अपेक्षा गैर दलित ही दलित विमर्श और दलित साहित्य के सम्बन्ध में अधिक लिख रहे हैं। यद्यपि इस कृति में लेखक कहीं गैर दलित हैं, तो कहीं दलित भी हैं। मेरे साक्षात्कार में संकलित साक्षात्कार दलित एवं स्त्री विमर्श के साक्षात्कार हैं। विशेष रूप से सुशीला टाकभौरे के जीवन, लेखन दलित समाज और दलित स्त्री को केन्द्र में रखकर किये गये विचार विमर्श और बातचीत का निष्कर्ष है। कैदी नं. 307 सुधीर शर्मा के पत्र संग्रह बताते हैं कि कैसे साहित्य और किसी साहित्यकार के आत्मीय पत्र एक कैदी को अपने चारों ओर मौजूद अनंत अंधेरे से लड़ने का हौसला दे सकते हैं। सुशीला जी की तीनों कृतियां 'दलित

साहित्य एक आलोचना दृष्टि', 'मेरे साक्षात्कार', 'कैदी नं. 307', दलित समाज के लिए प्रेरणादायी हैं।

दलित साहित्य एक आलोचना दृष्टि–

सुशीला जी की 'दलित साहित्य एक आलोचना दृष्टि' एक आलोचनात्मक कृति है। उसमें 13 आलोचात्मक लेख संकलित हैं। यह कृति दलितों को अज्ञानता के अंधेरे से बाहर आने में मदद करती है। भीतर उम्मीदें जगाता है। इनकी कृति में केवल दलितों के अधिकार एवं मूल्यों तक ही सीमित नहीं बल्कि सामाजिक सन्दर्भों के जुड़कर समूचे समाज की अस्मिता और मूल्यों की पहचान बताता है। स्वतन्त्रता समता और बन्धुता की मूल भावना दलित साहित्य की मूल चेतना है।

इस कृति का पहला लेख 'दलित साहित्य में भावबोध की प्रमाणिकता' है। अधिकतर लोग अक्सर यह कहते हैं कि दलित साहित्य कोई आजकल का साहित्य नहीं है। वह तो सदियों पहले से हमारे सन्तों और समाज सुधारकों द्वारा लिखा जा चुका है। इसके उदाहरण के रूप में प्रेमचन्द की कहानी 'कफन' निराला का 'चतुरी चमार' जैसे रचनाओं की चर्चा की जाती है। प्रेमचन्द और निराला का साहित्य सवर्णों द्वारा लिखित स्थापित साहित्य है। उनके साहित्य में इन्होंने दलितों का वही उल्लेख है जो ये करना चाहते थे इसी सन्दर्भ में डॉ. अम्बेडकर भी कहते हैं– ''जहां तक सन्तों का प्रश्न है, तो मानना पड़ेगा कि विद्वानों की तुलना में संतों के उपदेश कितने ही अलग और उच्च हो, वे सोचनीय रूप से निष्प्रभावी रहे हैं। वे निष्प्रभावी दो कारणों से रहे हैं पहला– किसी भी संत ने जाति व्यवस्था पर कभी भी हमला नहीं किया दूसरा कारण यह था कि संत की शिक्षा प्रभावहीन रही है, क्योंकि लोगों को पढ़ाया गया कि संत जाति का बन्धन तोड़ सकते हैं लेकिन आदमी नहीं तोड़ सकता इसलिए संत अनुसरण का उदाहरण नहीं बने।''[33]

लेकिन वर्तमान समय में आक्रोश और नकार दलित साहित्य के दो मुख्य मुद्दे हैं। सुशीला जी लिखती हैं– ''दलित साहित्यकार जिस तीखे अंदाज और तेज तेवर के साथ साहित्य लिख रहा है– वह तीखापन और तेजी दलित साहित्य की प्रवृति बन गए है। परम्पराओं का विरोध, पीड़ा, उत्पीड़न की रीति–नीतियों का नकार, दलित जीवन के दासत्व, गरीबी, असहाय स्थिति के यथार्थ रूप, शोषण का खुला सच्चा रूप अन्याय अत्याचार के इतिहास का चित्रण और इन सबके विरोध में विद्रोह, आक्रोश का प्रस्तुतीकरण–यही है। दलित साहित्य– जिसके माध्यम से जनमानस को जगाने का प्रयत्न सफल हो रहा है।''[34] परिणाम स्वरूप सभी दलित साहित्यकारों के लेखन में, भावना अभिव्यक्ति में एक जैसे विषय हैं, एक जैसे समान

अनुभव है। अपने अनुभवों को दलित साहित्यकार अपने ढ़ंग से अपनी भाषा शैली में अपने कौशल्या के साथ लिख रहे हैं।

दूसरा लेख प्रसिद्व दलित साहित्यकार भगवानदास की दलित आत्मकथा 'मैं भंगी हूँ' की समीक्षा है यह आत्मकथा भंगी कोम की स्थिति को बयां करती है। इसमें भंगी जाति को गूंगा बहरा और जानवरों से भी बद्तर ब़नाने वाले हिन्दू धर्म और मनुवादी विषमतावादी समाजव्यवस्था के विषय में लिखा है– ''मेरे देश में ये कानून ब्राह्मणों द्वारा बनाए गए। हिन्दूधर्म के कानून न केवल मुझे निर्धन बनाने के लिए बनाए थे, बल्कि गुलाम बनाए रखने के लिए बनाए गए थे।''[35] लेखिका पुस्तक की समीक्षा करते हुए कहती हैं। कि इसमें मार्मिक वेदना प्रस्तुत है।

लेख 'अदृश्य भारत' या अनदेखा भारत' में लेखिका भाषा सिंह जाति व्यवस्था के खिलाफ जंग छेड़ी है। मैला ढ़ो रही उन तमाम महिलाओं और उनके परिवार वालों का लेखिका ने इस पुस्तक में आधार माना है, जिन्होंने अपने भोगे नरक से उन्हें रू–ब–रू कराया।

इस पुस्तक के प्रारम्भ में लेखिका के परिचय के साथ यह बताया गया है कि 'सिर पर मैला ढ़ोने की प्रथा' और 'उत्तर भारत' में किसानों की आत्मकथा' पर उनका विशेष काम है। पहली बार यथार्थ से उनकी मुठभेड़ होती है। हिन्दू समाज व्यवस्था को भेदभाव से आबद्ध मानसिकता एक समूह को पशुवत जीवन जीने पर मजबूर करती है। अछूत बनाकर रखी गई यह कौम यथार्थ में कमजोर नहीं है। लेकिन सच्चाई को वही जानते हैं जिन्होंने भोगा है। जिनके पूर्वज इन्हें सदियों से भोगते रहे, जिसका दर्द आज भी उनकी पीढ़िया भोग रही हैं– छुआछूत, अपमान और तिरस्कार का दुख।

अगला लेख 'आघात और अपमान का घूंट का दर्द' है। इसमें दलितों के अपमान और व्यथा की कहानी है। लेखक खुशालचन्द्र मेश्राम ने हमारी आज की पीढ़ी और हम क्या कर रहे हैं? इस पर प्रश्नचिन्ह लगाया है। इसमें लेखक कहते हैं। ''आघात और अपमान के इन घावों को कुरेदने का उद्देश्य यह है कि जो मनुवादी, बाबा साहब के विरोधी, बाबा साहब का आज भी विरोध करते हैं– वे इस बात को समझे कि बाबा साहब ने हिन्दू धर्म की बुराईयों, हिन्दू समाज की विषमतावादी नीतियों व्यवस्थाओं और छल प्रपंच से भरे धर्मग्रंथों को बदलने का प्रयत्न किया, तो क्या गलत किया।''[36]

'दलित स्त्री और साहित्य लेखन' लेख की समीक्षा में लेखिका ने टिप्पणी की है कि– ''स्त्री स्वतन्त्रता और समानता के लिए किया जाने वाला संघर्ष भारत में आज तक सही मायने में अपना उद्देश्य प्राप्त नहीं कर सका। इसके लिए नारी समाज भी जिम्मेदार है। नारी अपने स्वतन्त्र अस्तित्व को न स्वीकार करती है और न ही पहचान रही है। दलित नारी को जिस व्यवस्था ने गुलाम बनाया, उस व्यवस्था में आस्था, श्रृद्धा के प्रति, उन मूल्यों के प्रति उसके मन

में बगावत की भावना ही नहीं है, बल्कि वह उसकी पूजक बन बैठी है।''[37] इन सब बातों के लिए जरूरी है कि लेखन के क्षेत्र में दलित स्त्रियां आगे आयें। वे अपनी समस्याएं साहित्य के माध्यम से समाज के सामने लाये। अपनी बात स्वयं कहे और स्वयं लिखे।

'मैं हिन्दू क्यों नहीं हूँ' कांचा इलैया की चर्चित पुस्तक बहुजन आन्दोलन से विचार परिवर्तन का एक ठोस प्रमाण है। यह पुस्तक हिन्दुत्व दर्शन, संस्कृति और राजनीतिक अर्थशास्त्र की एक शूद्र आलोचना के रूप में लिखी गई है। वे दलित बहुजनों की जबरन हिन्दू बनाने की साजिश का पर्दाफाश करती हुई लिखती हैं। ''दलित बहुजनों को हिन्दू धर्म में क्यों जोड़ा गया। इसका कारण जनगणना में हिन्दुओं की संख्या का कम होना था। जनगणना में दलितों को छोड़कर की गई हिन्दुओं की गणना की संख्या मुस्लिम समुदाय से कम आंकी गई। तब अल्पसंख्यक होने के भय से हिन्दुओं ने चाल चलकर दलितों को अपने साथ जोड़ लिया था। इसके पहले व दलितों को हिन्दू नहीं मानते थे।''[38] इसमें लेखक ने दलित बहुजन जीवन और संस्कृति को बहुत नजदीक से देखा– समझा है। इसकी तुलना हिन्दूत्ववादी जीवन संस्कृति से करते हुए, उन्होंने यह सिद्ध किया है– ''मैं हिन्दू क्यों नहीं हूँ।'' अर्थात दलित बहुजन हिन्दू नहीं है। लेखिका की विचारधारा पुष्ट होती है।

'दलित लेखन की केन्द्रीय अपेक्षाएं' में लेखिका ने लिखा है कि दलित साहित्य मनोरंजन और सौन्दर्यबोध का साहित्य नहीं है। दर्द की अभिव्यक्ति 'आह' से होती है 'वाह' से नहीं। इसमें दलित साहित्य के कार्य और उसके उचरदायित्व को तीन भागों में बांटा जा सकता है– (1) साहित्य में समाज की स्थिति को यथार्थ रूप में बताना (2) समाज की उस स्थिति का कारण बताना। (3) समाज की उस स्थिति के सुधार के लिए समस्या का निवारण या निराकरण सुझाना। क्योंकि दलित साहित्य की दलित साहित्यकारों की वेदना–संवेदनाओं बंधी, भोगी हुई पीड़ाओं का उल्लेख साहित्य में किया है। लेखिका लिखती हैं– ''इन तीनों स्थितियों के साथ समाज को प्रगतिशील, परिवर्तनवादी, उन्नति की प्रेरणा देने वाला साहित्य ही उत्तम कहा जायेगा। किसी एक ही बात का राग अलापते रहना दलित साहित्यकार के लेखन की अपूर्णता मानी जाएगी। तीनों बातों का तालमेल साहित्य के उद्देश्य को पूर्णता प्रदान करेगा और इस रूप में दलित साहित्य अधिक सफल साहित्य बन सकेगा।''[39]

साहित्य समाज को दिशा देता है, मार्गदर्शन करता है, अच्छे–बुरे की पहचान कराता है। सामाजिक 'क्रान्ति में आज की दलित कविता' लेख में लिखा है– ''जिस प्रकार 'दलित साहित्य' दलितों के लिए, दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य, यही दलित कविता की पहचान है।''[40] यहां मनोरंजन, शब्दों का खिलवाड़ या मात्र सौन्दर्यबोध को स्थान नहीं। संवेदना की जमीन से उपजी कविता में दर्द, चीत्कार और आक्रोश के स्वर बोलते हैं।

'वाल्मीकि जातिः धर्म इतिहास, संस्कृति, लेख में बताया है कि दलित का अर्थ दबी कुचली स्थिति से ऊपर उठा, जागृत, विवेकशील अन्वेषक, पुरानी, परम्पराओं का विरोधी इंसान है जो विषमतावादी मनुवादी, परम्परावादी सभी रीति–नीति की बातों को तोड़ने की बात करता है। इसमें वाल्मीकि जाति के प्राचीन नामों का उल्लेख किया गया है। इसमें सुशीला जी ने लेखक की इस बात के लिए आलोचना की है– ''मैला उठाने वाली सभी जातियां वाल्मीकि है''[41] वे लिखती हैं–'' वाल्मीकि जाति के लिए प्राचीन काल में चाण्डाल, भंगी, मेहतर, जैसे नाम थे। महाराष्ट्र के पेशवा काल में इस जाति का नाम वाल्मीकि नहीं था।''[42]

नागार्जुन के उपन्यास 'बलचनामा में प्रगतिशीलता और अस्मिता का प्रश्न' में लेखिका ने नागार्जुन के उपन्यास 'बलचनामा' उपन्यास का मूल्यांकन किया है। वे इसका मूल्यांकन दलित चेतना की दृष्टि से करती हैं। ''दलित साहित्य और जनवादी, प्रगतिशील साहित्य में यही अन्तर है दलित साहित्यकार की कथा में दलित की पीड़ा बिसराई नहीं जा सकती। पीड़ितों के चीत्कार स्वयं साहित्यकार अनसुना नहीं कर पाता है। पीड़ा, छटपटाहट के वे सत्य कथाओं के यथार्थ दृश्य आंखों से ओझल नहीं होते।''[43]

'हिन्दी के दलित उपन्यास और विमर्श के आयाम' लेख में लेखिका ने बताया है कि दलित साहित्य फुले– अम्बेडकरवादी विचारधारा का साहित्य है। दलित साहित्य लेखन में दलित उपन्यासों का अपना महत्व है। वैसे अपने समय से जुड़ी दलित रचनाएं अपने देश और काल की यथार्थ स्थिति को उजागर करती हैं। वे सौन्दर्यवादी नहीं बल्कि यथार्थवादी होती हैं। दलित साहित्यकार अपनी अस्मिता की पहचान की बात करता है। वह निराशावाद और भाग्यवाद का विरोध करता है। लेखिका कहती हैं– ''दलित उपन्यासकारों ने अपनी पीड़ा और उद्वेग के साथ कथा का सृजन किया है यद्यपि दलित साहित्य के मानदण्ड के सभी तत्व इन उपन्यासों में नहीं आ सके हैं, फिर भी दलित उपन्यासकारों का प्रयोग सराहनीय है कि उन्होंने उपन्यास जैसे वृहद और कठिन विधा लेखन में, अपनी दस्तक दी और उद्देश्य को उपन्यास के माध्यम से समाज तक पहुंचाया।''[44]

'दलित साहित्य एक आचोलना दृष्टि, पुस्तक में लेखिका ने लेखों में दलित चेतना का मूल्यांकन किया है। पुस्तक में सुलझी हुई समीक्षक के दर्शन सुलभ होते हैं, दलित चेतना और दलित विचारधारा के परिप्रेक्ष्य में जांच पड़ताल की गयी है। दलित साहित्य में साहित्यकारों ने दलित साहित्य का नजरिया दर्शाया है। जहां पर लेखिका ने अपनी पैनी नजर से उसका मूल्यांकन किया है। दलित साहित्य मनुष्य के सम्बन्धों को उनकी सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक व्यवस्था को केन्द्र वस्तु मानता है। प्रभाकर मांडे का कहना है– कि ''दलित साहित्य का विकास केवल एक ऐतिहासिक घटना नहीं है। इसलिए इसे केवल साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में नहीं देखा जाना चाहिए। जब तक इस साहित्यिक श्रृंखला को सामाजिक दृष्टिकोण से समाज

में घटित हो रहे बदलावों की पूरी पृष्ठभूमि के मद्देनजर नहीं देखा जाएगा, इसके महत्व को नहीं समझा जा सकता है।''[45] दलित साहित्य का यह विस्फोट विद्रोह की भावना और नकार के साथ हुआ। जिसमें डॉ. अम्बेडकर के विचार दर्शन जीवन संघर्ष से उपजी दलित चेतना एक चिंगारी के समान थी।

मेरे साक्षात्कार–

'मेरे साक्षात्कार' दलित एवं स्त्री विमर्श से सम्बधित है। इसमें संकलित सभी साक्षात्कार दलित जीवन, सुशीला जी के जीवन, लेखन और स्त्री से सम्बधित है। दलित आन्दोलन और दलित साहित्य लेखन पर किए गए विचार विमर्श और बातचीत का निष्कर्ष इसमें दिखाई देता है। एक ऐसी रचनाकार जिसने साहित्य की हर विधा में कलम चलाई है और निश्चित विचारधारा को मध्यनजर रखते हुये ही वे जो नहीं कह सकी और नहीं लिख सकी ऐसी बातें भी इन साक्षात्कारों में सहजता से आती है। पत्रकार कल्पना शुक्ला जी से बातचीत के दौरान लेखिका कहती है। ''धर्म के नाम पर सामाजिक कुरीतियां, वर्णभेद और जातिव्यवस्था के अभिशाप को मैंने स्वयं भोगा है। नारी होने की पीड़ा तो हमेशा एक करूण कथा रही है। इस तरह दलित होने की पीड़ा और नारी जीवन की करूण व्यथा– कथा मेरे लेखन को संजीवनी शक्ति देते हैं।''[46]

दूसरा साक्षात्कार 'जयप्रकाश वाल्मीकि' से बातचीत का सांराश है वाल्मीकि जी ने सुशीला जी से दलित नारी से सम्बधित विचारों पर प्रश्न किया। कि आपकी दृष्टि में दलित साहित्य में नारीवादी साहित्य की अवधारणा क्या है? नारी से सम्बधित साहित्य अथवा वह साहित्य जो नारी के लिए या नारी को विषय केन्द्रित करके लिखा गया हो। भारतीय समाज की किसी भी नारी का स्थान, दलित की श्रेणी में आता है, भले ही वह नारी सवर्ण समाज की हो अथवा पिछड़े दलित समाज की हो।''[47] नारीवाद को लेकर लेखिका के विचार बड़े ही सटीक हैं। औरत होने की पीड़ा इसलिए है कि हमारे समाज में सामाजिक व्यवस्था में पुरुषसत्ता आज भी है स्त्री का स्थान दोयम और अधीनस्थ है। उसके अधिकार हाथी के बड़े दांतों की तरह बाहर दिखते जरूर हैं मगर वे खाने के नहीं होते। बस दिखने और दिखाने के होते हैं। स्त्रियों का चुप रहना या अधिकारों की बातें न करना ही जैसे शील सिद्वान्त हैं।

स्त्रियों की दशा के बारे में लेखिका बताती हैं। कि दलित स्त्रियों की स्थिति सवर्ण स्त्रियों से, स्वतंत्र जरूर है मगर दलित होने के कारण उनका शोषण कई रुपों में होता है। अशिक्षा, गरीबी कानून के प्रति अज्ञानता, श्रमिक जीवन में मालिकों द्वारा शोषण अपने घर– परिवार में शोषण। कभी–कभी स्त्री द्वारा स्त्री का शोषण होता है। सास– बहू, ननद– भौजाई

और देवरानी– जैठानी के झगड़ों के रूप में। पुरुषों के संकेत पर या पुरुषों को खुश करने की मानसिकता को स्त्रियां छोड़े और आपस में मिलकर एक दूसरे की उन्नति का प्रत्यन्न करें।

'मेरे साक्षात्कार' में लेखिका ने बातचीत में अपने लेखन जीवन से सम्बधित दलित स्त्रियों के बारे में अपने विचार व्यक्त किये हैं। मेरे साक्षात्कार में दलित अस्मिता से सम्बधित सवालों के जवाब दिये हैं। दलितों को अब शिक्षा प्रगति का सोपान लगने लग गया है। अपने पैतृक रोजगार को ठुकराकर प्रगति की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

कैदी न.–307 सुधीर शर्मा के पत्र–

एक कैदी जिसने सुशीला जी के साथ पत्रव्यवहार किया है। सुधीर शर्मा को 28 ग्राम ब्राऊन सुगर रखने के जुर्म में केन्द्रीय कारागार गोवा में सजा हुई। सुशीला जी के साथ इनका पत्र व्यवहार 10.07.1999 से शुरू होता है। सुशीला जी की 'वह नजर' पढ़कर इनकी सुशीला जी को पत्र लिखने की इच्छा थी पर वे लिख नहीं सके। लेकिन जब बाद में पत्र लिखना संभव हुआ तो इन्होंने सुशीला जी रचना 'वह नजर' की काफी तारीफ की। उन्होंने लिखा कि ऐसी रचना पाठक के पाठकीय विकास के साथ आत्मिक विकास भी करती है साथ ही लिखा कि मानवीय संवेदना की इस तरह की जीवंत रचना कोई महिला ही लिख सकती है। सुधीर जी ने 'वह नजर' को छात्रों और शिक्षिकाओं की सोच मनोभावों, अंतर्द्वन्द पर बड़ी ही मूल्यवान रचना बताया है। उन्होंने सुशीला जी से पुस्तकें मंगवाने का आग्रह किया। प्रतिउत्तर में सुशीला जी ने सुधीर शर्मा को कई पत्र लिखे। आपने अपना संक्षिप्त परिचय दिया है अपने परिवार के बारे में बताइये और आपको जेल कैसे हुई। सुशीला जी ने लिखा कि 'वह नजर' कहानी के पहले पाठक है जिन्होंने इस कहानी के मर्म को सही रूप में जाना है। अगले पत्र में सुधीर जी सुशीला जी को धन्यवाद कहा क्योंकि उन्होंने सुधीर जी को अपनी पुस्तकें भेंट की। साथ ही कहा है कि मैं यह यकीं ही नहीं कर पा रहा कि आप जैसी विदूषी मुझ जैसे कैदी को इतना सम्मान दे सकती हैं। मुझे ही नहीं मेरे साथियों को भी आपने अच्छा पाठक बनाया है।

सुधीर लिखते हैं कि आप एक शिक्षिका होने के साथ ही अपने घर, रचनाकर्म व जन जागरण का काम बखूबी निभा रही हैं। आप सामाजिक क्षेत्र में दलित समाज व नारी की स्थिति पर वैचारिक सक्रियता निभा रही हैं आज के दौर में दलित समाज और नारी को ही सबसे ज्यादा वैचारिक क्रान्ति की जरूरत है। अगर इन दोनों की स्थिति में सुधार आ जाए तो देश और समाज की उन्नति संभव हो जाएगी।

सुधीर जी आगे लिखते हैं सुशीला जी मैं साहित्य व रचनाकार की परिभाषा कई तरह से समझने की कोशिश करता रहा पर असफल रहा। लेकिन अब मैं आपकी रचनाओं को पढ़कर काफी हद तक सफल रहा। आपने इस बात को बड़ी बारीकी से साफ किया है कि कहानी लेखन केवल अपने अनुभव अनुभूतियाँ लिख देने की बात नहीं बल्कि उससे पूरा समाज जुड़ा रहता है।

समाज में नारी की स्थिति निचले पायदान पर है। पुरुष नारी स्वतन्त्रता की हामी तो भरता है लेकिन उसके अन्दर का मर्द सांमती ही रहता है और यह प्रवृति मजदूर से लेकर राजा तक में मौजूद होती है। आप जिस तरह से जीवन को एक साथ कई मोर्चों पर जीती है उससे बाद तो आपके पास समय ही नहीं रहता होगा। लेकिन फिर भी मैं आपके जवाब का इन्तजार करता रहता हूँ। 'टूटता वहम' में दलित समाज व दलित जीवन से सम्बधित कहानियां है जो दलितों के संघर्ष व जीवन के लिए हर मोड़ पर संघर्ष करती हैं उन्होंने आगे लिखा है कि जब से जाना है कि आप वाल्मिकी समाज से है तब से आपके लिए ह्रदय में विशेष आदर व श्रद्धा उपजी है।

वह इसलिए कि आपने स्त्री होने के बाद संघर्ष करके समाज में अपना मुकाम बनाया ही अब जन जागरण के द्वारा दलित समाज की चेतना को जगा रही है। आपने कई जगह अपनी टीस बताई है कि दलित समाज उस गति से जागृत नहीं हो रहा है जिस गति से उसे होना चाहिए। अगले पत्र में सुधीर जी ने लिखा है 'यह तुम भी जानो' पढ़कर महसूस हुआ कि आप रचनाकार के साथ एक जीवन्त कवयित्री भी होगी सोचा न था। आप दलित चेतना को जगाने वाली मूल्यवान कवयित्री है। मेरे ख्याल से यह समस्त शोषित दबे कुचलों को जगाने वाली कृति है। डॉ. सरजू प्रसाद मिश्र लिखते हैं ''डॉ. सुशीला टाकभौरे समाज में नारी की स्थिति का यथार्थ चित्रण करती है नारी के ज्वालामुखी रूप की ओर संकेत कर कवयित्री ने क्रांति के संकेत दिए है। दलित शोषण की चक्की से मुक्त हो साथ ही वह स्वयं जिन दुर्गुणों बुरी आदतों एवं कुरीतियों की कृत्रिम जंजीरों से जकड़ा हुआ है, पहले उससे मुक्त होना जरूरी है।''

आपकी कविता मुझे धर्मग्रन्थ से ज्यादा महत्वपूर्ण लगती है। काफी दिनों बाद प्रत्युत्तर में सुशीला जी ने सुधीर जी को पत्र लिखा कि आपके 8 पत्र मुझे मिले हैं मैंने दो ही भेजे हैं। जो समय की कमी के कारण है सुधीर जी आप 8 साल से कैदी जीवन कैसे जी रहे हैं। मेरे मन में बड़ी जिज्ञासा है आपके शर्मा नाम को मैं आपका परिचय नहीं मानती। यदि हम दुनिया को अच्छी नजर से देखेंगे तो वह जरूर अच्छी नजर आएगी और जीवन के प्रति आस्था भी बढ़ेगी।

सुधीर जी ने प्रति उत्तर में पत्र लिखा कि मैंने आपके प्रथम पत्र को पाकर लिखा था कि आपके पत्र मेरे लिए जीवन दर्शन का दस्तावेज है और रहेंगे आपने लिखा कि यदि हम

दुनिया को अच्छी नजर से देखेंगे तो वह जरूर अच्छी ही साबित होगी। यकीन मानिये मेरा दृष्टिकोण ऐसा ही है।

आपने लिखा शर्मा नाम को आप मेरा परिचय नहीं मानते। मैं खुद जाति वाली बातों से नफरत करता हूँ। मैं व्यक्तित्व व कर्म को महत्व देता हूँ। अम्बेडकर एकलव्य इसके उदाहरण हैं। शरण कुमार लिम्बाले भी अपने कर्म, अच्छाइयों, गुणों से दुनिया से लोहा मनवाया।

सुधीर जी के पत्र के प्रत्युत्तर में सुशीला ने लिखा कि आपके पत्रों की मैं प्रतीक्षा में थी। मैं 12 वर्ष से कॉलेज में पढ़ा रही हूँ लेकिन उस पढ़ाने में और वेतन लेने मे इतनी सार्थकता महसूस नहीं जितनी आपको कुछ कहने और कुछ लिखने के बाद लगाती है। मैं मानती हूँ बीज स्वयं अपने आप में बहुत कुछ होता है मगर उसको अंकुरित होने में पौधे से पेड़ बनने उसके फलों फूलों में धरती का भी अपना योगदान होता है मुझे यकीन है कि अपने वायदे के अनुसार हर हालत में अच्छे इंसान बनकर रहोगे।

पत्र के प्रत्युत्तर में सुधीर जी ने अपने बारे में लिखा है मेरा जन्म एक गरीब परिवार में हुआ। शिक्षा के नाम पर मेरी माँ को अक्षर ज्ञान है तो पिताजी को कुछ ज्यादा अक्षरों का। मैं इकलौता लड़का था। पिताजी के हिटलर कानूनों में जीना पड़ा पिताजी अच्छे इंसान थे तो माँ को याद करने के बाद मुझे भगवान को स्मरण करने की जरुरत नहीं रह जाती। जिन्दगी चल रही थी। एक घटना घटने से माँ पिताजी के बीच तकरार हो गई। पिताजी ने माँ पर बल प्रयोग किया और मैने पिताजी के हाथ को पकड़कर रोक दिया। यह पिताजी के लिए बहुत बड़ी घटना थी। मुझे इस घटना के बाद घर छोड़ना पड़ा। माँ के पैर छुकर बम्बई आ गया। वहां जाने–अनजाने में मुझे सुपरवाईजर की नौकरी मिली। लेकिन फिर एक घटना घटी जिससे मेरी दुनिया बदल गई। मेरे साथी ने सोने की चेन लूटी। बाद में पुलिस उसके साथ मुझे भी ले गई। मैं दिन रात रोता रहता था। कि मुझे यहां से कोई बाहर निकाले। लेकिन उम्मीद नजर नहीं आती बाद में समद नामक अपराधी ने मुझे वहां से छुड़वा लिया। वह समध अपराध जगत का डॉन था। धीरे–धीरे मैं अपराध की दुनिया के दलदल में धंसता चला गया। समद का एक मित्र ब्राऊन सुगर लेता था। जो मेरा मित्र बन गया। धीरे–धीरे मैं भी ब्राऊन सुगर लेने लग गया और ब्राऊन सुगर मेरी जिन्दगी बन गई और एक दिन 28 ग्राम ब्राऊन सुगर रखने के जुर्म में पकड़ा गया और अब सजा काट रहा हूँ।

इस पत्र के प्रत्युत्तर में सुशीला जी ने सुधीर जी को पत्र लिखा इस पत्र ने गहरे सोच में डुबा दिया। आप कहां से कहां पहुंच गए और अब आप अपराधों की दुनियां में से निकलकर अपराध की दुनिया में ही जाना चाहोगे। तब मुझे भय हुआ कि मैं एक कैदी से नहीं अपराधी के साथ पत्र व्यवहार कर रही हूँ। मैं आपकी ब्राऊन सुगर की लत और उसके परिणामों के विषय में जानती हूँ। लम्बी सजा देने का भी यही कारण है कि जेल में रहकर यह आदत छुड़ाई

जाए। जेल से छुटने के बाद आप क्या करना चाहोगे। अगले पत्र में सुधीर जी ने लिखा मेरी इस बात पर आपको भय लगा कि मैं अपराध की दुनिया में ही जाऊंगा। भय लगना स्वाभाविक था। ब्राऊन सुगर को याद करता हूँ तो मेरी आत्मा कांप उठती है। ब्राऊन सुगर के प्रति मेरे मन में घृणा है। आपको यह जानकर अच्छा लगा कि मैं छुटने के बाद दिल्ली में अपने माता–पिता की सेवा करना चाहता हूँ।

सुशीला जी ने प्रत्युत्तर में सुधीर जी को लिखा कि अज्ञेय की कुछ पंक्तियां– ''मैं अपना सच लिखता हूँ लिख लिखकर सब झूठा करता हूँ।'' अपना सच जरूर लिखिए आपके विवेक ज्ञान चिन्तन मनन और सूक्ष्म दृष्टि के ध्यान में रख मैं यह आशा करती हूँ कि आप मेरी इस बात को गहराई के साथ जरूर समझेंगे।

सुधीर जी अगले पत्र जवाब में लिखते हैं यहां अधिकांश कैदी दलित समाज के थे। कुछ महिलाएं झोपड़पट्टियों में रहने वाली जो झगड़ा मरपीट जैसे अपराध के कारण यहां थी। गरीबी और सामाजिक विषमता के कारण अन्याय भी व्यक्ति को अपराधी बना देते हैं। लेकिन आप जैसे एक दलित लेखिका जुझारू स्त्री एक कैदी को किस प्रकार चिन्तनशील बनाती है जो हमारे नामी लेखक न कर सके। आपकी रचना साक्षात्कार उन दूषित पत्रकारों के चेहरे को उधेड़ती है जो किसी लेखिका का साक्षात्कार के नाम पर सुख पाना चाहते हैं। वे आगे लिखते हैं कि आपने जो पंक्तियां मुझे लिखी थी। ''मैं अपना सच लिखता हूँ लिख–लिख कर झूठा करता हूँ मुझे निरन्तर मथती रही है।

आपके पत्र मेरे लिए जीवन दर्शन की गुत्थियों को समझने सुलझाने वाले दस्तावेज से होते हैं आपकी आर्थिक मदद के अलावा आपने मुझे एक सच्चे दोस्त की तरह जो सहारा दिया है वह अनमोल है आपकी व्यवहारिक मदद से मुझे नारी की शक्ति साहस करूणा का वास्तविक परिचय मिला। प्रत्युत्तर में सुशीला जी ने लिखा है कि 25 दिसम्बर को महाड़ में राष्ट्रीय महिला परिषद की ओर से गोवा आऊंगी और कोशिश करूंगी की आपके केन्द्रीय कारागार में आ सकूं। कारागार से मुक्त होकर आप भी अपने जीवन और भविष्य के विषय में सोचे। ऐसा कुछ करें कि बाद में अफसोस न हो।

सुधीर जी ने पत्र के जवाब में लिखा है कि 25 दिसम्बर को महाड़ में राष्ट्रीय महिला आयोजन में जा रही हैं। जानकार खुशी हुई। आपने जेल में आकर मुझसे मिलने की इच्छा जताई। इसके लिए मैं अपने आप को धन्य समझ रहा हूँ। आपने मेरे कैदमुक्त होने पर खुशी जताई हैं।

काफी दिनों बाद सुधीर जी को पत्र लिखा कितने दिन बीत गए आपका कोई पत्र नहीं मिला। एक कैदी से पत्र व्यवहार पर घर में जो प्रतिक्रिया हुई वह लेखिका के लिए द्वन्द्व की स्थिति थी। पहली बार आपका पत्र मेरे घर आया तो सब मुझे तीखी नजरों से देख रहे थे मैने

पूछा क्या हुआ। तो छोटी बेटी ने बड़े उल्लास के साथ बताया मम्मी जेलर का पत्र आया है आपने बताया कि जेल का कठिन समय साहित्य पढ़कर काटा। अब मैं आपके पत्रों का इन्तजार कर रही हूँ। क्या आप किसी बात से नाराज है या व्यस्त हो गए है। पत्र भेजना ही भूल गए।

सुधीर जी द्वारा विवरण दिया जाता है जनवरी में कैदमुक्त होने के बाद कुछ दिन गोवा में रहा। फिर फरवरी में मुम्बई आया। 11 वर्ष बाद भी लोगों ने मुझे अपने जेहन में जिंदा रहा। यह देखकर में दंग रह गया। सुशीला जी ने प्रत्युत्तर में लिखा की आपका पत्र मुम्बई के बहरामपाड़ा से आया जो अपराध जगत के लिए जाना जाता है। मुझे लगा कि मेरे पत्र में लिखी वे अनमोल बातें सब व्यर्थ ही रही जिन्हें आप पत्रोत्तर में अनमोल बताते हुए उनके अनुसार अच्छी राह पर चलने का विश्वास दिलाते थे। सब कुछ अच्छा लगा था मगर आपकी बहरामपाड़ा जाने की बात बिल्कुल अच्छी नहीं लगी।

सुधीर के कैदी जीवन के बाद सुशीला जी मैं यहां पर श्री रामानन्द सरस्वती पुस्तकालय में लाइब्रेरियन का कामकर रहा हूँ। विभूति जी दलित तबके के प्रति संवेदनशील है। आपने अम्बेडकर के विचारों का गहरा अध्ययन किया है। तो आपके प्रति गहरे संजीता हो गए। आपके 'संघर्ष' में अम्बेडकर के विचारों को गहरे जान सके हैं। आपके कथा नायिका–नायक अन्याय और शोषण के खिलाफ आत्मचेतना पाते ही शोषण अन्याय के खिलाफ तनकर खेद हो जाते हैं। सच में गांवों में जाति गतभाव बहुत गहरे हैं। दलित लोगों के लिए 'संघर्ष' मूल्यवान कृति है। तीन दलित लड़कियां 'सघर्ष' की प्रतियां ले गई है।

सुशीला जी लाइब्रेरी में दलित आन्दोलन से जुड़े दलित जाति के उद्धारक महामानवों का जीवन चरित्र और उनका साहित्य नहीं होने पर नाराज होती है। मैंने आपको आत्मकथा लिखने को कहा था। वह समाज के लिए प्रेरणादायक होगी। मैं आपके पत्रों को एक कैदी जीवन के दस्तावेज के रूप में समाज के सामने प्रस्तुत करना चाहती हूँ ताकि पाठक समाज एक कैदी की मनोव्यथा को ठीक तरह से समझे।

सुशीला कैदी नम्बर 307 को पंसद है 'शिवानी का कैंजा' के बारे में जानकर परेशान होती है। तब महसूस हुआ यहां मेरे बड़प्पन की भावना नहीं है। आपको इतना सम्मान और महत्व दिया गया। यह सम्मान आपको उच्च वर्ण उच्च जाति होने के कारण ही सुलभ हुए है क्योंकि हम जैसे दलितों को ये कभी नहीं मिलते। ऐसे समय में मुझे मेरे शंकर भैया की, मोहन भैया की और अपनी जाति समुदाय के उन सभी सज्जन इमानदार होनहारों की याद आती है। जिनको भेदभाव शोषण अन्याय के कारण अपनी राह पर आगे नहीं बढ़ने दिए गए। आपके संस्मरण में भी मेरी किसी बात को कोई स्थान नहीं मिला। आप जैसा सहयोग यदि सभी कैदी को मिले शोषण और अन्याय अत्याचार से पीड़ित दलितों को मिले तो उनके जीवन में परिवर्तन हो सकता है। मुझे गोस्वामी तुलसीदास जी का कथन वर्तमान में भी चरितार्थ लग रहा है। कि

विप्र गुणहीन होने पर भी पूजनीय होता है जबकि शूद्र गुणवान होने पर भी दण्डनीय माना जाता है। मैं समाज में यही देखती हूँ कि दलित पिछड़े वर्ग के लोगों को जन्म के साथ ही अछूत घृणित और अपराधी मान लिया जाता है। उन्हें शिक्षा पाने से रोका जाता है। उन्हें इच्छी नौकरी पाने से रोका जाता है। जो मेरे परिवार के साथ भी हुआ है।

पूरे देश में इस तरह की दलितों के साथ घटी घटनाओं को वे जरुर जानते हैं मगर क्या किसी दलित जाति के अन्याय ग्रस्त व्यक्ति को ऊपर उठाने का भी प्रत्यन्न किया है। मैं बड़ी बहन की तरह आपसे बहुत कुछ कहना चाहती थी मगर अब तो आप पत्र ही नहीं लिखते हैं आपने ऐसा क्यों किया। लेखिका अन्त में जो लिखती है वह पूरे समाज से सवाल करती हुई लगती है।

निष्कर्ष–

दलित साहित्य की वर्तमान समय में जड़े गहरी हो रही है। दलित साहित्य समाज की लोकतांत्रिक भावना और उसकी स्थापना के प्रति अपनी प्रतिबद्धता सिद्ध कर चुका है। दलित साहित्य हर विधा में लिखा जा रहा है जहां तक की कैदी के बारे में ऐसा जीवन जिस पर सोचना लिखना बहुत दूर की बात है। लेखिका न केवल लिखती है अपितु मानवीय सरोकार स्थापित करती है। दलित साहित्य के उद्‌भव से पूर्व हिन्दी साहित्य में डॉ. अम्बेडकर के योगदान को अनदेखा ही किया। दलित शब्द को अर्थ जाति बोधक नहीं बल्कि समूह की अभिव्यंजना देता है। जब यह दलित शब्द साहित्य के साथ जुड़ता है तो एक ऐसी साहित्यिक धारा की ओर संकेत करता है जो मानवीय सरोकारों और संवेदनाओं ही यथार्थवादी अभिव्यक्ति है। दलित साहित्य वर्णव्यवस्था से उपजे जातिवाद का विरोध करता इस विरोध में 'नकार' शब्द का स्वर आक्रोशित होता है। जिसमें मानवीय संवेदना और सरोकारों को महत्वपूर्ण माना जाता है। अम्बेडकरवादी विचार ही उसकी एक मात्र प्रेरणा है। सुप्रसिद्ध दलित साहित्यकार बाबूराव बागूल के अनुसार ''मनुष्य की मुक्ति को स्वीकार करने वाला मनुष्य को महान मानने वाला, वंश, वर्ण, जाति, श्रेष्ठतत्व का प्रबल करने वाला ही दलित साहित्य है।''[48] दलित साहित्य मुक्ति आन्दोलन का एक हिस्सा है। दलित विमर्श में जाति एक प्रमुख है दलित विमर्श भेद–भाव के खिलाफ विद्रोह का भाव है।

✦✦✦

सन्दर्भ सूची–

1. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र (शरण कुमार लिम्बाले) पृ.सं. 140
2. वहीं से पृ.सं. 31
3. वहीं से पृ.सं. 43
4. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र शरण कुमार लिम्बाले पृ.सं. 158
5. वहीं से पृ.सं. 154
6. दलित साहित्य के आधार तत्व– हरपाल सिंह अरूष
7. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, शरण कुमार लिम्बाले पृ.सं. 156
8. वहीं से पृ.सं. 150
9. दलित और अप्रजातान्त्रिक क्रान्ति, उपनिवंशीय भारत मे डॉ. अम्बेडकर एवं दलित आन्दोलन, सेज, रावत पब्लिकेशंस, नई दिल्ली पृ.सं. 2
10. दलित साहित्य के आधार तत्व– हरपाल सिंह अरूष पृ.सं. 53
11. वहीं से पृ.सं. 104
12. विमल थोरात, मराठी दलित कविता और साठोत्तरी कविता में सामाजिक चेतना हिन्दी बुक सेंटर नई दिल्ली 1999 पृ.सं. 28–29
13. दलित लेखन में स्त्री चेतना की दस्तक, पृ.सं. 256
14. दलित चेतना की ऊर्ध्वमुखी यात्रा–दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र– शरण कुमार लिम्बाले– पृ.सं. 9
15. वहीं से पृ.स. 43
16. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र– शरण कुमार लिम्बाले– पृ.सं. 117
17. वहीं से पृ.सं. 131
18. वहीं से पृ.सं. 144
19. दलित साहित्य के आधार तत्व– हरपाल सिंह अरूष पृ.सं. 77–78
20. दलित साहित्य के आधार तत्व– पृ.सं. 104
21. दलित साहित्य– अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ– ओमप्रकाश वाल्मीकि पृ.सं. 73
22. दलित लेखन में स्त्री चेतना में दस्तक– पृ.सं. 279
23. वहीं से पृ.सं. 275
24. सुशीला मिश्रा– आधुनिक हिन्दी कहानी में नारी की भूमिका, वाणी प्रकाशन– पृ.सं. 114
25. दलित लेखन में स्त्री चेतना में दस्तक– पृ.सं. 182

26. हिन्दी दलित कथा साहित्यः अवधारणाऐं और विधाएं, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा. लि.) दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010 पृ.सं. 302
27. डॉ. तेजसिंह, अम्बेडकरवादी विचारधाराः इतिहास और दर्शन, सम्पादक वेदप्रकाश लोकमित्र प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2012 पृ.स. 231–232
28. दलित साहित्य के संदर्भ में 'शिंकजे का दर्द' अनुशीलन पृ.सं. 159
29. सम्यक भारत, संपादक मंजू मौर्य, नवम्बर 2013 पृ.सं. 15
30. दलित लेखन में स्त्री चेतना में दस्तक– पृ.सं. 162
31. वहीं से पृ.सं. 21
32. टूटता वहम्ः जाति के प्रश्न के विमर्श को गति देती कहानियां–
डॉ. उषा, वाणी प्रकाशन पृ.सं. 83
33. ओमप्रकाश वाल्मीकि–दलित साहित्य अनुभव संघर्ष एवं यथार्थ पृ.सं. 62–63
34. सुशीला टाकभौरे– दलित साहित्य एक आलोचना दृष्टि पृ.सं. 18
35. भगवानदास– मैं भगी हूँ पृ.सं. 03
36. सुशीला टाकभौरे– दलित साहित्य एक आलोचना दृष्टि पृ.सं. 73
37. दलित लेखन में स्त्री चेतना की दस्तक– पृ.सं. 336–337
38. दलित लेखन में स्त्री चेतना की दस्तक पृ.सं. 337
39. दलित साहित्य– एक आलोचना दृष्टि पृ.सं. 93
40. दलित साहित्य– एक आलोचना दृष्टि
41. दलित साहित्य– एक आचोलना दृष्टि पृ.सं. 121
42. दलित लेखन में स्त्री चेतना की दस्तक पृ.सं. 337
43. वहीं से पृ.सं. 338
44. दलित साहित्य– एक आलोचना दृष्टि पृ.सं. 176
45. प्रभाकर मांडे– दलित साहित्य निरालेपन, धारा प्रकाशन, औरंगाबाद 1979 पृ.सं. 197
46. मेरे साक्षात्कार पृ.सं. 9
47. वहीं से पृ.सं. 15
48. दलित साहित्य– अनुभव संघर्ष एवं यथार्थ पृ.सं. 68

✦✦✦

नौवां अध्याय

उपसंहार

9. उपसंहार–

'सुशीला टाकभौरे के साहित्य में महिला चेतना' शीर्षक शोध प्रबन्ध के विविध सन्दर्भों में विचार करने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि आज दलित एवं स्त्री विमर्श ने समाज में हलचल पैदा कर दी है। यह जाहिर है कि दलित साहित्य दलितों द्वारा भोगे हुए शोषण, उत्पीड़न और संघर्ष का साहित्य है। जिसमें भोगे हुए यथार्थ, कटु अनुभवों एवं विद्रोह की सशक्त अभिव्यक्ति है। सुशीला जी हिन्दी दलित साहित्य की अग्रणी महिला साहित्यकारों में से एक हैं। अनेक अवरोधों बाधाओं, चुनौतियों, झंझावतों से जूझने के उपरान्त, दलित साहित्य अपनी प्रबल उपस्थिति साहित्य में दर्ज करा चुका है व दलित रचनाकारों द्वारा साहित्य की विभिन्न विधाओं में निरन्तर सृजन हो रहा है। सुशीला जी का साहित्य समाज के उत्थान तक ही सीमित नहीं रहा, इनकी दृष्टि दलित नारी पर बराबर टिकी रही है, जो जाति, धर्म व पितृसत्ता से समान रूप से प्रताड़ित है। दलित नारी की मुक्ति की आकांक्षा की पगध्वनि इनकी रचनाओं में सुनने को मिलती है।

वर्णवादी कुव्यवस्था के फलस्वरूप समाज के सबसे निचले पायदान पर पड़े दलित समुदाय की अति दयनीय यथार्थ स्थिति से अवगत करवाया है। सुशीला जी के काव्य संग्रहों में दलित व्यक्ति समाज और स्त्री चेतना से सम्बधित कविताएं हैं। इनके काव्य संग्रहों में प्रणय, श्रृंगार और प्रकृति अनुपस्थित है, सामाजिक चिन्तन की प्रधानता है और यही इनकी विशिष्टता है। शिल्प प्रदर्शनी का आयोजन किए बिना, अपनी बात कहने का प्रयास है। डॉ. विमल कीर्ति ने माना है कि ''कवयित्री निश्चित तौर पर 'क्रान्ति का दूत' बनकर 'समष्टि की सन्तान' बनना चाहती है, उसी प्रकार साहस के साथ सदियों की रूढ़ियों की बेड़ियों को तोड़ने का आह्वान भी करती है। वह मनु से भी सीधा सवाल करती है और विधाता को भिखारी की संज्ञा देकर, कटघरे में खड़ा करती है। इस तरह से इनके काव्य संग्रहों उनके स्वतंत्र चिन्तन और भाव का बड़ा बेजोड़ मिलन है।'' इनके काव्य संग्रह का साहित्यिक मूल्य तो है ही, किन्तु उससे भी ज्यादा और मौलिक है समाज क्रान्ति की दृष्टि, जो इनके काव्य संग्रहों से व्यक्त हुई हैं।

सच यह भी है कि आशय की व्याप्ति व गम्भीरता के लुप्त हो जाने का जितना खतरा सपाट बयानी में होता है उतना ही क्लिष्ट अभिव्यक्ति में भी। लेकिन सुशीला जी की कविताओं ने बहुत ही सरलता से इन जोखिमों से निस्तार पा ली है।

लहरें मिट जाएगी

तो क्या हुआ
सागर तो रहेगा साथ में
हलचल मचा देंगे हम खुद
फिर तो
लहरों का तूफान होगा ।

इनकी कविताओं में 'एकलव्य' 'शंबूक' 'बैताल' जैसे मिथकों का यथार्थ रूप में प्रयोग हुआ है जो प्रायः इस चिन्तन के सभी रचनाकारों के सृजन में कहीं न कहीं बराबर मौजूद दिखाई देता है। पर मिथकों के प्रयोग की दृष्टि और कथ्य में नयापन होने के साथ, उनका तेवर भी अपना है। इस प्रकार सुशीला जी की कविताओं में भी जीवन आवेग की यह निरन्तर प्रबल जीवनशक्ति तथा तीव्र सामाजिक चेतना के रूप में अभिव्यक्त हुई। बीसवीं शताब्दी के पहले से ही दलित विमर्श और स्त्री मुक्ति आन्दोलन तेजी से जोर पकड़ रहा था। पुरुष प्रधान संस्कृति ने आरम्भ से ही स्त्री को दोयम दर्जा दिया है। स्त्री मुक्ति आन्दोलन अथवा स्त्री विमर्श में स्त्री जीवन की समस्याएं– अपमान, पीड़ा, दलन, शोषण हिंसा, बलात्कार आदि चित्रित हैं। भारतीय संविधान में डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर ने स्त्री को बराबरी का दर्जा और अधिकार दिए हैं पर अब भी स्त्री शोषण से मुक्त नहीं हो पाई। वह दोहरे शोषण का शिकार है– एक तो जाति दूसरा स्त्री होने के कारण । तसलीमा नसरीन तो पूरे विश्वास के साथ कहती हैं– ''औरत का कोई देश नहीं है, देश का अर्थ अगर सुरक्षा है, आजादी है, तो निश्चित रूप से औरत का कोई देश नहीं होता। धरती पर कहीं कोई औरत सुरक्षित नहीं है।'' (तसलीमा नसरीन–औरत का कोई देश नहीं, अनु. सुशीला गुप्ता, पृ.स. 23)

सुशीला जी ने अपने लेखन में स्त्री पक्ष और वर्षों से चली आ रही गलत रूढ़ि परम्पराओं के खिलाफ कलम चलाई तथा जीवन के बदलते संदर्भों को बहुआयामों से प्रस्तुत किया। इनकी कहानियों में वैचारिक गरिमा एवं बौद्धिक अनुशासन दिखाई देता है। इनकी कहानियों के नारी पात्र विगलित जड़ संस्कारों का तिरस्कार कर भूतकालीन पारम्परिक गलत रूढ़ियों और परम्पराओं से विद्रोह कर, नई स्थितियों और मूल्य स्थापन का बोध देते हैं। कहा जा सकता है कि सुशीला जी अपने लेखन के माध्यम से दलितों की समस्याओं को वाणी देने का कार्य कर ही है। परम्परागत अमानवीय सामाजिक मूल्यों व जातियता का विरोध भी किया है। साथ ही अपनी कहानियों के माध्यम से अशिक्षा की समस्या से उत्पन्न दलितों की समस्या को व्यक्त किया है। इन्होंने नारी को दलित से भी दलित मानते हुए, उनकी समस्याओं को स्पष्ट किया है।

दलित लेखन के अन्तर्गत अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे साहित्यकारों में डॉ. सुशीला टाकभौरे अपना विशेष स्थान रखती हैं। इनका प्रयास रहा है कि वह दलित समाज में

अम्बेडकरवादी विचारधारा को सही ढ़ंग से व्याप्त करा सके। इस हेतु वे स्वयं कहती हैं– ''इनके संघर्ष की दिशा और सफलता के पीछे बाबा साहब अम्बेडकर की विचारधारा कहीं प्रत्यक्ष और कहीं परोक्ष रूप से कार्यरत है।'' (डॉ. सुशीला टाकभौरे 'संघर्ष पृ.स. 05)

इनके उपन्यासों में भी दलितों में दलित जातियों की संस्कृति रीतिरिवाज और प्रतिदिन होते इस समाज के जीवन संघर्ष का चित्रण है। उपन्यासों में लेखिका यह बताने में सफल रही है कि वाल्मीकि समाज, मातंग समाज बदलाव के लिए ठहरा हुआ समाज नही है, बल्कि बदलाव के लिए लगातार संघर्ष कर रहा है और तड़प रहा है।

सुशीला जी अन्तरजातीय विवाह द्वारा ही जातिप्रथा, दहेज प्रथा दलित स्त्रियों के शोषण दमन का सफाया मानती हैं। सामाजिक समता अन्तरजातीय विवाह के रास्ते ही निकलेगा। उनका मानना है कि अन्तरजातीय विवाह होने चाहिए। इसी से जाति भेद वर्णभेद मिटेगा और सामाजिक एकता आएगी। वे अन्तरजातीय विवाह से ऊंचनीच जांति–पांति जैसे भेदभाव का उन्मूलन देखती हैं। लेखिका के विचार केवल उच्च शिखर तक पंहुच कर शिथिल पड़े हैं बल्कि यथार्थ के साथ वास्तविक रूप से जुड़कर एवं अपने कल्पनाओं में भी यथार्थ के रंग भरकर उन्होंने ऐसा तानाबाना बुना है कि उनके द्वारा प्रस्तुत हर एक दलित साहित्यिक कृति में जैसे सत्य ही सजीव हो उठा है। इनकी दलित रचनाओं को पढ़ने वाले हर एक पाठक को ऐसा लगता है कि सब कुछ ऐसे उनकी आंखों के सामने घटित हो रहा है लेखिका की आत्मकथा सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक उत्पीड़न के विभिन्न असहनीय पहलुओं को अध्येता के समक्ष रखती है। दलित अन्याय का परिमार्जन ही नहीं चाहता वह अपने लिए सम्मानपूर्ण मानवीय जीवन एवं समानता के आधार पर सभी मानवाधिकारों के उपयोग की संवैधानिक सुविधा भी चाहता है। लेखिका ने नारी शिक्षा को अधिक महत्व दिया है दलित समाज में शिक्षा का अभाव होने के कारण, दलित मानव अपने अधिकारों को जानता ही नहीं है तथा सदियों से चली आ रही परिपाटी के कारण अन्याय, अत्याचार, वर्णभेद, जातिभेद, कलुषित परम्पराओं को सहते आ रहा है। लेखिका ने दलित समाज को नयी दिशा समान अधिकार आदि के लिए दिशा दिखाने का प्रयास आत्मकथा के माध्यम से किया है।

जहां तक प्रश्न है दलित समाज और दलित स्त्रियों का तो दलित समाज में नारी पुरुष के कन्धों से कन्धा मिलाकर चलती हैं। हम कह सकते हैं कि दलित में कुछ हद तक स्त्री को समानता का अधिकार प्राप्त है। ऊपरी तौर पर देखने से पता लगता है कि दलित समाज में स्त्री की हैसियत अन्य हिन्दू समाज की स्त्रियों से कहीं बेहतर है, क्योंकि हिन्दू समाज में औरत का जितना शोषण हुआ है उतना दुनिया के किसी समाज में नहीं हुआ। किन्तु इतने भर से सन्तुष्ट नहीं हुआ जा सकता क्योंकि ''दलित महिलाओं की त्रासदीं यही है कि उन्हें एक गाल पर ब्राह्मणवाद का तो दूसरे गाल पर पितृसत्ता का थप्पड़ खाना पड़ता है।'' (डॉ. एन सिंह,

दलित साहित्य के प्रतिमान वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रथम संस्कृरण– 2012 पृ.सं. 241) इस प्रकार सुशीला जी का सम्पूर्ण लेखन वेदना का दस्तावेज तो है। ही, दलित विमर्श के साथ, नारी शोषण का सच्चा खुला बयान और उससे मुक्ति पाने का आह्वान भी है। 'शिकंजे का दर्द' में जो अपमान, तिरस्कार उपेक्षा की अभिव्यक्ति हुई है, वह अपने सम्मान को समझने और उसे प्राप्त करने की जद्दोजहद है। उनका यह कथन बड़ा सटीक, मर्मस्पर्शी और सारगर्भित है कि 'अपमान वही महसूस करते हैं जिन्होंने सम्मान को समझा हो। ''सुशीला जी ने इस मनुवादी पुरुष प्रधान सत्ता को जो आईना दिखाया है, वह उसके गुरूर को तोड़ने का सार्थक प्रयास है।

हम इनके नाटकों की बात करे तो इनके नाटक अपने आप में उद्देश्यपूर्ण नाट्यकृति है। इनके नाटकों में जातिभेद पर गहरा व्यंग्य किया गया है। सुशीला जी ने नाटकों में शोषण और भेदभाव की परम्परा के विरूद्ध अपनी बात कही है। इन्होंने अधंश्रृद्धा, स्त्री दास्य, धार्मिक सामाजिक कुरीतियां तथा पुरुषसत्ता समाज का चित्र हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। विवेक, अविवेक बुद्धिमन, भावना, तर्क अज्ञान विज्ञान के द्वन्द्व को भी अधोरेखांकित किया है।

लेखिका नाटकों के माध्यम से पुरुष प्रधान समाज के उस सच को सामने लाती है जिसे पुरुष जानते हुये भी स्वीकार नहीं करता। नारी में उठ रही परिवर्तनकारी चेतना को लेखिका ने बड़े ही सहज सरल ढ़ंग से तर्क के आधार पर स्थापित करने का प्रयास किया है, जिसमें वह सफल भी हुई है। नाटकों का संदेश परिवर्तित समाज का निर्माण है, जिस हेतु लेखिका का कहना है कि अपने रूढ़िवादी, परम्परावादी व विषमतावादी चश्मों अर्थात दृष्टिकोणों के बदलने की आवश्यकता है। नाटक अपने आप में वर्तमान नारी के परिवर्तित होते उस रूप को चरितार्थ करता है। जिसे पाने हेतु स्त्री सदियों से संघर्षरत रही है। लेखिका यही स्थापित करना चाहती है कि नारी को समाज में समानता का अधिकार दिया जाना चाहिए, न कि दासी अथवा दोयम दर्जे का।

आधुनिककाल में साहित्य ने नारी लेखन का एक नयी दिशा दी है। नारी की वेदना, उत्पीड़न और पीड़ा, सार्वभौमिक है। संवेदनशील डॉ. सुशीला जी ने नारी स्थिति को इतिहास के पन्नों पर से यथार्थ सामाजिक जीवन में उपस्थित किया है। आदिकाल और मध्ययुग में कवि की दृष्टि केवल नारी के सौन्दर्य तक रही। वर्तमान युग में नारी के अंतर्मन में झांकने का प्रयास कई तरह से किया जा रहा है। नारी अपनी दृष्टि से पुरुष, समाज, संसार को जानना परखना चाहती है। नारी विमर्श में नारी स्वतंत्रता पर जोर दिया है। नारी स्वतंत्रता से तात्पर्य पुरुष का विरोध करना और नैतिकता का उल्लघंन करना नहीं है बल्कि अपने अधिकारों को पाना है आधुनिक काल में नारी अस्तित्व रक्षा के लिए संघर्षरत है।

सुशीला जी का एक लेख 'दलित आन्दोलन से जुड़े महिलाओं के सवाल' महत्वपूर्ण लेख है। दलित स्त्री की तरह आदिवासी स्त्री पर एक पाठ रखकर हाशिए का दर्द को सही

दिशा दी है। हिन्दू धर्म व ग्रन्थ लिंगभेद को बढ़ावा देते हैं। पुत्र को महत्व, पुत्री को भार मानते रहे हैं। स्त्री को पशु समान निरीह माना गया, इसलिए वस्तु की तरह दान कर देने की परम्परा रही है। पुरुषवादी समाज कन्या भ्रूण हत्या का जिम्मेदार रहा है। इस लेख में आदिवासी महिला के बतौर आदिवासी मुद्दों पर भी चिन्तन किया गया है। भारतीय समाज में जिस तरह से दलित उपनिवेश है उसी तरह से स्त्री भी। भारतीय समाज में दलित स्त्रियों के सन्दर्भ में भी वही बात कही जा सकती है जो हर किसी समाज की स्त्री के सन्दर्भ में। भारतीय साहित्य में दलित स्त्री लेखन ने ऐसा परिवेश पैदा किया है कि अब ये स्त्रियां इस बात की मुहताज नहीं है कि और कोई उन पर लिखे बल्कि वे खुद अपने जीवन के अनुभव अभिव्यक्त कर रही है सुशीला टाकभौरे की चिंता यह है कि दलित आन्दोलन से जुड़ी महिलाओं के समक्ष यह बहुत बड़ा प्रश्न है कि समाज में महिलाओं के प्रति मानसिकता को कैसे बदला जाए, क्योंकि समाज की इसी मानसिकता के कारण सम्पूर्ण दलित महिलाएं नारी मुक्ति आन्दोलनों से जुड़ नहीं पाती हैं। आज भी वे अपने घर के पुरुषों की अनुमति के बिना नारी विकास सम्बन्धी कार्यक्रमों में जा नहीं पाती। उनका कहना है कि नारी के प्रति पुरुषों की मानसिकता बदली जाए तभी दलित महिलाओं के प्रश्नों और समस्याओं का समाधान हो सकेगा।

यूं दलित आन्दोलन से जुड़ी महिलाओं के पारिवारिक सवाल अनेक हैं। पुरुष प्रधान समाज में परिवार का मुखिया पुरुष होता है, लेकिन परिवार की सम्पूर्ण जिम्मेवारी स्त्रियों पर होती है। उनका अपना विकास इसलिए नहीं हो पाता क्योंकि सभी के विकास करने का उत्तरदायित्व उनका होता है। सुशीला जी ने इसे नैतिक दबाव की संज्ञा दी है। दलित महिलाओं में स्वावलम्बी न होने की समस्या भी है। हांलाकि जो स्वावलम्बी हैं, उनके ऊपर नयी आर्थिक नीति का भी प्रभाव पड़ा है। नयी आर्थिक नीति का मतलब निजी क्षेत्रों का विस्तार और सार्वजनिक क्षेत्रों का संकुचन।

सुशीला जी का मत है कि मानव सृष्टि निर्माण में स्त्री पुरुष दोनों की समान भूमिका होती है व एक–दूसरे के पूरक हैं। असमानता के लिए कोई कारण न होने के बाद भी पितृसत्ता के पक्षधरों ने स्त्री को पुरुषों के साथ खेती उद्योग आदि में कंधे से कंधा मिलाकर समाज विकास में अपना योगदान देती रही हैं। समाज सुधारकों ने स्त्री की विराट क्षमताओं को पहचाना और समाज विकास में उसके योगदान को और ज्यादा बढ़ाने के लिए नारी शिक्षा पर जोर दिया गया तथा कहा गया कि ''एक पुरुष की शिक्षा एक पुरुष तक सीमित रहती है जबकि एक नारी की शिक्षा दो संपूर्ण परिवारों की शिक्षा होती है।'' स्वामी विवेकानन्द ने कहा था ''किसी सभ्यता का मूल्यांकन इस बात पर किया जा सकता है कि वह अपनी महिलाओं के साथ कैसा बर्ताव करता है।'' सुशीला जी के विचार और भावनाएं दलित जीवन का यथार्थ है इनके साहित्य में सवर्णों के षड़यन्त्रों के साथ, दलितों के शोषण उत्पीड़न और अभावपूर्ण जीवन

का चित्रण है। इनका मानना है कि आज भी दलितों को शिक्षा से वंचित रखे जाने के षड़यत्र चलते रहते हैं तब बीसवीं शताब्दी के 60 और 70 के दशक की स्थिति को प्रमाणित रूप में समझा जा सकता है। हिन्दू समाज व्यवस्था मे दलितों का जीवन नरकीय रहा है। उन्हें पशु से बदतर समझा जाता है। इस कटु सत्य के लेखिका ने इन शब्दों में व्यक्त किया है। ''यहां की संस्कृति और परम्पराएं देश के अन्य शहरों और गांव जैसी है। सदियों से चली आ रही सामाजिक भेदभाव और छुआछूत की परम्परा यहां भी है। पूरा गांव जाति और वर्ण के अनुसार अलग–अलग मौहल्लों में बंटा है। ब्राह्मण, बनिया, कुनबी बसकी अलग–अलग बस्तियां है। इन सबकी बस्तियों से दूर गांव के बाहर नाले के किनारे अछूत जाति के घर है।'' (नीला आकाश'' पृ.सं.9)

पुराने गांवों में दलित बस्तियां पश्चिमी छोर पर होती हैं। कहीं भी पूर्व दिशा या मध्य में नहीं हुआ करती। लेखिका कहती हैं परिवर्तन समय की मांग है मुक्ति यात्रा में कर्मकांडों को त्यागना होगा, सड़ी गली मान्यताओं की पोशाक उतारना होगा। अशिक्षा और अंधविश्वास हमें पतन के गर्त की ओर ले चलेंगे। भेदभाव और अस्पृश्यता की मार से प्रताड़ित होने का एक कारण यह भी है। मुक्ति दूसरों से ही नहीं, अपने आप से भी चाहिए। बनी बनायी परिपाटी से, घिसी पिटी परम्पराओं से, जर्जर मान्यताओं से।

अतंत हम यह कह सकते हैं कि दलित चिन्तकारों में डॉ. सुशीला टाकभौरे जी का विशेष स्थान है। उनका व्यक्तित्व बहु आयामी है। दलित अस्मिता और संघर्षों को लेकर साहित्य की सभी विधाओं में इन्होंने अपनी प्रतिभा दिखायी है। अन्य दलित चिन्तनकारों की तरह सुशीला जी ने भी विद्रोह आक्रोश दलित चेतना, नारी मुक्ति, शोषण के विरुद्व घृणा धार्मिक पांखण्ड अंधविश्वास पुरोहितों की साजिश, जातिभेद आदि विषयों को लेकर कहानी नाटक निबन्ध कविताओं को लिखकर दलित आंदोलन में सक्रिय रूप से योगदान दे रही हैं।

✦✦✦

शोध सारांश

शोध सारांश–

सुशीला टाकभौरे दलित साहित्य की महत्त्वपूर्ण कवयित्री, लेखिका एवं विचारक हैं। इनके लेखन में दलित समाज की पीड़ा, चिंता और दिशा दिखाई देती है क्योंकि पीड़ा की स्वंय भुक्तभोगी रही हैं। साहित्य में दलित समाज, दलित नारी और हाशिए पर जीवन जीने वालों का मार्मिक यथार्थ दिखाई देता है। सुशीला जी ने दलितों और महिलाओं की वास्तविक स्थिति को उजागर किया है। दलित विमर्श, स्त्री विमर्श पर कुछ वर्षों से चर्चाएं हो रही हैं। इस पर बहुत कुछ कहा और लिखा जा चुका है। स्त्री विमर्श और दलित स्त्री सबलीकरण जैसे विषय इक्कीसवीं शताब्दी के प्रमुख विषय हैं, जिन पर लगातार लेखन संगोष्ठियां और आन्दोलन हो रहे हैं। फिर भी समाज में दलितों, महिलाओं और हाशिए पर रह रहे लोगों की स्थिति आज भी कमजोर ही है।

सुशीला जी ने अपनी लेखनी के माध्यम से दलित विमर्श, स्त्री विमर्श पर विचार किया है। इनके साहित्य में दलितों की मार्मिक स्थिति का यथार्थ चित्रण है। देश के लगभग सभी प्रान्तों के दलितों और दलित महिलाओं की स्थिति लगभग एक जैसी है। घर के बाहर भी शोषण और घर के अन्दर भी शोषण का शिकार है। आज भी छल बल के साथ उन पर अन्याय और अत्याचार किया जाता है। पुरुष प्रधान समाज में स्त्री मुक्ति नारी स्वतन्त्रता तथा उनके अधिकारों को लेकर चाहे कितने भी बड़े दावे किये जायें, नारे लगाये जायें, सब व्यर्थ है। यह सब सुशीला जी के साहित्य से ही पता चलता है। वर्तमान समय में गद्य साहित्य को अधिक महत्व दिया जा रहा है। मैं ने 'सुशीला टाकभौरे के साहित्य में दलित महिला चेतना' शीर्षक से एक सारगर्भित शोध प्रस्तुत करने का श्रम किया है। जो अपनी महत्ता व मौलिकता को प्रकट कर विद्वजनों के चिन्तन का विषय बनेगा, यह शोध कार्य श्रद्वेय गुरूवर डॉ. रमेश चन्द मीणा के निर्देशन और आशीर्वाद का प्रतिफल है। जिनके बिना मेरे लिए यह असंभव था। इनके सानिध्य में मुझे दुहरा लाभ प्राप्त हुआ, प्रथम आपकी सतत् साहित्य साधना और द्वितीय गद्य साहित्य में आपकी गहन रूचि व लेखन कार्य। इसके फलस्वरूप मुझे साहित्य की बारीकी जटिलता को समझने में सहायता मिली गुरूवर ने न केवल अपना अमूल्य समय देकर मुझे प्रोत्साहित किया अपितु मेरे इस लघु प्रयास को आलोचनात्मक दृष्टि से देखकर विद्वतापूर्ण सुझाव भी दिए। गुरूवर से प्राप्त शोध निर्देश के लाभ का वर्णन करना मेरे लिए दुष्कर है।

सुशीला जी के साहित्य में प्रयुक्त दलित और स्त्री विमर्श मुझे प्रारम्भ से ही आकर्षित करती रही है। स्त्री विमर्श मेरे शोध का प्रमुख विषय रहा है। चुंकि मै भी एक स्त्री हूँ इसलिए

यह विषय मेरे लिए और भी रूचिकर रहा है। प्रस्तुत शोध प्रबंध को मैने उपसंहार सहित नौ अध्यायों में विभक्त किया है और प्रत्येक अध्याय सुशीला जी के साहित्य का सटीक व तथ्यात्मक विश्लेषण प्रस्तुत कर वर्तमान समय में दलितों और स्त्रियों की स्थिति को प्रकट करता है। सुशीला जी अपने समकालीन लेखकों में अपने लेखन और दलित समाज को नई दिशा देने के कारण प्रसिद्व हैं। प्रस्तुत शोध प्रबंध शीर्षक 'सुशीला टाकभौरे के साहित्य में दलित महिला चेतना' का सम्पूर्ण शोध कार्य लगभग पूर्ण हो चुका है। शोध योजनानुसार सम्पूर्ण शोध प्रबन्ध उपसंहार सहित नौ भागों में विभक्त है। यथा–

- पहला अध्याय– सुशीला टाकभौरे का व्यक्तित्व व कृतित्व
- दूसरा अध्याय– सुशीला टाकभौरे की कविताओं में दलित महिला चेतना
- तीसरा अध्याय– सुशीला टाकभौरे के उपन्यासों में दलित महिला चेतना
- चौथा अध्याय– सुशीला टाकभौरे के कथा साहित्य में दलित महिला चेतना
- पांचवां अध्याय– सुशीला टाकभौरे के नाटकों में दलित महिला चेतना
- छठा अध्याय– सुशीला टाकभौरे के निबन्धों में दलित महिला चेतना
- सातवां अध्याय– सुशीला टाकभौरे की आत्मकथा में दलित महिला चेतना
- आठवां अध्याय– सुशीला टाकभौरे के साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र
- नौवां अध्याय– उपसंहार

शोध कार्य का अध्यायवार सारांश निम्न प्रकार हैः–

पहला अध्याय में सर्वप्रथम सुशीला जी की जीवन यात्रा व चुनौतियों व उनके संघर्ष पर संक्षिप्त प्रकाश डाला है। साथ ही आपके जीवन में वास्तविक घटनाओं और साहित्य के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान को भी रेखांकित किया गया है।

अगले बिन्दू में आपके व्यक्तित्व की खूबियों का वर्णन है सुशीला जी का व्यक्तित्व यथार्थवादी, संघर्षशील, समाज परिवर्तन करने की चाह, साहसी और विशेष कर महिलाओं के प्रति लेखन के स्वभाव से युक्त है। आप तथ्य की गहराई तक पहुंचना चाहती हैं तथा उसे पाकर रहती हैं। सुशीला जी आधुनिक विचारों के साथ समाज परिवर्तन की लेखिका रही हैं। आपने शिक्षा ग्रहण करने में भी बड़ी जद्दोजहद की फिर भी हार नहीं मानी। अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर रही जो समाज के लिए प्रेरणा दायी है।

सुशीला जी अम्बेडकरवादी विचारधारा से युक्त रही। साथ ही सावित्री बाई फुले की विचारों को भी जीवन में उतारा। आपके साधारण रहन–सहन को देखकर कोई सहज ही यह नहीं कर सकेगा कि आप कॉलेज की प्राध्यापिका रह चुकी हैं। सादगी, सरलता, विन्रमता आपके स्वभाव में है। गम्भीर चिन्तन मनन के साथ अध्ययन अध्यापन करते हुए, लेखन कार्य भी कर

रही हैं। आपका आन्तरिक व लेखकीय व्यक्तित्व चिन्तनशील है। इसी अध्याय में आगे महिला चेतना का उद्‌भव व विकास–स्त्री सशक्तिकरण दलित व आदिवासी महिला पर विचार किया गया है। जहां प्राचीन समय से ही स्त्रियों को हाशिए पर धकेला गया है। सुशीला जी ने महिलाओं को हमेशा आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया है। सुशीला जी के साहित्य से हम समाज में दलित स्त्रियों के प्रति पुरुषों और समाज के रवैया को पहचान सकते हैं। समाज एक ओर प्रगति की ओर अग्रसर है वहीं समाज में महिलाओं की स्थिति बदतर होती जा रही है। सुशीला जी ने अपने साहित्य से महिलाओं को लड़ना सिखाया है। सुशीला जी का साहित्य अम्बेडकरवादी विचाधारा से ओतप्रोत है। डॉ. अम्बेडकर जी ने भी दलितों और स्त्रियों की शिक्षा का प्रावधान किया था सुशीला जी भी इन्हीं के पदचिन्हों पर चलकर दलित समाज व स्त्रियों को शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रेरित करती रही हैं।

सुशीला जी के लेखन में दलित महिला चेतना विशेष तौर पर उजागर होती है। सुशीला जी स्वंय दलित स्त्री होने के दंश को भोगती हैं। इन्होंने अपने जीवन में जो यातना भोगी है वहीं इनके साहित्य में नजर आती है। बेशक समय बदल रहा है, परिस्थितियां बदल चुकी हैं, फिर भी महिलाओं की स्थिति ज्यों की त्यों बनी हुई है। नारी वर्षों से दोहरी जिन्दगी जीने के लिए विवश है। समाज और परिवार दोनों के शोषण के पाटों में वह सदा से ही पिसती चली आ रही है। सुशीला जी खुद इस भयावह स्थिति से गुजरी हैं। इसलिए इन्होंने महिला चेतना को अपने साहित्य के माध्यम से लाने का सफल प्रयास किया है।

दूसरा अध्याय 'सुशीला टाकभौरे जी की कविताओं में दलित महिला चेतना' का है दलित कविता जिस प्रखरता और विश्वास के साथ यहां तक पहुंची है यह आसान बात नहीं रही होगी। वर्तमान समय गद्य युग कहलाता है। वहां कविता को अपना स्थान मिलना नामुकिन सा लगता है। लेकिन फिर भी सुशीला जी अपनी कविताओं के माध्यम से दलित समाज में जागृति फैलाने में सफल रही हैं। दलित समाज में व्याप्त हजारों साल के शोषण दमन की यातना से मुक्ति की झटपटाहट दलित कविता में नजर आती है। सुशीला जी की कविताएं दलित समाज में जागृति का संदेश देती नजर आ रही हैं। इनकी कविताओं का विषय वे दलित जातियां हैं जो आज भी अज्ञान और भ्रम के अंधेरे में भटक रही हैं। शोषण उत्पीड़न के शिकार शिक्षा प्रगति से आज भी दूर दलित शोषित जीवन जीने को मजबूर है। यही हालात इनकी दलित कविता की ओर ईशारा करते हैं। इनका पहला काव्य संग्रह 'हमारे हिस्से का सूरज' में दलित जातियों की यातना, समस्या और उनकी वर्तमान स्थिति कैसी है? दलित चेतना का स्वर उभरता नजर आता है। इसी के साथ समाज परिवर्तन का संदेश भी निहित है। दूसरे काव्य संग्रह 'यह तुम भी जानो' में युवा पीढ़ी को रूढ़ि परम्पराओं को तोड़ने का संदेश दिया है। इस काव्य संग्रह में दलित विमर्श और नारी विमर्श का विशेष रूप से अध्ययन किया गया है। तीसरा

काव्य संग्रह 'तुमने उसे कब पहचाना' है जिसमें दलित पीड़ित स्त्री शोषण, न्याय और विषमता का विवरण है। इसमें दलित नारी रूढ़ियों को तोड़कर पुरुष सत्ता को खुलकर चुनौती दे रही है। इनका चौथा काव्य संग्रह 'स्वाति बूंद और खारे मोती' है। इसमें समाज और संस्कृति से जुड़े कई सवालों पर गहराई से विचार किया गया है। इनके काव्य संग्रहों में दलित समाज की टीस, पीड़ा, चीत्कार हम सुन सकते हैं। इनके काव्य संग्रहों से हमें पता चलता है कि परम्परा और संस्कृति दलितों को कितना पीछे धकेलती है। हिन्दी दलित साहित्य की सर्वश्रेष्ठ महिला साहित्यकार डॉ. सुशीला टाकभौरे ने अपनी कविताओं के माध्यम से दलितों की सामाजिक धार्मिक आर्थिक तथा शैक्षिक चित्रण के साथ उच्च वर्ग के प्रति विद्रोह को स्पष्ट किया है। इनकी अधिकतर कविता अम्बेडकरवादी विचार धारा पर आधारित है। नारी मन के अन्तर्द्वन्द का चित्रण कविताओं का मुख्य विषय रहा है।

तीसरा अध्याय में उपन्यासों में दलित महिला चेतना से संबधित है। उपन्यासों में दलित महिला चेतना बखूबी दिखाई देती है। इनके द्वारा रचित तीन उपन्यास है। जो दलितों के वर्तमान और भविष्य की आशाओं आकांक्षाओं को व्यक्त करता है। यह केवल दलित व्यथा नहीं बल्कि दलित समाज की बेबसी मनुवादी व्यवस्था से मोहभंग की कथा है। लेखिका ने समाज व्यवस्था की आन्तरिकता दृढ़ता संकल्पशक्ति और अपनी लेखनी से संस्पर्श से अनन्य बना दिया। 'तुम्हें बदलना ही होगा' उपन्यास में दलित जीवन की वर्ण जातिभेद की समस्याओं को आज के सन्दर्भ में चित्रित किया है। इस उपन्यास में समाज में व्याप्त छुआछूत की भावना और इससे जुड़े भेदभाव के व्यवहार को ज्यादा न बताकर उसके आगे की समस्या को बताया है। 'नीला आकाश' की कथावस्तु दलित जीवन का यथार्थ है। इसमें सवर्णों के षड़यंत्रों के साथ दलितों के शोषण उत्पीड़न और अभाव पूर्ण जीवन का चित्रण है। अभी भी दलितों को शिक्षा के लिए जद्दोजहद करनी पड़ती है। तीसरा उपन्यास 'वह लड़की' में दलित नारी के जीवन की व्यथा, उसकी समस्या और जीवन संघर्ष की कथा है। इस उपन्यास में नारी मुक्ति और स्वच्छन्दता की मांग नहीं करती बल्कि वे पुरुषों के साथ अपनी बराबरी के अधिकार की बात करती है। सदियों पहले जो मनुवादी विचार और मान्यतायें स्त्रियों के लिए अन्याय पूर्ण थी। लेकिन अब समय बदल रहा है। समय के साथ उनके प्रति समाज की अवधारणा भी बदली है।

चौथा अध्याय में कथा साहित्य में दलित महिला चेतना से सम्बधित जानकारी दी गई है। कहानी के क्षेत्र में भी सुशीला जी ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है। दलित विमर्श के पहले भी हिन्दी में प्रेमचन्द निराला जैसे साहित्यकारों ने दलितों के जीवन से सम्बधिंत कहानियां लिखी। लेकिन उनमें समस्या मात्र समस्या बनकर रही है समाधान नहीं हुआ। सुशीला जी के कथा साहित्य से दलित समाज में जागृति फैलाने का काम कर रही हैं। इनके कथा संग्रह में 'टूटता वहम' 'संघर्ष' 'अनुभूति के घेरे में' कथा संग्रह व्यापक चर्चा का विषय रहे हैं।

इनके कहानी संग्रह 'अनुभूति के घेरे में' भूख, त्रिशूल, सांरग तेरी याद में, दिल की लगी, हमारी सेल्मा, गलती किसकी है, आदि कहानियां संग्रहित हैं। इन सभी कहानियों में नारी जीवन की समस्याओं को केन्द्र में रखा है। जहां नारी मनुवादी के आधार पर क्षमा, त्याग, करूणा, ममता, दया परोपकार आदि सदभावों से परिपूर्ण आदर्श रूप में है। जहां उनके अधिकार नहीं केवल कर्तव्य ही कर्तव्य हैं। समाज को यह पता चले कि चुप रहने वाली सहनशील नारी के मन में कितनी वेदना होती है। दूसरा कहानी संग्रह 'टूटता वहम' है जिसमें मेरा बचपन, झरोखे, मेरा समाज, टूटता वहम, मन्दिर का लाभ, व्रत और व्रती आदि कहानियां संग्रहित हैं। टूटता वहम्, कहानी संग्रह की कहानियां से पता चलता है कि समाज इतना आगे बढ़ जाने के बाद भी जाति का दंश दलितों के लिए आज भी बना हुआ है।

तीसरा कहानी संग्रह 'संघर्ष है इसमें जन्मदिन, छौआ मां, नई राह की खोज, संभव असंभव, बदला आदि कहानियां संग्रहित हैं भारतीय समाज में दलित पिछड़ी कुछ जातियां ऐसी भी जो गांधीवादी विचारधारा से ग्रसित होने के कारण आज भी अम्बेडकरवादी विचारधारा को नहीं समझ पाई है। इस कारण वे प्रगति और परिवर्तन से आज भी बहुत दूर है। 'संघर्ष' कहानी संग्रह से दलित पिछड़े समुदाय तक अम्बेडकरवादी विचारधारा का संदेश पहुंचेगा। दलित समुदाय भी प्रगति और परिवर्तन के साथ–साथ समता सम्मान का जीवन जी सकेंगे।

'अनुभूति के घेरे' में दलित समाज और नारी को प्रमुख आधार बनाया है। दलित समाज और नारी दोनों की स्थिति शोषण और अन्याय के कारण सदियों से ही पिछड़ी रही है। सुशीला जी ने दलित स्त्री की त्रासदी को कई कोणों से उकेरा है इनकी कहानियां सामाजिक सांस्कृतिक विंसगतियों की तह में जाकर उनके जीवन की स्थितियों की पड़ताल करती है। 'टूटता वहम' कहानी संग्रह में पिछ़डी जाति से जुड़ी कहानियां हैं। सिलिया, मुझे जवाब देना है, नयी राह की खोज, व्रत और व्रती आदि कहानियां आज के दौर में भी दलितों की विकट त्रासद और विडंबनापूर्ण स्थिति है? को उजागर करती है। दलितों को आज भी सवर्णों के सामने नीचा होना पड़ता है। यही हालात नारी के भी रहे हैं। दलित नारी को समाज की मनुवादी व्यवस्था से दो–चार होना पड़ रहा है। लेखिका का उद्देश्य रहा है कि दलित जातियां अम्बेडकरवादी विचारों को अपनाये और अपने स्वाभिमान का जीवन जीयें।

इनकी कहानियों का एक–एक कदम व्यापक दलित उत्पीड़न समाज के आन्दोलनात्मक चरित्र को उभार कर सामने लाती हैं। इन कहानियों में लेखिका ने जो जीवन जिया है, भोगा है, देखा है वही व्यक्त किया है। यह भोगा हुआ यथार्थ है जो दलितों के बारे में लिखने वाले गैर दलितों के पास नहीं हो सकता हैं।

पांचवां अध्याय 'सुशीला टाकभौरे के नाटकों में दलित महिला चेतना' संवादात्मक रूप में सामने आती है। दलित नाटकों की विचारधारा को निर्मित करने के पीछे दलित लेखकों की

महत्वपूर्ण विचारधारा रही है। भारतीय समाज में सदियों से दलितों पर होते आ रहे शोषण को अभिव्यक्त करने हेतु नाटक एक उपयुक्त विधा है। जिसमें लोग पात्रों एवं संवादों के माध्यम से किसी विषय को बेहतर तरीके से समझ सकते हैं।

सुशीला टाकभौरे का नाटक 'रंग और व्यंग्य' अपने आप में उद्देश्यपूर्ण नाट्यकृति है। समाज में आज भी जातिभेद व्याप्त है। नाटक में सुशीला जी ने शोषण और भेदभाव के विरूद्ध अपनी बात कही है। 'रंग और व्यंग्य' नाट्यकृति में अलग–अलग नाटकों का विवरण है। जो समाज में दलितों और महिलाओं की वास्तविक स्थिति को उजागर करते हैं। इनके नाटकों के माध्यम से अंधश्रद्धा, स्त्री दास्य, धार्मिक सामाजिक कुरीतियां तथा पुरुषसत्तात्मक समाज का एक वास्तविक चित्र हमारे सक्षम प्रस्तुत होता है।

दूसरा नाटक 'नंगा सत्य' है। गांव के पिछड़ों दलितों के सामाजिक शैक्षणिक आर्थिक शोषण को दिखाने के लिए सफल पात्र योजना की गई है। नाटक में दर्शित होता है कि दलित वर्ग की स्त्रियां अपनी इज्जत बचाने के लिए जान की बाजी लगा देती हैं। इस नाटक का उद्देश्य समाज और भाईचारा स्थापित करना है। इसके लिए शिक्षा, संघर्ष संगठन को आवष्यक बताया है।

इसी तरह 'रंग और व्यग्ंय' नाट्यकृति समाज में जातिभेद को दर्शाती है। इस कृति के माध्यम से समाज में शोषण और भेदभाव की परम्परा का पता चलता है। इस नाट्यकृति में समाज के निचले पायदान पर खड़े, सफाई कार्य से जुड़े सम्माज की प्रगति और परिवर्तन के लिए शिक्षा को आवश्यक बताया है। इस नाटक में सवर्णों का दलितों के प्रति किए गए रवैये को दर्शाया गया है।

इस कृति से सभी नाटक समाज के लिए प्रेरणादायी है। इन नाटकों में समाज की सच्चाई उजागर होती है। स्त्री दासता, अंधविश्वास, पुरुष सत्तात्मक समाज सड़ी गली परम्पराओं का निर्वाह आदि कुरीतियां समाज में आज भी व्याप्त है। पर वर्तमान समय में बाबा साहब अम्बेडकर, ज्योतिबा फुले, सावित्री बाई फुले के आदर्श विचारों के कारण दलितों और महिलाओं में जागृति दिखाई देती है। लेखिका का यह प्रयास सराहनीय है।

छठा अध्याय में निबंधों को लिया है। साथ ही महिलाओं की स्थिति आज क्या है? का भी एक नया अनुभव रहा है। इक्कीसवीं सदी में भी महिला पुराने जीवन मूल्यों, नैतिक मानदण्डों और सामाजिक परिधि के घेरे में बंधी है।

प्रस्तुत अध्याय में हमने सर्वप्रथम भारतीय पितृसत्तात्मक सामाजिक सांस्कृतिक संरचना महिला विरोधी है। ये जानने का अवसर मिला। सदियों से स्त्रियां रीतिरिवाजों के नाम पर पितृसत्तात्मक मूल्यों के सांचो में जकड़ दी गई है। 'हाशिए का विमर्श' निबन्ध में भारतीय समाज व्यवस्था के शोषित–पीड़ित दलित वर्ग को माध्यम बनाया है। लेखिका ने हाशिए के जाति

समुदायों के जीवन स्तर में व्याप्त जाति भेद और लिंगभेद की विशमता छुआछूत, धार्मिक अधंविश्वास सामाजिक कुरीतियां और सामाजिक बहिष्कार की ओर ईशारा किया है। निबन्धों में पहला बिन्दू 'दलित महिला और साहित्य लेखन' है इसमें दलित महिला और उससे जुड़ी समस्याओं को उकेरा है। लेखन के क्षेत्र में दलित स्त्रियां भी आगे बढ़ तो रही है, लेकिन पुरुष साहित्यकारों के अनुपात में उनकी संख्या काफी कम है। इस अध्याय से दलित लेखन में महिलाओं को प्रोत्साहन मिला है। लेखिका ने कहा है कि लेखन के क्षेत्र में दलित स्त्रियां आगे आयें। वे अपनी समस्याएं साहित्य के माध्यम से समाज क सामने लायें। अपनी बात स्वयं कहे और स्वयं लिखे।

पुरुष साहित्यकार महिलाओं की पीड़ाओं को व्यक्त करके हमें न्याय दिलायेगें– यह सोचना गलत है। महिलाओं की समस्याओं पति प्रताड़ना और पुरुष सोच की उलझन को महिला से अधिक कौन समझ सकता है। अतः दलित स्त्रियों को स्वयं प्रकाशन के क्षेत्र में बड़ी संख्या में आगे आकर साहित्य रचित करना चाहिए।

नारी जीवन दोहरी जिम्मेदारी से आबद्ध रहा है। नारी के प्रति दोहरा दृष्टिकोण प्रत्येक काल में रहा है। वैदिक काल से अब तक नारी जीवन कष्टों से भरा हुआ ही है। नारी अपनी दोहरी जिम्मेदारी ही निभाती हुई आ रही है। अध्ययन से हमें पता चला है कि नारी अब इस दोहरी जिम्मेदारी से मुक्त होना चाहती है। भारतीय समाज में स्त्री के प्रति सोच का एक सीमित दायरा रहा है।

'नारी दलित क्यों और कब तक' का अध्ययन करने पर पता चलता है कि नारी ही दलित क्यों है और वह कब तक रहेगी। नारी का शोषण हर जगह होता रहा है– चाहे उच्च वर्ग हो या निम्न वर्ग। मध्यम वर्ग में तो सबसे अधिक दीन–हीन दशा में नारी रहती है। वह दोहरी जिन्दगी जीती है और दोहरा सन्ताप उठाती है।

नारी स्वतन्त्रता की बातें चारों ओर होती हैं। परन्तु परिणाम कुछ देखने को नहीं मिलते। नारी की स्वतन्त्रता और प्रगति बड़े शहरों की उच्च शिक्षा प्राप्त नौकरी पेशा स्त्रियों में भी स्पष्ट रूप में दिखाई नहीं देती। उन्हें देखकर यह स्पष्ट नहीं हो पाया है कि वे स्वतंत्र है या सदियों से परम्पराओं में जकड़ी हुई नारी का आधुनिकीकरण है।

'स्त्रियों के उत्थान में डॉ. अम्बेडकर का महच्वपूर्ण योगदान' रहा है। इनके अध्ययन से डॉ. अम्बेडकर ने स्त्रियों के उत्थान में दिये गये योगदान का पता चलता है। डॉ. अम्बेडकर ने समाज की विसगंतियों और असमानता का विश्लेषण किया है। उन्होंने अछूत समस्या के साथ मजदूर और नारी की स्थिति पर भी विचार किया है। डॉ. अम्बेडकर ने स्त्रियों को अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने की शिक्षा दी। नारी पर डॉ. अम्बेडकर के आन्दोलन का गहरा प्रभाव पड़ा और उनके विचारों से प्रभावित होकर दलित बहुजन और सवर्ण महिलाएं जन

आन्दोलनों में स्वयं आगे आने लगी। दलितों में भी दलित कुछ ऐसे समाज है जिन तक बाबा साहब की शिक्षा का प्रभाव नहीं पहुंचा है।

सातवां अध्याय में सुषीला जी की आत्मकथा में दलित महिला चेतना दर्शायी गयी है। दलित आत्मकथाएं दलित विमर्श और नारी विमर्श का दहकता दस्तावेज साबित हो रही है। भारतीय समाज की वर्ग व्यवस्था तले हजारों वर्षों से उपेक्षित जीवन जी रहे समाज का चित्रण सुशीला जी की आत्मकथा का विषय रहा है। दलिता हमेशा से अपनी मुक्ति के लिए संघर्षरत रहे हैं। जहां स्त्री का सवाल है तो वैसे ही दलितों में भी दलित मानी जाती रही है। 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा यही दर्शाती है। दलितों में भी दलित समझी जाने वाली स्त्री मनुवादी समाज व्यवस्था के शिकंजे का दर्द से मुक्ति के लिए झटपटाती रही है। इस अध्याय से पता चलता है कि दलितों की बस्तियों गांव के उस छोर पर होती थी। दलितों की पढ़ाई की कोई व्यवस्था नहीं थी दलितों में नारी शिक्षा का प्रावधान तो बिल्कुल भी नहीं था। फिर भी सुशीला जी ने शिक्षा के लिए संघर्ष किया और अपने मुकाम को भी हासिल किया। यह आत्मकथा महिलाओं को अपने जातीय अधिकारों से अवगत करवाती है, पुरुष के बराबर रहने का संदेश देती है।

सुशीला जी की आत्मकथा में दलित समाज के बहुत से पहलू ऐसे नजर आते हैं जिसमें हम मानते हैं कि आज वैसी स्थिति नहीं रही फिर भी वह गुलाम है पुरुष मानसिकता की। जैसे जातिभेद, छुआछूत, अशिक्षा, अंधविश्वास, जातिगत रोजगार आदि। सुशीला जी अपने जीवन संघर्ष को आत्मकथा में उकेरती है। जिसको पढ़कर हमे संघर्ष की प्रेरणा मिलती है। 'शिंकजे का दर्द' आत्मकथा में लेखिका ने असंख्य विषमताओं से लड़कर अपनी विवेक शक्ति से समाज में नारी चेतना को जाग्रत किया है। अपना खुद का सम्मान करके अपनी कार्य समता और योग्यता से ही समाज की नारी शक्ति को जाग्रत करने का प्रयास किया है। लेखिका अपने भोगे हुए अनुभवों को व्यक्त करती है। उन्होंने कहा है कि मानव सृष्टि में व्याप्त दुख, शोषण, अन्याय, अत्याचार, विषमता, पराधीनता का अन्त होना चाहिए। पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था के विरूद्ध स्त्री पुरुष समानता का निमार्ण हो।

आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' से कौशल्या बैसन्त्री की आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' से तुलना की गई है। दलित महिला आत्मकथाकारों में केवल दो ही आत्मकथाकार नजर आती हैं। दोनों की तुलना की बात करें तो दोनों आत्मकथाओं में लगभग समान स्थिति देखने को मिलती है। लेकिन 'दोहरा अभिशाप' में लेखिका ने जीवन में संघर्ष की स्थिति कम नजर आती है। वही 'शिकंजे का दर्द' में लेखिका का संघर्ष ज्यादा नजर आता है। इस अध्याय के अध्ययन से पता चलता है कि स्त्री शिक्षित होकर अपने अधिकारों को पा सकती है। अपने स्वामित्व की मांग कर

सकती है। अपनी स्वतन्त्रता खुद चुन सकती है। 'शिकंजे का दर्द' में सुशीला जी ने 'शिकंजे का दर्द' भोगा और शिक्षित होकर उससे मुक्त होने का प्रयास किया।

तीसरा बिन्दू 'दलित आत्मकथाओं में महिला चेतना और शिकंजे का दर्द का तुलनात्मक अध्ययन' हैं। इसमें दलित लेखकों की दलित आत्मकथाओं और 'शिकंजे का दर्द' का तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है। कि सभी दलित आत्मकथाकारों की स्थिति लगभग–लगभग एक सी है। शिक्षा का संघर्ष, जातिभेद, छुआछूत, शोषण आदि। यहां 'शिकंजे का दर्द' की तुलना की बात करे तो दलित आत्मकथाकार पुरुष होने के कारण इनको स्त्री की तुलना में समाज में थोड़ी कम जिल्लत भुगतनी पड़ी।

जबकि 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा की लेखिका को महिला होने के कारण ज्यादा जिल्लत भोगनी पड़ी है। दलित समाज को हेय दृष्टि से देखा जाता है। फिर स्त्री जिसे पुरुष पैरों की जूती समझता है। अलग–अलग दलित आत्मकथाकारों ने अपने–अपने दुख का व्यक्त तो किया है पर स्त्री के दुख को नहीं दर्शाया। 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा के अलावा पुरुष आत्मकथाओं में महिला चेतना नजर नहीं आती है। यहां यह बात सिद्व होती है कि एक महिला का दर्द सिर्फ एक महिला ही समझ सकती है। इस अध्याय के अध्ययन से हमें यह ज्ञात हुआ कि दलितों को आजाद भारत में आज भी सम्मान का जीवन नहीं मिल पाया है। स्त्री आज भी पुरुषों के पैरों की जूती समझी जाती है।

आठवां अध्याय 'सुशीला टाकभौरे के साहित्य का सौन्दर्य शास्त्र' की चर्चा की गई है। इसमें साहित्य में यथार्थ बोध का बिन्दू महत्वपूर्ण है। सुशीला जी का साहित्य यथार्थ परिपूर्ण है। चाहे इनकी कहानियां हो चाहे आत्मकथा हो या नाटक। सबमें यथार्थ बोध होता है। दलित समाज को इनके साहित्य से आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलती है। दलित अपने अस्तित्व को पहचान पाये हैं।

दूसरा बिन्दू 'भाषा शैली और शिल्प' का है। डॉ. सुशीला टाकभौरे आधुनिक युग की लेखिका हैं। इन्होंने अपने साहित्य में गद्य की भाषा शैली में सुन्दर प्रतीकों का प्रयोग किया है। सुन्दर बिम्ब योजना, समृद्व भाषा वर्णनात्मक शैली और उद्देश्यपूर्ण सफल कथाक्रम योजना स्पष्ट दिखाई देते हैं। इसी कारण इनका साहित्य प्रभावोत्पादक और आकर्षक बन पड़ा है। आपने अपने साहित्य में दलितों पर होने वाले अन्याय और अत्याचार जातिभेद को वाणी देने का प्रयास किया है।

गद्य की भाषा में शब्द चयन और वाक्य प्रयोग का उपयोग कथा की भाषा शैली में किया गया है। जिससे इनका साहित्य पाठकों को झकझोर कर रख देता है। इनके गद्य की भाषा जीवन्त प्रतीत होती है। इनकी गद्य रचना में कुछ भी आरोपित नहीं लगता। इनकी भाषा में अधिकतर आंचलिक शब्दों का उपयोग किया गया है। भाषा में स्वच्छन्दता सरलता

बोधगम्यता व रोचकता है। इनकी गद्य शैली में दोष यह है कि उन्होंने वर्णनात्मक शैली का अधिक उपयोग किया है। कुछ–कुछ आंचलिक कठिन शब्दों का प्रयोग उपयोग किया है जिससे वह स्थिति समझ में नहीं आती है। यद्यपि लेखिका ने अपने साहित्य को निसंकोच भाव से व्यक्त किया है। 'दलित विमर्श में सुशीला जी का स्थान' क्या है? सुशीला जी ने दलितों के लिए क्या किया है? का विश्लेषण किया गया है। सुशीला जी ने न केवल पुरुष प्रधान समाज में स्त्री मुक्ति और स्त्री चेतना से सम्बधित विभिन्न पहलुओं पर अपनी लेखनी चलायी है। बल्कि दलित समाज के आत्म सम्मान को जाग्रत करने में भी पहल की है। हाशिए पर जीने वाले– वर्ग स्त्रियों और दलितों पर सदियों से जो शोषण और जुल्म हो रहे थे, उन्हें दबाया, कुचला जा रहा था– उनके विरूद्ध विद्रोह और दुश्मनों को ललकारने की गुंगे को आवाज प्रदान करने की चेतना दी है।

फुले, अम्बेडकरवादी विचारधारा ने हिन्दी साहित्य के हर क्षेत्र में क्रान्ति के बीज बोए हैं जो आज समूची भारतीय साहित्यिक भूमि के बोधिवृक्ष बनकर उठ खड़े हुए हैं। सुशीला जी इसी विचार धारा का प्रतिनिधित्व करती हैं और अपनी कृतियों के द्वारा जनमानस को झकझोर देती हैं तथा अपने समाज को, अपनी जाति के परास्त लोगों को नयी दिशा का भाव बोध कराती हैं।

इसी अध्याय में तीसरे बिन्दू में सुशीला टाकभौरे के साहित्य के विविध आयाम भी शामिल है। सुशीला जी द्वारा एक कैदी के पत्र व्यवहार की भी चर्चा की गई है। जिसमें एक कैदी इनके साहित्य लेखन से प्रभावित होकर इनका साहित्य पढ़ता है। एक कैदी के पास साहित्य खरीदने के लिए पैसे नहीं होते है तो वह खुद लेखिका से पत्र व्यवहार करता है और अपनी इच्छा जाहिर करता है। अपने अपराधिक जीवन के बारे में लेखिका को बताता है लेखिका उनको मुफ्त में किताबे भेजती हैं जिसका लाभ एक कैदी को मिलता है। यहां इनका समाज सेवी रूप प्रकट होता है।

'मेरे साक्षात्कार' दलित एवं स्त्री विमर्श से सम्बधित साक्षात्कार है। 'मेरे साक्षात्कार' में संकलित साक्षात्कार विशेष रूप से इनके जीवन इनके लेखन दलित समाज और दलित स्त्री को केन्द्र में रखकर किए विचार विमर्श और बातचीत का निष्कर्ष हैं। 'दलित साहित्य एक आलोचना दृष्टि' विविध आयाम के रूप में प्रस्तुत है। यह शीर्षक इस रूप में सार्थक है कि इसमें आलोचनात्मक लेख विशेष दृष्टिकोण से लिखे गए हैं।

आजकल 'दलित विमर्श' और 'दलित साहित्य' की बहुत चर्चाएं हो रही है। इस विचार प्रवाह के बढ़ते प्रभाव को देखकर पहले गैर दलितों ने ही इन पर बहुत लिखा है। फिर शिक्षित और सक्षम होकर दलित भी इन विषयों पर लिखने लगे। सुशीला जी ने दलित विमर्श से

सम्बधित लेख लिखे है। इनके लेखों में अनुभूति की प्रमाणिकता है। इस पुस्तक में लेखिका ने अनेक दलित लेखकों के लेखों की समीक्षा की है।

नौवां अध्याय 'उपसंहार' में प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का सारांश वर्णित है। ''सुशीला टाकभौरे के साहित्य ने दलित महिला चेतना'' शीर्षक शोध प्रबन्ध के विविध सन्दर्भों में विचार करने के पश्चात हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि सुशीला जी का साहित्य साहित्य न होकर दलित समाज की आगे बढ़ने की सीढ़ी है। इनका साहित्य दलित समाज को शिक्षा, मेहनत और संघर्ष करते हुए आगे बढ़ने का प्रमाण देता है।

सुशीला जी ने दलित साहित्य के माध्यम से दलितों को संघर्ष करने की, शोषण के विरूद्ध आवाज उठाने की हिम्मत मिली है। लेखिका ने नारी शिक्षा को अधिक महत्व दिया है। दलित समाज में शिक्षा का अभाव होने के कारण, दलित अपने अधिकारों को जानता ही नहीं है तथा सदियों से चली आ रही परिपाटी के कारण अन्याय, अत्याचार, वर्णभेद, जातिभेद, कलुषित परम्पराओं को सहते आ रहा है। लेखिका ने दलित समाज को नई दिशा समान, अधिकार आदि के लिए दिशा दिखाने का प्रयास अपने साहित्य के माध्यम से किया है।

सुशीला जी के साहित्य में दलित महिला चेतना का अध्ययन किया है। दलितों के साथ–साथ दलित महिलाओं में भी चेतना जाग्रत हो रही है। दलित महिलाओं को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक किया जा सकता है। दलित साहित्य में बताया है कि नारी अपने अधिकारों को शिक्षा के माध्यम से ही प्राप्त कर सकती है। पर उन्हें अम्बेडकरी चेतना के बिना आदमीयत, अपने हक का बोध नहीं हो सकता है। जिस हथियार से दलित पुरुष अपने हक प्राप्त करते हैं, उसी हथियार से दलित महिला भी समाज पुरुष दोनों से एक साथ लड़ सकती है और चेतना सम्पन्न हो सकती है। इनका साहित्य इतना सशक्त है कि कथ्य को पूरी गंभीरता के साथ पाठक के समक्ष प्रस्तुत कर देता है। सुशीला जी ने साहित्य द्वारा दलितों के जीवन की यथार्थ अनुभूतियों को बड़ी बेबाकी रूप से अभिव्यक्त किया है।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि सुशीला जी का साहित्य दलितों और दलित महिलाओं की भावानुभूति मार्मिक यथार्थ रूप में समर्थ जान पड़ता है। दलितों की जाग्रति में इनका प्रमुख योगदान रहा है। अतः कह सकते हैं कि वर्तमान समय में दलितोत्थान में प्रंसशनीय योगदान रहा है।

✦✦✦

परिशिष्ट

आधार ग्रन्थ सूची–

1. अनुभूति के घेरे (कहानी संग्रह) प्रथम संस्करण, शरद प्रकाशन, नागपुर 1997, द्वितीय संस्करण नेहा प्रकाशन।
2. कैदी नं. 307 (सुधीर शर्मा के पत्र) प्रथम संस्करण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017
3. टूटता वहम् (कहानी संग्रह) प्रथम संस्करण, शरद प्रकाशन, नागपुर 1997, द्वितीय संस्करण अनिरूद्व बुक्स।
4. जरा समझो (कहानी संग्रह) प्रथम संस्करण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015
5. तुम्हें बदलना ही होगा (उपन्यास) प्रथम संस्करण, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015
6. तुमने उसे कब पहचाना (काव्य संग्रह) प्रथम संस्करण, शरद प्रकाशन, नागपुर, 1995, द्वितीय संस्करण, स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. दलित साहित्य : एक आलोचना दृष्टि प्रथम संस्करण, शिल्पायन प्रकाशन, नई दिल्ली, 2015
8. दलित लेखन में स्त्री चेतना की दस्तक, प्रथम संस्करण, अक्षर शिल्पी दिल्ली, 2017
9. नंगा सत्य (नाटक) प्रथम संस्करण, शरद प्रकाशन, नागपुर 2007, द्वितीय संस्करण, शिल्पायन दिल्ली, 2015
10. नीला आकाश (उपन्यास) प्रथम संस्करण, विश्व भारती प्रकाशन, नागपुर 2013
11. परिवर्तन जरुरी है (लेख संग्रह) प्रथम संस्करण, शरद प्रकाशन, नागपुर, 1996, द्वितीय संस्करण, हाशिए का विमर्श, नेहा प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली।
12. मेरे साक्षात्कार (साक्षात्कार सूची) प्रथम संस्करण शिल्पायन प्रकाशन, नई दिल्ली 2016
13. भारतीय नारी : समाज और साहित्य के ऐतिहासिक संदर्भों में, प्रथम संस्करण, शरद प्रकाशन, नागपुर 1996, द्वितीय संस्करण, शिल्पायन, नई दिल्ली।
14. यह तुम भी जानो (काव्य संग्रह) प्रथम संस्करण– शरद प्रकाशन, नागपुर, 1994, द्वितीय संस्करण स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली।
15. रंग और व्यंग्य (नाटक संग्रह) प्रथम संस्करण, शरद प्रकाशन, नागपुर, 2006, द्वितीय संस्करण,स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014
15. संघर्ष (कहानी संग्रह) प्रथम संस्करण, शरद प्रकाशन, नागपुर, 2006, द्वितीय संस्करण, ज्योति लोक प्रकाशन, शहादरा।
16. शिकंजे का दर्द, दलित एवं नारी मुक्ति का यथार्थ दस्तावेज, प्रथम संस्करण, शिल्पायन, नई दिल्ली 2011

17. हमारे हिस्से का सूरज (काव्य संग्रह) प्रथम संस्करण, शरद प्रकाशन, नागपुर, 2005, द्वितीय संस्करण स्वराज प्रकाशन नई दिल्ली, 2005
18. हिन्दी साहित्य के इतिहास में नारी, शरद प्रकाशन, नई दिल्ली, 1994

सहायक ग्रन्थ सूची–

1. अम्बेडकरवादी विचारधाराः इतिहास और दर्शन, सम्पादक वेदप्रकाश लोकमित्र प्रकाशन दिल्ली संस्करण 2012
2. अक्करमाशी–शरण कुमार लिम्बाले, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली संस्करण 2009
3. अपने–अपने पिंजरे भाग–2, मोहनदास नैमिशराय, वाणी प्रकाशन, 2013
4. आओ पेपे घर चले, प्रभा खेतान, सरस्वती विहार दिल्ली संस्करण 1991
5. आदिवासी लेखन (एक उभरती चेतना), रमणिका गुप्ता, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2013
6. आधी दुनिया का सच, व्होरा आशारानी, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली 2008
7. आधुनिक हिन्दी कहानी में नारी की भूमिका, सुशीला मिश्रा, वाणी प्रकाशन
8. आदिवासी कहानियां, केदारप्रसाद मीणा, अलख प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2013
9. आदिवासी दस्तक–विचार परम्परा और साहित्य, रमेशचन्द मीणा, अलख प्रकाशक–जयपुर–302019, प्रथम संस्करण–2013
10. आधुनिकता के आइने में दलित, अभय कुमार दुबे, वाणी प्रकाशन दिल्ली
11. आदमी की निगाह में औरत, राजेन्द्र यादव, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2007
12. आधी दुनिया का सच, कुमुद शर्मा, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली।
13. आज की स्त्री आन्दोलन, डॉ. रमेश उपाध्याय, संज्ञा उपाध्याय शब्द संधान प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004
14. आदिवासी साहित्य, डॉ. खन्ना प्रसाद अजीन, श्री नटराज प्रकाशन, संस्करण 2016
15. आदिवासी विमर्श, डॉ. रमेश चन्द मीणा, राजस्थान ग्रन्थ अकादमी, जयपुर संस्करण 2014
16. इंडियन वूमन इन दी न्यू एज, राजगोपाल मिचल प्रकाशन, नई दिल्ली
17. खुली खिड़कियां, मैत्रयी पुष्पा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण 2005
18. औरत के हक में, तस्लीमा नसरीन, वाणी प्रकाशन दिल्ली संस्करण 2008
19. औरत के लिए औरत, नसिरा शर्मा सामयिक प्रकाशन, दिल्ली संस्करण 2008

20. कांचा इलैया 'मैं हिन्दू क्यों नहीं हूँ' आरोही बुक ट्रस्ट उत्तम नगर, दिल्ली
21. ईक्कीसवीं सदी में महिलाओं का बदलता स्वरूप, नैनेश गढ़वी, राम सौंदर्वा, पैराडाइज प्रकाशन यपुर प्रथम संस्करण 2013
22. गांधी और महिला सशक्तिकरण, अंक 27 प्रकाशन विभाग नई दिल्ली
23. जीवन हमारा, बेबी कांबले, किताब घर प्रकाशन नई दिल्ली
24. जूठन, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 1997
25. झोपड़ी से राजभवन तक, माता प्रसाद गुप्त, नमन प्रकाशन संस्करण 2002
26. टूटता वहम्: जाति के प्रश्न के विमर्श को गति देती कहानियां, डॉ. उषा प्रकाशन नई दिल्ली
27. डॉ. भीमराव अम्बेडकर, भगवान बुद्ध और उनका धम्म सिद्धार्थ प्रकाशन, मुम्बई 1995
28. तिरस्कृत, सूरजपाल चौहान, अनुभव प्रकाशन संस्करण 2006
29. दलित धर्म की अवधारणा और बौद्ध धर्म शीर्षक लेख, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली 2008
30. दलित ब्राह्मण और हिन्दू, शरण कुमार लिम्बाले, वाणी प्रकाशन, दरियागंज नई दिल्ली
31. दलित साहित्य के आधार तत्व, हरपाल सिंह अरूष, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली 2001
32. दलित साहित्य– अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ, ओमप्रकाश वाल्मीकि राधाकृष्ण प्रकाशन 2013
33. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, शरणकुमार लिम्बाले वाणी प्रकाशन 2016
34. दलित साहित्य की अवधारणा, कंवल भारती, बोधिसत्व प्रकाशन 2006
35. दलित साहित्य का मूल्यांकन, प्रो चमनलाल, राजपाल एण्ड सन्स, संस्करण 2012
36. द रेनेसा इन इण्डिया, श्री अरविन्द घोष ओक्सफोर्ड यूनिर्वसिटी प्रेस, संस्करण 1918
37. दलित साहित्य, जयप्रकाश कर्दम, अकादमिक प्रतिभा 2007
38. द राइज एण्ड फाल ऑफ द हिन्दू वूमन, सामयिक प्रकाशन संस्करण 2016
39. दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर, विमल थोरात, अनामिका प्रकाशन संस्करण 2008
40. दलित विमर्श की भूमिका, कंवल भारती, के.के. प्रकाशन संस्करण 2014
41. द एन साइक्लोपीड़िया ऑफ फिलॉसॉफी, एच. के. आइसेंक पीर्यसन कॉलेज डिविजन संस्करण 1967
42. दलित साहित्य का स्त्रीवादी स्वर, विमल थोरात, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स
43. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दरियागंज नई दिल्ली 110003 पहला संस्करणः 2001 छठी आवृति 2014

44. दलित साहित्य निरालेपन, प्रभाकर मांडे, धारा प्रकाशन औरगांबाद 1979
45. दलित समाज की कहानियां रत्नकुमार सांभरिया, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, दरियागंज नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2011
46. दलित शिखरों के साक्षात्कार, डॉ. यशवंत वीरोदय, नवभारत प्रकाशन, गाजियाबाद–201102 संस्करण 2013
47. दलित स्त्रीवाद की आत्मकथात्मक अभिव्यक्ति, रामनरेशराम नयी किताब, नवीन शाहदरा दिल्ली–110032 प्रथम संस्करण 2013
48. दलित और अप्रजातांत्रिक क्रान्ति, उननिवंशीय भारत में डॉ. अम्बेडकर एवं दलित आन्दोलन सेज, रावत पब्लिकेशंन्स, नई दिल्ली
49. दुख–सुख के सफर में, डॉ. उमेश कुमार सिंह, साहित्य संस्थान, गाजियाबाद, संस्करण 2014
50. दोहरा अभिशाप, कौशल्या बैसन्त्री, परमेश्वरी प्रकाशन, दिल्ली 110093 प्रथम संस्करण 1999
51. नारी सशक्तिकरण विमर्श एवं यथार्थ आशा कौशिक, पोइन्टर प्रकाशन, संस्करण 2003
52. नारी चेतना और कृष्णा सोबती के उपन्यास, डॉ. गीता सोलंकी भारत पुस्तक भण्डार सोनिया विहार दिल्ली संस्करण 2007
53. नारी मुक्ति और नारी आन्दोलन, कृष्णा सोबती
54. नारी शोषणः आइने और आयाम, व्होरा आशारानी, नेशनल पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली
55. नवें दशक की हिन्दी दलित कविता, रजरानी मीनू दलित साहित्य प्रकाशन नई दिल्ली
56. प्रेमचन्द के नारी पात्र, ओमप्रकाश अवस्थी, नेशनल, पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली संस्करण 1956
57. बस्स! बहुत हो चुका, ओमप्रकाश वाल्मीकि, वाणी प्रकाशन दिल्ली संस्करण 1997
58. बंग महिलाः नारी मुक्ति का संघर्ष, भवदेव पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1999, द्वितीय संस्करण 2008
59. भारत का संविधान, डी.डी.बसु, लेक्सिस नेक्सिस, संस्करण 2013
60. भारतीय संस्कृति के स्वर, महादेवी वर्मा, राजपाल एण्डसंस संस्करण 2011
61. महादेवी वर्मा, डॉ. जगदीश गुप्त, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1966
62. महादेवी रचना संचयन, डॉ. निर्मला जैन, वाणी प्रकाशक, नई दिल्ली 2002
63. महानायक बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर, मोहनदास नैमिशराय धम्म ज्योति चैरिटेबल ट्रस्ट, गली नं. डी ब्लॉक नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2012

64. महिला शोषण और मानवाधिकार सुधारानी श्री वास्तव एवं आशा श्री वास्तव अर्जुन पब्लिकेशन हाउस नई दिल्ली
65. महिला सशक्तिकरण एवं लिंगभेद, डॉ. ऋता राज सक्सैना, डॉ. ऋता साहनी, लक्ष्मी प्रकाशन दिल्ली संस्करण 2010
66. महिला सशक्तिकरण एवं समग्र विकास, प्रेम नारायण शर्मा संजीव कुमार झा, वाणी विनायक, भारत बुक सेन्टर लखनऊ, द्वितीय संस्करण 2008
67. मराठी दलित कविता और साठोत्तरी कविता में सामाजिक चेतना, हिन्दी बुक सेन्टर नई दिल्ली 1999
68. मुर्दहिया, डॉ. तुलसीराम पब्लिशर्स– राजकमल नई दिल्ली संस्करण 2016
69. मेरा सफर मेरी मंजिल, डी.आर. जाटव, समता साहित्य सदन जयपुर, संस्करण 2000
70. मुख्यधारा और दलित साहित्य, ओमप्रकाश वाल्मीकि, सामयिक प्रकाशन दिल्ली 110003
71. मेरा बचपन मेरे कंधों पर, श्योराज सिंह बेचैन, वाणी प्रकाशन दिल्ली संस्करण 2009
72. मेरी पत्नी और भेड़िया, डॉ. धर्मवीर, वाणी प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009
73. मेरे सपनों का भारत, डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम, प्रभात प्रकाशन संस्करण 2015
74. मैं भंगी हूँ, भगवानदास, दिल्ली गौतम बुक सेन्टर संस्करण 2007
75. लेखिकाओं की दृष्टि में महादेवी वर्मा, चन्दा सदायत, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया दिल्ली प्रथम संस्करण 2004
76. समकालीन नारीवाद और दलित स्त्री का प्रतिरोध, अनिता भारती, स्वराज प्रकाशन दिल्ली 2013
77. सफाई देवता, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली 2014
78. समकालीन आदिवासी कविता, हरिराम मीणा, अलख प्रकाशन जयपुर प्रथम संस्करण 2013
79. विनोबा– स्त्री शक्ति जागरण, शीला, परधाम प्रकाशन, परनार 1999
80. हिरण्यमय बनर्जी– ईश्वरचन्द्र विधासागर, साहित्य अकादमी 2014
81. हिन्दी दलित कथा साहित्यः अवधारणार्थ और विधाएं अनामिका पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.लि.) दरियागंज नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2010
82. वीर भारत तलवार, रस्साकशी– 19 वीं सदी का नवजागरण और पश्चिमोत्तर प्रात सांराश प्रकाशन दिल्ली हैदराबाद
83. स्त्री विमर्शः महादेवी वर्मा, डॉ. उषा मिश्रा, हिन्दूस्तान एकेडमी इलाहाबाद 2009
84. स्त्री चिंतन की चुनौतियां, रेखा, कस्तवार राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 2006 प्रथम संस्करण

85. स्त्री अस्मिताः साहित्य और विचारधारा, जगदीश चतुर्वेदी सुधा सिंह, आनन्द प्रकाशन कलकत्ता
86. स्त्री विमर्शः भारतीय परिप्रेक्ष्य, डॉ. के.एम. मालती, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2010
87. स्त्रीवादी साहित्य विमर्श, जगदीश्वर चतुर्वेदी, अनामिका पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर प्रा. लि. दिल्ली 2000
88. स्त्री विमर्श के प्रश्न महादेवी वर्मा, डॉ. देशराज वर्मा राज पब्लिशिंग हाउस, प्रथम संस्करण 2012
89. स्त्री विमर्श के अन्तर्विरोध, स्त्री अस्मिता साहित्य और विचारधारा, जगदीश चतुर्वेदी, सुधासिंह, आनन्द प्रकाशन कोलकत्ता 2004
90. स्त्री के लिए जगह राजकिशोर 119 वाणी प्रकाशन नई दिल्ली
91. स्त्री उपेक्षिता– द सैकण्ड सैक्स का हिन्दी रूपान्तर सीमोन बोडआर सरस्वती विहार दिल्ली संस्करण 1990
92. स्त्री उपेक्षिता– सीमोन बोडआर (अनु.प्रभा खेतान) फ्रांसीसी लेखिका संस्करण वर्ष 1992
93. स्त्री मुक्तिः साझा चुल्हा, अनामिका, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया दिल्ली 2010
94. स्त्री अस्मिता के प्रश्न, सुभाष सेतिया, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली 2010 प्रथम संस्करण
95. स्त्रीः परम्परा और आधुनिकता, राजकिशोर, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली संस्करण 2002
96. स्त्री मुक्ति का सपना, अरविन्द जैन, वाणी प्रकाशन दिल्ली द्वितीय संस्करण 2009
97. सीमेन द बोडवार स्त्री उपेक्षिता हिन्दू पॉकेट बुक्स प्रा. लिमिटेड दिल्ली 32
98. श्रृंखला की कड़ियां, महादेवी वर्मा, लोक भारती प्रकाशन नई दिल्ली तृतीय संस्करण 2001
99. पत्रिका– नया ज्ञानोदय मासिक नई दिल्ली सं. रविन्द्र कालिया

पत्र पत्रिकाएं–

1. अपेक्षा. तेजसिंह
2. अम्बेडकर इन इण्डिया– दयानाथ निगम
3. अरावली उद्घोष, डॉ. जनक सिंह मीणा जयपुर
4. अक्षर पर्व, रायपुर छत्तीसगढ़, आलोक प्रकाश
5. अनुसंधान शोध त्रैमासिक हिन्दी पत्रिका, डॉ. शगुफ्ता नियाज अलीगढ़

6. आलोचना त्रैमासिक पत्रिका, अरूण कमल दिल्ली
7. आपका तिस्ता हिमालय, शैलेन्द्र चौहान गाजियाबाद
8. कथाक्रम, लखनऊ (उ.प्र.) शैलेन्द्र सागर
9. कथादेष, इलाहाबाद (उ.प्र.) मार्कण्डेय
10. जनमत, सुधीर सुमन, इलाहाबाद
11. डॉ. तारा परमार– दलित महिलाओं के आत्मकथन, अपेक्षा
12. दृश्यांतर संपादक अजीतराय नई दिल्ली
13. नागफनी, त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका, सपना सोनकर देहरादून, उत्तराखण्ड
14. प्रगतिशील वसुधा, भोपाल, संपादक– कमलाप्रसाद
15. परिकथा द्विमासिक पत्रिका, शंकर
16. परख इलाहाबाद कृष्ण मोहन
17. पाखी (नोएडा) प्रेम भारद्वाज
18. पुस्तक वार्ता– 2001 द्वेमात्रिक वर्धा– राकेश
19. बहुरी नहीं आवना संपादक, डॉ. दिनेश राय नई दिल्ली
20. बयान पत्रिका– मोहनदास नैमिशराय, नई दिल्ली
21. बागेश्वरी पत्रिका द्विमासिक उदयपुर– नाथद्वारा, संपादक योगेश कुमार अमाना।
22. दलित साहित्य, दिल्ली सं. जयप्रकाश कर्दम
23. दस्तावेज, गोरखपुर सं. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
24. दलित टुडे, मूक नायक, आश्वस्त, डॉ. तारा परमार।
25. दलित स्त्री आन्दोलन का ऐतिहासिक अवलोकन डॉ. विमल थोरात, दलित अस्मिति
26. युद्वरत आम आदमी, सं. रमणिका गुप्ता नई दिल्ली
27 राजस्थान पत्रिका, जयपुर सं. गुलाब कोठारी
28. वसुधा, भोपाल सं. हरीशंकर परसाई, राष्ट्रीय सहारा 1998
29. विमर्श, अनियताकलीन, इलाहाबाद, सं. रामकिशोर
30. वागर्थ सं. शंभूनाथ, कोलकाता
31. समयान्तर दिल्ली सं. पंकज विष्ट
32. समीक्षा सं. गोपाल राय दिल्ली
33. साहित्य यात्रा, शोधपत्रिका पटना संपादक प्रो. कलानाथ मित्र
34. हंस पत्रिका सं. राजेन्द्र यादव नई दिल्ली

✦✦✦

साक्षात्कार

डॉ. सुशीला टाकभौरे से शोद्यार्थी सरिता की बातचीत–

प्र.1 भारतीय समाज में दलित की स्थिति हाशिए पर रही है। ऐसे में दलित महिला के बारे में आप क्या कहना चाहेगीं?

भारतीय समाज में दलितों की स्थिति अभी भी हाशिए पर है। ऐसी स्थिति में दलित महिलाओं की स्थिति अधिक चिन्ताजनक है। समता, सम्मान और स्वतंत्रता के अधिकार अभी भी स्त्रियों को सर्वमान्य रूप से प्राप्त नहीं हैं। दलित स्त्रियों को जीवन के हर क्षेत्र में दोहरे तिहरे सन्ताप का सामना करना पड़ता है। सर्वप्रथम दलित होने का, दूसरा स्त्री होने का और तीसरा सुविधा अवसर से वंचित अभावग्रस्त जीवन का सन्ताप दलित स्त्री समाज में भी भोगती है और अपने घर परिवार में भी भोगती है। मैंने आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' में अपने ऐसे कई अनुभव और दलित महिला के जीवन की स्थिति के बारे में लिखा है।

इनसे मुक्ति का मार्ग यही हो सकता है कि दलित स्त्रियां संघर्ष और दृढ़ निश्चय के साथ शिक्षा प्राप्त करें और अपने जीवन में प्रगति के सोपान स्वयं चढ़ें, तभी वे आगे बढ़ सकती हैं। दलित आन्दोलन और महिला मुक्ति आन्दोलन से समाज को जाग्रत किया जाए, तभी दलित महिलाओं को उनके अधिकार दिलाए जा सकेगें। दलित स्त्रियां अभी भी शोषण की शिकार बनाई जाती हैं। दलित महिला जागृति, कानून की मदद और अपने अधिकारों को पाकर ही दलित महिला शोषण मुक्त होगीं, तभी उनकी स्थिति हाशिए से केन्द्र की ओर होगी और मुख्यधारा में वे अपना स्थान पा सकेगीं।

प्र.2 विज्ञापन में स्त्री की छवि धूमिल हो रही है, अश्लीलता बढ़ रही है। इस संदर्भ में दलित स्त्री के बतौर आप क्या सोचती हैं?

डॉ. भीमराव अम्बेडकर की प्रेरणा से दलित स्त्रियां अब जाग रही हैं। वे अपनी अस्मिता को पहचान रही हैं। वे अपने आत्मसम्मान को भी जानती हैं, आत्मसम्मान की लड़ाई वे लड़ रही हैं। स्त्रियों की अस्मिता से खिलवाड़ करने वालों के विरूद्ध, दलित स्त्री मुक्ति आन्दोलन चलाया जा रहा है। दलित स्त्री आन्दोलन इस बात की भी घोषणा करता है कि विज्ञापनों में स्त्रियों की कामुक या अश्लील तस्वीरें, दिखाना गलत है, गैरकानूनी है, स्त्री अस्मिता के विरुद्ध है। ऐसे लोगों को दण्ड दिया जाना चाहिए।

इसके बाद भी विज्ञापनों में स्त्री छवि को अश्लील रूप में दिखाना जारी है। इसके विरूद्ध देशव्यापी रूप में बड़ा अभियान चलाने की जरूरत है। गरीब अभावग्रस्त युवतियां थोड़े रुपयों की आमदनी के लिए कम कपड़ों में तस्वीरें या विडियों के लिए तैयार हो जाती हैं। ऐसी युवतियों और स्त्रियों की आर्थिक समस्याओं के समाधान की बातों पर भी विचार किया जाए।

यदि स्त्रियों को सम्मानित नौकरी सरलता से मिले, तब विज्ञापनों में स्त्रियों की छवि धूमिल नहीं की जा सकेगी। समाज में स्त्रियों के प्रति सम्मान की भावना जगाना जरुरी है।

प्र.3 एक लेखिका के बतौर पति पत्नी के रिश्तें जैसे आपकी आत्मकथा में उजागर हुए हैं, पत्नी और लेखिका का द्वन्द्व, दबाव संघर्ष पर आप कुछ बदलाव देखती हैं कि पति के आगे आपका डर दलित स्त्री की मानसिकता भर था?

यह दलित स्त्री की मानसिकता भर नहीं है बल्कि समाज में पुरुष प्रधानता और पितृसत्ता का आतंक है। मैंने अपनी आत्मकथा में एक लेखिका के बतौर पति पत्नी के रिश्तों का एक रूप प्रस्तुत किया है। लेकिन यह तो घर घर की कहानी है। स्त्रियाँ घर परिवार में किसी न किसी रूप में शोषित पीड़ित होती ही हैं। स्त्रियाँ अपनी पीड़ा की बातें सरलता से समाज के सामने नहीं ला पाती हैं, न ही शोषण का विरोध कर पाती हैं। मैं ऐसा कर सकी, एक लेखिका होने के कारण, इससे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि दलित महिला आन्दोलन से जुड़कर मैं यह साहस कर सकी।

एक पत्नी और लेखिका का द्वन्द्व दबाव संघर्ष को मैंने स्वयं महसूस किया है। पत्नी के अपने आदर्श होते हैं कि वह अपने घर परिवार वालों की ऐसी बातें समाज को न बताएं। मैंने भी कई बरसों तक नहीं बताया। फिर मैंने इसे जरुरी समझा, यह समाज में स्त्री शोषण की मुक्ति के लिए जरूरी है। क्योंकि यह सिर्फ मेरी बात नहीं, समाज को यह मालूम होना चाहिए कि घर परिवार में स्त्रियों का शोषण अन्याय इस तरह होता है। यह मेरा कर्तव्य था, जो मैंने पूरा किया। अब अखिल भारतीय स्तर पर इस पर चर्चा हो रही है।

प्र.4 आज के बदलते दौर में दलित स्त्री की मुक्ति की सम्भावना पर आप क्या कहना चाहेगीं?

आज के बदलते दौर में दलित स्त्री की मुक्ति की संभावना पर यही कहा जा सकता है कि नई पीढ़ी की स्त्रियाँ शिक्षा प्राप्त कर रही है, नौकरी और उद्योग से जुड़कर वे स्वावलम्बी भी बन रही हैं। लेकिन उनके अन्दर नारी चेतना को जगाना आवश्यक है। जब तक वे अपने व्यक्तित्व और कृतित्व को नहीं पहचानेंगी, तब तक वे अपने समता सम्मान और स्वतंत्रता के अधिकारों को नहीं पा सकेगीं। वे अपने निर्णय स्वयं लें, उनकी अपनी पहचान हो, वे केवल नौकरी और अपनी उन्नति तक सीमित न रहें, बल्कि वे समाज के लिए भी कार्य करें। धार्मिक संकीर्णता से मुक्त होकर वे डॉ. भीमराव अम्बेडकर की विचारधारा को माने और इसी के आधार पर अपने कार्य करें। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने 'हिन्दू कोड बिल' और भारतीय संविधान में स्त्रियों को अधिकार देकर उन्हें सबल बनाया है। डॉ. अम्बेडकर ने स्त्रियों को जाग्रत करने के लिए अनेक सभा और सम्मेलन आयोजित किए थे। इसी तरह दलित स्त्रियां भी स्वयं जाग्रत

होकर सभी स्त्रियों को जाग्रत करने का अभियान चलाएं, तभी दलित स्त्री मुक्ति की संभावना पूरी हो सकेगी।

प्र.5 दलित साहित्य में दलित महिला लेखन की स्थिति काफी कमजोर रही है। इसके क्या कारण रहे हैं ?

दलित साहित्य लेखन में दलित महिला लेखन आ रहा है। रजनी तिलक जी के सम्पादन में 'समकालीन दलित महिला लेखन' के तीन अंक छपे हैं। जिनमें अनेक दलित महिलाओं की रचनाएं हैं। कविता, कहानी, उपन्यास, वैचारिक लेख आदि विधाओं में दलित महिलाओं की पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। दिल्ली से रजनी तिलक, रजनी दिशोदिशा, रजनी अनुरागी, पूनम तुषामड़, सुमित्रा मेहरोल, अनीता भारती, विमल थोरात, पुष्पा विवेक, रजतरानी मीनू, हेमलता महीश्वर, विनीता रानी आदि अनेक दलित लेखिकाएं हैं हैदराबाद से रेखा रानी, राजस्थान से कुसुम मेघवाल, रांची से नीरा परमार, बिहार से कावेरी, महाराष्ट्र से सुशीला टाकभौरे आदि अनेक हिन्दी दलित साहित्य की लेखिकाएं हैं जो लगातार लिख रही हैं। यद्यपि यह सत्य है कि महिला लेखन की स्थिति अभी भी कमजोर है। इसके मुख्य कारण हैं – दलित स्त्रियों में शिक्षा की कमी, प्रेरणा – प्रोत्साहन की कमी, आत्मनिर्भरता की कमी, आर्थिक सहयोग की कमी, साथ ही जिम्मेदारी अधिक हैं। दलित लेखिकाएं अधिक संख्या में और अधिक लेखन करेगी तब यह स्थिति जरुर सुदृढ़ हो सकेगी।

प्र.6 आपके कहानी संग्रहों के माध्यम से आप दलितों और महिलाओं को क्या संदेश देना चाहेगीं ?

मेरे चार कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं। साहित्य सृजन के मेरे उद्देश्य दलित विमर्श और स्त्री विमर्श है। इसी आधार पर मैंने अपनी सभी कहानियों का सृजन किया है। 'अनुभूति के घेरे' कहानी संग्रह की सभी कहानियाँ स्त्री विमर्श की कहानियाँ हैं, जिनके माध्यम से मैंने स्त्री का महत्व, स्त्री की आवश्यकता और स्त्री सम्मान का संदेश समाज को स्पष्ट रूप से दिया है। 'टूटता वहम' कहानी संग्रह में मैंने अपनी आत्मकथात्मक अनुभूतियों को कथा के रुप में रखा है। कुछ कहानियाँ दलित सरोकार की हैं, कुछ स्त्री सरोकार की हैं। इसी तरह 'संघर्ष' और 'जरा समझों' कहानी संग्रह की कहानियाँ दलित और स्त्री विमर्श की समस्याओं को बताकर, उनके निराकरण का संदेश देती हैं।

मेरी कहानियाँ दलितों और महिलाओं को यह संदेश देती हैं कि अब समय बदल रहा है। हम अपनी उन्नति स्वयं कर सकते हैं मगर इसके लिए संघर्ष और श्रम की आवश्यकता है। अपने विरोधियों का हमें सामना भी करना होगा, उन्हें करारा जबाब देकर हमें अपनी मंजिल की ओर बढ़ना चाहिए। यद्यपि यह भी सत्य है कि कथा कहानियों में यह बातें बताना सरल होता है, यथार्थ जीवन में इन स्थितियों का सामना करना कठिन होता है। फिर भी साहित्य के

माध्यम से सामज को प्रेरणा और प्रोत्साहन दिया जा सकता है। मैंने यह कार्य अपनी कहानियों के माध्यम से किया है।

प्र.7 कवि स्वयं के भोगे हुए यथार्थ को अपनी कृतियों में उकेरता है। इस संदर्भ में आपके द्वारा रचित काव्य संग्रहों में कितना भोगा हुआ यथार्थ है ?

प्रत्येक साहित्यकार अपने भोगे हुए यथार्थ को किसी न किसी रूप में अपनी कृतियों में उकेरता है। मैंने भी अपने अनुभवों और अनुभूतियों को अपनी रचनाओं में उकेरे हैं। मेरी कविताओं में दलित एवं स्त्री अनुभूति के जो चित्र हैं, वे अधिकांश मेरे अपने भोगे हुए यथार्थ का ही चित्रण है। 'स्वाति बूंद और खारे मोती' की कविताएं मेरी अपनी अनुभूति की ही कविताएं हैं। 'तुमने उसे कब पहचाना' कविता संग्रह की स्त्री विमर्श की कविताएं मेरे अपने अनुभवों का यथार्थ हैं। 'यह तुम भी जानो' कविता संग्रह में दलित अनुभूतियों के चित्र हैं, जो मेरे अपने यथार्थ जीवन के ही प्रसंग हैं।

'स्वाति बूंद और खारे मोती' कविता संग्रह की पहली कविता 'समर्पित भाव' ''जीवन में आए वे क्षण/जब अनुभूति/पुंजीभूत होकर/ काव्य पंक्तियाँ बन गई/ जीवन की राह में मिले वे लोग/ जो क्षणभर में/ बिजली की चमक से/ उतरते चले आए मन में/ संवेदना की राह से।''

इसी तरह दस्तक, सीढ़ी, मृगतृष्णा, स्थिर चित्र, विद्रोहिणी अधिकांश कविताएं मेरे अपने भोगे हुए यथार्थ की अनुभूति हैं, जो कविता रुप में चित्रित हुई हैं। सागर और आकाश, समष्टि की सन्तान, मील का पत्थर अनुत्तरित प्रश्न, आस की पीड़ा, मैंने कुछ शब्द जोड़ें हैं, औरत नहीं है मजबूर, लौटा दो मेरा विश्वास, सभी कविताओं में मेरी अपनी अनुभूति हैं। 'हमारे हिस्से का सूरज' कविता संग्रह में 2000 तक की चुनी हुई कविताओं को संकलित किया है। उसमें भी मेरे भोगे हुए यथार्थ की अनुभूति है।

एक दलित का यथार्थ और एक स्त्री का यथार्थ जो मेरा अनुभव है, वह सबका है और जो सबका है वही मेरा है। इसी दृष्टि से मेरी रचनाएं सिर्फ मुझ तक सीमित नहीं हैं, उनमें मेरे यथार्थ के साथ पूरे दलित और स्त्री समाज के भोगे यथार्थ का चित्रण है। यही मेरे काव्य संग्रहों की कविताओं में सहज रुप से आया है।

प्र.8 उपन्यास 'तुम्हें बदलना ही होगा' में आपने बताया है कि जातिवाद को खत्म करने के लिए अन्तरजातीय विवाह जरूरी है। यह आपकी नजर में कहां तक संभव है?

''जातिवाद को खत्म करने के लिए अन्तरजातीय विवाह जरुरी है''– यह बात सर्वप्रथम बाबासाहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने ही बताई है। दलित साहित्यकार अम्बेडकरवादी विचारधारा के समर्थन में ही, उन विचारों को अपने साहित्य के माध्यम से समाज तक पहुंचाने का कार्य

कर रहे हैं। इसी दृष्टि से मैंने 'तुम्हें बदलना ही होगा' उपन्यास में अन्तरजातीय विवाह के समर्थन में कथानक को रखा है।

आजकल अन्तरजातीय विवाह होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। कई अन्तरजातीय विवाह सफल भी हो रहे हैं। भविष्य में अन्तरजातीय विवाह एक सहज बात मानी जाए, इसी दृष्टि से मैंने इस तरह के प्रकरण उपन्यास में रखे हैं। दलित युवती महिमा और सवर्ण चमनलाल बजाज के बीच प्रेम और अन्तरजातीय विवाह प्रकरण, इसी तरह दलित प्रोफेसर धीरज कुमार और सवर्ण ऊषा बजाज का प्रेम प्रकरण है। यह दिखाकर उसके विवाह के लिए परिवार और समाज का समर्थन दिखाया गया है, जिससे समाज की नई पीढ़ी के लिए अन्तरजातीय विवाह के लिए मार्ग बनाया जा सके।

यद्यपि ऐसे विवाह अधिकतर संभव नहीं होते। सामाजिक रुप से ऐसे विवाह का विरोध किया जाता है। लेकिन यदि कानूनी रुप से ऐसे विवाहों को समर्थन और संरक्षण मिले, तो यह समाज में संभव हो सकते हैं, जैसा कि मैंने महिमा और चमनलल बजाज के विवाह के सम्बन्ध में बताया है। प्रेम विवाह जाति देखकर नहीं होते, इसलिए प्रेम के कारण भी ये संभव हैं, बषर्ते कि वे निबाहे जाएं। यह मेरा विश्वास है कि भविष्य में अन्तरजातीय विवाह पूर्णतः संभव होंगे।

प्र.9 आज की बदलती आर्थिक संरचना में स्त्री चेतना कहां तक संभव है ?

आज की बदलती आर्थिक संरचना में स्त्री चेतना की संभावनाएं अधिक बन रही हैं। वर्तमान समय में शिक्षा और रोजगार के क्षेत्र में स्त्रियां पुरुषों के बराबर आगे बढ़ रही हैं। कहीं कहीं तो स्त्रियां पुरुषों से आगे नजर आती हैं। अब समाज में पुरुषों की तरह स्त्रियों का नौकरी रोजगार करना जरुरी माना जाने लगा है। संयुक्त कुटुम्ब प्रथा टूटने से स्वतंत्र परिवार की प्रथा चल रही है। आज के प्रगतिशील समय में जीवन की सुख सुविधाओं की कामना हर परिवार करता है, साथ ही मंहगाई का सामना भी करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में अधिकतर पति चाहते हैं कि उनकी पत्नी भी नौकरी करें। वे भी आर्थिक दृष्टि से परिवार को सुख सुविधा देने में सहभागी बने। इस तरह स्त्रियों का नौकरी करना जैसे जरूरी माना जाने लगा है।

शिक्षित स्वावलम्बी स्त्री अपने व्यक्तित्व और कृतित्व को जल्दी समझने लगती हैं। साथ ही अपने समता सम्मान के अधिकारों के लिए भी सचेत हो जाती हैं। इस तरह उसमें स्त्री चेतना का विकास सकारात्मक रूप में होने लगता है। हर शिक्षित स्वावलम्बी मां अपनी बेटियों को भी इसी रूप में ढ़ालती हैं कि वे भी आगे अपने जीवन में स्वावलम्बी और सम्मानित जीवन जिएं। इस तरह आज की बदलती आर्थिक संरचना में स्त्री चेतना की संभावनाएं बढ़ती जा रही हैं। जहां स्त्री चेतना की संभावनाओं को रोकने का प्रयत्न किया जाता है, वहां स्त्रियां कानून की मदद लेकर, अपने शोषक विरोधियों को परास्त भी करने लगी हैं।

प्र.10 आपके लेखन की सभी विधाओं में स्त्री चेतना और दलित चेतना किस तरह से उभरकर आयी है ?

मैंने साहित्य की लगभग सभी विधाओं में अपना लेखन किया है। कविता, कहानी, नाटक, एकांकी, उपन्यास, समीक्षा आलोचना, वैचारिक लेख, आत्मकथा, पत्र साहित्य आदि विधाओं में अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। जैसा कि मैंने पहले ही बताया है, मेरे लेखन का उद्देश्य दलित चेतना और स्त्री चेतना ही है। इन्हीं का संदर्भ लेकर मैं लगातार लेखन और प्रकाशन कार्य कर रही हूँ। जैसा कि मैंने पिछले प्रश्नों के उत्तर में बताया है, मैंने सभी कविताओं में स्त्री चेतना और दलित चेतना को केन्द्रित करके ही, बिम्ब उभारे हैं। इसी तरह मेरी सभी कहानियों के लेखन में स्त्री चेतना और दलित चेतना को केन्द्रित किया है। सिलिया, बदला, छौआ मां, दमदार, सलीम की अनारों, जरा समझो, संघर्ष, टूटता वहम, सभी रचनाओं में चेतना का संदेश है। कहीं कहीं स्त्री चेतना और दलित चेतना दोनों ही एक साथ दिखाई देती हैं, कहीं विशेष रुप से स्त्री चेतना है। 'अनुभूति के घेरे' की कहानियां इसका उदाहरण है। नाटकों में भी स्त्री चेतना और दलित चेतना का संदेश है। उपन्यास 'वह लड़की' में स्त्री चेतना केन्द्रित है। 'नीला आकाश' और 'तुम्हें बदलना ही होगा' उपन्यासों में स्त्री चेतना के साथ दलित चेतना भी चित्रित है। 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा एक दलित स्त्री की आत्मकथा है। अतः इसमें पूर्ण रूप से स्त्री चेतना भी है और दलित चेतना भी है।

पत्र साहित्य में मेरी दो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं (1) कैदी नं. 307 सुधीर शर्मा के पत्र (2) संवादों के सफर। इन दोनों ही पुस्तकों को एक दलित स्त्री साहित्यकार ने तैयार किया है। यहां पत्र भेजे भी गए हैं और प्राप्त भी हुए हैं। इन पत्रों के अध्ययन से हमारे देश की समाज व्यवस्था का अध्ययन किया जा सकता है। साथ ही सामाजिक सरोकार को भी समझा जा सकता है। अधिकांश पत्रों में दलित आन्दोलन की भी चर्चा है और स्त्री मुक्ति आन्दोलन की भी। इस दृष्टि से मेरे पत्र साहित्य में स्त्री चेतना और दलित चेतना का शोध भी किया जा सकता है। अलग अलग रचनाओं में स्त्री चेतना और दलित चेतना का विश्लेषण करना विस्तार से ही हो सकेगा, अतः संक्षेप में बस इतना ही।

प्रकाश से जगमग द्वीपों का घना अंधकार

पुस्तक समीक्षा 'विकास से परे अंधेरे से घिरे'

द्विभाषीय - मासिक
ISSN (P) : 2321-290X (E) 2349-980X
RNI No. : UPBIL/2013/55327
Srinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika
Indexed with Google scholar
Impact Factor
SJIF = 5.689
GIF = 0.543
The Research Series
द्विभाषीय - मासिक
Shrinkhala
श्रृंखला
A Multi-Disciplinary International Journal

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-4* ISSUE-7* March- 2017
E: ISSN NO.: 2349-980X Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika

भद्दी तस्वीरें देखते हैं। साथ–साथ उन हाथों को भी पकड़ते हैं जिन्होंने कई सौन्दर्य से भरी जीवन झाँकियों पर ईर्ष्यावश कालिख पोत दी है।"[4] कई कारणों से दलित साहित्य में आत्मकथाओं का बड़ा महत्व रहा है। भारतीय समाज वर्ण और जाति व्यवस्था पर आधारित है। सवर्ण समाज स्वार्थ के लिए दलितों का इस्तेमाल करता रहा है वर्ण व्यवस्था से समाज में असमानता फैली है। दलितों की स्थिति समाज के हाशिए पर ही रही है। दलितों के साथ अमानवीय व्यवहार होते रहते हैं। दलित हमेशा से ही अपनी मुक्ति के लिए संघर्षरत रहे हैं। जहाँ स्त्री का सवाल है वो वैसे ही दलितों में भी दलित मानी जाती रही है। फिर दलित स्त्री की यातना तो और भी गहरी है। 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा यही दर्शाती है। जिस प्रकार से शिकंजे में फंसा जानवर मुक्ति के लिए संघर्ष करता रहता है और मुक्ति नहीं मिलने पर छटपटाता रहता है उसी छटपटाहट में उसका दर्द उतना ही बढ़ता जाता है। वह मजबूर, लाचार विवश होकर दर्द पीड़ा सहता रहता है। दलितों में भी दलित समझी जाने वाली स्त्री मनुवादी समाज व्यवस्था के शिकंजे से मुक्ति के लिए छटपटाती रही है वही लाचार और विवश नारी का जीवन जीती दिखाई देती है। आत्मकथा 'शिकंजे का दर्द' में लेखिका ने स्वयं के साथ हुए शोषण, यातना संघर्ष, पीड़ा संत्रास का वर्णन किया है। दलित आत्मकथा में दलित रचनाकारों की अपनी पीड़ा, यातना तथा विक्षोभ के साथ–साथ समाज का भी सजीव तथा वास्तविक चित्रण होता है। दलित आत्मकथाओं के बारे में वाल्मीकि जी कहते हैं – "किसी भी दलित द्वारा लिखी आत्मकथा सिर्फ उसकी जीवन गाथा नहीं होती, बल्कि उसके समाज की जीवन गाथा भी होती है। लेखक की आत्म–अभिव्यक्ति होती है। अपने जीवन के दुःख दर्द, अपमान, उपेक्षा के साथ ही अपनी जाति एवं समाज के दुःख दर्द और अपमान, उपेक्षा इत्यादि को भी स्वर देता है।"[5] दलित लेखन में सम्पूर्ण दलित समाज का विवरण है।

दलित नारी जन्म से लेकर मृत्यु तक जो पीड़ा, घुटन, अत्याचार, दुःख दर्द, उपेक्षा को सहती रही है। अब इनके विरुद्ध विद्रोह का भाव प्रकट कर रही है। 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा में यही विद्रोह निकलकर सामने आता है। आत्मकथा की भूमिका 'मनोगत' में कहती हैं – "बचपन से युवावस्था तक मेरे जीवन के दिन अनेक प्रकार के शिकंजों से जकड़े हुए थे इस जकड़न के कारण मेरे जीवन और व्यक्तित्व का विकास अवरुद्ध होता रहा।"[6] वे आगे अपनी विचारधारा को व्यक्त करते हुए कहती हैं कि कभी ऐसा लगता है मैंने अपने जीवन को पूर्ण रूप से नहीं जिया। जिसका ठोस कारण वर्णभेद, जातिभेद थे। इनकी हर बात के लिए बन्धन और अंकुश होता था। इस स्थिति में सुशीला जी को शिकंजे का दर्द भोगना पड़ा है। दलित स्त्री आत्मकथाओं में सामाजिक परिवेश समस्या और संघर्ष मुख्य रूप से उजागर हुआ है। दलित स्त्री को जीवन में शिक्षित होने के लिए संघर्ष, पारिवारिक व दाम्पत्य संबंध का दंश जातिगत पहचान की वजह से प्रगति के हर कदम पर आने वाली कठिनाईयों से जूझना, आर्थिक सबलता के लिए कठिन प्रयास, स्त्री होने के कारण घर और बाहर होने वाली अवहेलना, अपमान और शोषण की तिहरी मार को झेलना पड़ता रहा है। लेखिका ने अपनी आत्मकथा में इन प्रसंगों, घटनाओं, संघर्षों का चित्रण प्रमुखता से किया है।

भारत में हर गांव में दलित बस्ती एक तरफ दक्षिण–पश्चिम छोर पर होती है। सुशीला जी की बस्ती भी गांव के अंतिम छोर पर थी। सुशीला टाकभौरे जी का जन्म मध्यप्रदेश के बानापुरा गांव में दलितों में भी दलित समझे जाने वाले परिवार में हुआ। समाज में ऊँच–नीच, छुआछूत की भावना सर्वत्र विद्यमान थी। उस समय गांवों में छुआछूत जातिभेद बहुत गहरा हुआ करता था। जहां सुशीला जी रहती थी वहां सवर्ण सम्पन्न लोगों के घर गांव के ऊपर की ओर थे दूसरी ओर पिछड़े दलित मजदूरों की बस्ती थी। अछूत जाति के लोगों को समाज व्यवस्था के नियम के अनुसार गांव से बाहर बसाये जाते थे। लेखिका का परिवार भी समाज शोषण का शिकार हुआ था। समाज में गरीबी और शोषण का जीवन जीते–जीते दलित समाज छटपटा रहा है। दलितों के घर बस्ती से बाहर होते थे 'दोहरा अभिशाप' में कौशल्या बैसन्त्री ने उजागर किया है कि "दलितों की बस्ती सवर्ण बस्तियों से अलग होती थी। बस्ती से सटा एक नाला बहता था। सड़क के दूसरी ओर पक्की सड़कें बनी थी जो सवर्ण मकानों की ओर जाती थी। दलित बस्ती में अधिकांश अछूत थे अनपढ़ और मजदूर।"[7] समाज में दलितों और सवर्णों के घर अलग–अलग होने से ही समाज की वर्ण व्यवस्था का पता चलता है। अपने इसी दर्द को बयां करते हुए 'अपने–अपने पिंजरे' आत्मकथा में मोहन नैमिशराय जी कहते हैं "मेरठ शहर में छोटी सी हमारी बस्ती और ढेर सारे हमारे दुःख। ये दुख दर्द व्यक्तिगत भी होते और सामूहिक भी, किसी के कच्चे घर की छत टपकती तो किसी के घर में दीवारों में पानी रिसता। किसी परिवार में कोई विधवा होती तो किसी घर में बिन ब्याही जवान बेटी। हमारी बस्ती में ऐसे रंडवे भी होते जिनका कमाव तक नहीं होता, उनकी गिनती न शादीशुदा मर्दों में होती और न विधुरों में। किसी को गठिया का दर्द तो किसी के गुर्दे का दर्द। किसी के भीतर का दर्द तो किसी के बाहर का दर्द। पीड़ा का समन्दर जैसे हमें चारों ओर से घेरे रहता। हम सभी किसी टापू में सिमटे से होते।"[8] सुशीला जी ने अपनी आत्मकथा में अपनी बस्ती का यही विवरण किया है। उपर्युक्त बातों से स्पष्ट है कि भारतीय गांव व्यवस्था में दलितों का जीवन भेदभाव से पीड़ित रहा है।

जातिभेद के दंश समाज में हमेशा से ही रहे हैं। ऐसी घटनाएं जो मानवता को शर्मसार कर दे हमेशा घटती रही है। 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा में सुशीला जी की अपनी नानी का जातिगत अपमान देखकर बहुत दुखी होती थी। उनको हमेशा नीच जाति का होने का अहसास कराया जाता था। उन्हें जातीय हीनता से दबाया जाता रहा है। सुशीला जी आत्मकथा में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहती हैं – "जब मैं छोटी थी माँ–पिताजी ने गाय पाली थी फिर उन्हें वह गाय बेचनी पड़ी। मैंने मां से पूछा था– अभी हम गाय क्यों नहीं पालते? माँ ने बताया– अपनी जाति के लोगों को गाय नहीं पालने देते।"[9] दलितों को जाति के अनुसार कुत्ते, सूअर जैसे जानवर ही पालने

P: ISSN NO.: 2321-290X
E: ISSN NO.: 2349-980X
RNI : UPBIL/2013/55327
VOL-4* ISSUE-7* March- 2017
Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika

के निर्देश हैं। सवर्ण समाज दलित जाति से घृणा करते हैं तथा उनके प्रति निर्ममता तथा क्रूरता का व्यवहार करते हैं। अपनी इस पीड़ा को व्यक्त करते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं– "मन में एक सवाल सा उठता था जो कहना चाहता था, मैं हिन्दू भी तो नहीं हूं। यदि हिन्दू होता तो हिन्दू मुझ से इतनी घृणा, इतना भेदभाव क्यों करते? बात–बात पर जातीय बोध की हीनता से मुझे क्यों भरते? जातीय श्रेष्ठता– भाव अभिमान बनकर कमजोर को ही क्यों मारता है? क्यों दलितों के प्रति हिन्दू इतना निर्मम व क्रूर है?"[9]

जाति के कारण ही दलित समाज ऊपर उठने के लिए हमेशा से ही संघर्षरत रहा है। सूरजपाल चौहान ने अपनी आत्मकथा 'तिरस्कृत' में संस्कृत के अध्यापक वेदपाल शर्मा के विषय में लिखते हैं कि वे जाति का ओछापन मुझे हमेशा याद दिलाते रहते थे। एक दिन सूरजपाल की ओर संकेत करते हुए कहा था– "यदि देश के सारे चूहड़े चमार पढ़ लिख गए तो गली मौहल्लों की सफाई और जूते बनाने का कार्य कौन करेगा।"[10] इस कथन से स्पष्ट होता है कि शहर के स्कूल का अध्यापक दलितों को गली मौहल्लों की सफाई और जूते बनाने के लिए अनपढ़ रखना चाहता है। दलित लेखकों ने अपने जीवन के जातीय दंशों को और उनसे उपजी शोषण की विभीषिका को अभिव्यक्त किया है। जिससे जाति व्यवस्था की अमानवीय विद्रूपता सामने आई है। वाल्मीकि कहते हैं– "इस पीड़ा को दंश को वही जानता है जिसे सहना पड़ा है।"। दलित चाहे कितने भी उच्च पद पर आसीन हो जाए जाति उसका पीछा नहीं छोड़ती। सूरजपाल अपनी आत्मकथा में लिखते है कि जब उसकी जाति का पता जमींदार को चलता है तो वह दांत पीसता हुआ बोला– "अरे भंगनिया नेक पीछे कू हट के पानी पी, यह शहर न है, गांव है, मारे लठिया के कमर तोड़ दी जाएगी – मैजी, भंगिया और चमड़ा के सहर में जाके नए–नए लत्ता (कपड़े) पहन के गांव में आ जाता हैं। कुछ पतो न चलतु कि ये भंगिया के हैं कि नाय।"[11] साफ–सुथरे होने के बावजूद जाति की वजह से इतना तिरस्कार सहना पड़ता है। मोहनदास नैमिशराय अपनी आत्मकथा 'अपने–अपने पिंजरे' में जाति का उल्लेख करते हुए लिखते हैं – "हम कहीं भी जाएं, कितनी भी बड़ी कक्षा में पढ़ें जातियां हमारा पीछा नहीं छोड़ती। जहां भी हम जाते हैं, वे भी बिना रोक टोक के आ पहुंचती है।"[12] जाति के बारे में लेखक के यह उद्गार मन की कितनी गहराई से निकले प्रतीत होते हैं। जाति के भीतर की जाति भेदभाव होना एक आश्चर्यजनक बात है। सवर्ण लोग तो दलित वर्ग से घृणा करते ही हैं। दलित भी अपनी जाति के लोगों से घृणा करने में नहीं चूकते। माता प्रसाद अपनी आत्मकथा 'झोपड़ी से राजभवन तक' में एक घटना का वर्णन करते हुए कहते हैं– "कभी–कभी जाति के भीतर ही कुछ लोग भेदभाव करते है। कि आप भक्त हैं या सेवक। मैंने कहा कि मैं भक्त नहीं हूं। इस पर अलग से रखे गए बर्तन को लाकर मुझे पानी पीने को दिया गया।"[13] जाति का ऐसा बहुरूपिया रूप देखकर दिल को ठेस पहुंचती है। जाति के लिए अपमानित होना बहुत बड़ा दर्द है। जाति धर्म से बड़ी जटिलता है। जाति के रूप में दलित आज भी जुल्मों का शिकार होता है। स्त्रियों को पढ़ाने का रिवाज उस समय नहीं था। पढ़ने लिखने का रिवाज सवर्ण जातियों का ही था। दलितों में भी लड़की हो तो पढ़ना असंभव बात थी। लड़कियों को पाल–पोसकर बड़ा करो और शादी कर दो यही रिवाज था। लेकिन सुशीला जी का परिवार शिक्षा के प्रति जागरूक था। उन्होंने अच्छी तरह समझ लिया था कि अगर छुआछूत, जातिभेद, मनुवादी शोषण से मुक्ति पाना है तो सब कुछ सहकर शिक्षा ग्रहण करनी ही होगी। यहां उनकी सकारात्मक मानसिकता उजागर होती है। सुशीला जी की पढ़ाई में मां का सहयोग ज्यादा रहा। उनकी इच्छा थी उनकी बेटी पढ़–लिखकर विशेष योग्यता प्राप्त करे और एक अच्छी नौकरी पा सके। 1960 में उनका ऐसा सोचना उनका प्रगति–परिवर्तनवादी दृष्टिकोण दर्शाता है। उन दिनों दलित जाति के समुदाय में बच्चों की शिक्षा के प्रति माता–पिता जागृत नहीं थे। न लड़कों के प्रति न लड़कियों के प्रति। उस समय दलितों की मानसिकता इस प्रकार थी। "बच्चों को पढ़ाकर का होयगो। अपनी जात तो कहीं रहेगी काम रोजगार तो अपनी जात के ही करनो पड़ेगो, फिर क्यों बच्चों को परेशान करें।"[14] ऐसी मानसिकता के कारण ही दलित समाज पिछड़ता जा रहा है। जहां एक ओर सुशीला जी का नाम स्कूल में लिखवाया जाता है वहीं दूसरी ओर उनका अछूत जातिभेद, वर्णभेद का दौर शुरू होता है। सवर्ण बच्चे आगे की पंक्ति में बैठते थे और दलित निम्न वर्ण के बच्चे पीछे की पंक्ति में बैठते थे। सुशीला जी कहती हैं कि "एक दिन मैं सबसे आगे की पंक्ति में बैठ गई उस दिन मुझे सब कुछ अच्छा लग रहा था लेकिन जैसे ही गुरुजी की नजर मुझ पर पड़ी तो देखकर जोर से चिल्लाये– सुशीला तुम आगे क्यों बैठी हो? तुम्हें तो सबसे पीछे बैठना चाहिए।"[15] क्या शिक्षा लेने में भी दलित और सवर्ण का स्थान अलग–अलग होता है। यही भावना मन को झकझोर देती है। कौशल्या बैसन्त्री अपनी आत्मकथा 'दोहरा अभिशाप' में अपनी शिक्षा के दिनों का क्रूर व्यवहार और सामाजिक जातीय अत्याचारों का वर्णन करते हुए लिखती हैं– "जब मैंने कन्या पाठशाला में पांचवीं कक्षा में प्रवेश लिया तब स्कूल की फीस ज्यादा थी। एक रुपये बारह आने। बच्चों की फीस देना मां–बाप के सामर्थ्य से बाहर था। बाबा ने हेड मिस्ट्रेस से बड़ी विनती की वे फीस नहीं दे सकते। वे मान गईं। बाबा ने उनके सामने सिर झुकाया दूर से, क्योंकि वे अछूत थे स्पर्श नहीं कर सकते थे।"[16] दलितों को शिक्षा ग्रहण करना सवर्णों को नागवार गुजरता था। दलितों ने विषम परिस्थितियों में कैसे शिक्षा ग्रहण की। कागज–कॉपी खरीदना तो दूर की बात, दो वक्त की रोटी भी ठीक से नसीब नहीं होती थी। ऐसे वातावरण में शिक्षा ग्रहण करना कितना मुश्किल है।

डॉ. श्योराज सिंह बेचैन ने इसके बावजूद अपने परिवार के सामने चुनौतीपूर्ण निश्चय किया– "मैं पढ़ेगो, एक बेरा कोशिश जरूर करूंगो। अगर दसवीं पास नांय करि पाओ तो हार मान लिंगो, पर बिना कोशिश करे तो नांय मानंगो, कोई मेरा संगु देऊ या मत देऊ। मैं एक–एक अक्षर के बदले अपने खून की एक–एक बूंद दै दैंगो पर पढ़नो नांय छोड़ंगो।"[17] श्योराज सिंह बेचैन अपने

P: ISSN NO.: 2321-290X
RNI : UPBIL/2013/55327
VOL-4* ISSUE-7* March- 2017
E: ISSN NO.: 2349-980X
Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika

लगन, आत्मविश्वास और संघर्ष से लक्ष्य को प्राप्त करती है।

ब्राह्मणवादी मानसिकता से ग्रस्त स्कूली शिक्षकों के मन में दलितों के प्रति उसी तरह की घृणा है, जिस तरह दलितों के प्रति अनपढ़ सवर्ण में होती है। एक शिक्षित व्यक्ति की यह सोच शिक्षा प्रणाली पर प्रश्न चिन्ह लगाती है। दलित आत्मकथाकारों को शिक्षा के लिए संघर्ष करना पड़ा है। शिक्षा ही एक मात्र ऐसा हथियार रहा है जो दलितों की स्थिति बेहतर बना सकता है। लेकिन दलितों को शिक्षा इतनी आसानी से नहीं मिलती। सवर्ण समाज हमेशा से ही निम्न वर्ण की शिक्षा के खिलाफ रहा है। दलितों को शिक्षा से वंचित कर उनके हालात निम्नतर बना देना आम बात है। सवर्ण कई बार ऐसे हालात पैदा कर देते थे जिससे दलित पढ़ाई छोड़ने को मजबूर हो जाते थे। ऐसा कई दलितों के साथ हुआ है। सुशीला जी के होनहार भाई को भी सवर्ण लोगों की मानसिकता के कारण ही शिक्षा से वंचित रहना पड़ा था। दलितों को शिक्षा प्राप्ति के लिए काफी जद्दोजहद करनी पड़ती है। सुशीला जी ने भी अपने जीवन में शिक्षा के लिए पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों से दो चार होना पड़ा लेकिन उनके हौसले बुलन्द होने से उन्होंने शिक्षा ग्रहण की। दोहरा अभिशाप की लेखिका कौसल्या बैसन्त्री को भी शिक्षा के लिए काफी कठिन परिस्थितियों से गुजरना पड़ा लेकिन हार नहीं मानी और शिक्षा ग्रहण की। श्योराज सिंह बेचैन ने भी विषम परिस्थितियों में भी शिक्षा ग्रहण की। जिनके पास दो वक्त की रोटी नहीं थी ऐसे वातावरण में शिक्षा पाना काफी मुश्किल होता है लेकिन फिर भी कठिन परिश्रम और आत्मविश्वास से पढ़ाई जारी रखी। "शिक्षा शूद्र को न मिले सारे शास्त्र इसी कोशिश में लगे रहे हैं, दलित न पढ़े यह उपक्रम आज तक भी लगातार जारी है।"[18] लेकिन अगर अपने इरादे मजबूत बना लें तो उसे कोई नहीं रोक सकता जैसा कि डॉ. उमेश कुमार सिंह ने अपने जीवन में किया। दलित बस्ती के लोग इनका मजाक बनाते रहे, तानाकशी करते रहे मगर वे जिन्दगी में आगे बढ़ते रहे। दलित बस्ती में शिक्षा का माहौल नहीं होता था। उमेश कुमार सिंह को भी पांचवी के इम्तहान के लिए दूसरे गांव जाना पड़ता था। जहां रात होने पर सवर्ण ठाकुर के यहां ठहरते थे दलित छात्र गंदी नाली के पास चबूतरे पर ठहरते थे। इनके साथ भेदभाव की स्थिति इस प्रकार स्पष्ट होती है– जिस तालाब में पशु लोटते थे, पंछी पंख भिगोते थे, परन्तु अछूतों को उस तालाब का पानी छूने तक की मनाही थी।"[19] दलितों को शिक्षा पाने के लिए रोकने के प्रयास किये जाते थे। लेकिन उमेश कुमार सिंह के जज्बे के सामने कुछ भी आड़े नहीं आया। इन्होंने अलीगढ़ और जेएनयू जैसे बड़े विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। शायद ऐसा करने वाले ये पहले इन्सान थे जहां सवर्णों को टक्कर देकर वहां तक पहुंच सके।

सवर्ण समाज दलितों का हर तरह से इस्तेमाल करता रहा है। जाति के नाम पर दलितों का अपमान करता है। दलित भी इन्हें सहज सामान्य बात मानते हुए इनका पालन करते रहे हैं। छुआछूत दलित जीवन में रोज-रोज होते रहते हैं। सुशीला जी कहती हैं– "बरफ वाला उन्हें रंगीन कांच के प्यालों में बर्फ देता था मगर मुझे कागज में देता था। एक बार मेरी सहेली ने बर्फ वाले से कहा– इसको भी हमारे जैसे कांच के प्याले में बर्फ क्यों नहीं देते? उसे भी प्याले में बर्फ दो। बर्फवाला बोला– आपके प्याले में इन लोगों को कैसे दे सकते हैं बेटा?"[20] ये सब अपमान की बातें थी फिर भी हम लोग अछूतपन को दिखाते हुए डरे सहमे से रहते थे।

समाज में छुआछूत की भावना सर्वत्र विद्यमान थी। दलित जाति की दशा जानवरों से भी बदतर थी। 'जूठन' में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने हिन्दू समाज की विकृतियों का पर्दाफाश किया है। ओमप्रकाश वाल्मीकि 'जूठन' में गांव के भीतरी जीवन की तस्वीर को दृष्टिगोचर करते हुए लिखते हैं– "अस्पृश्यता का ऐसा माहौल कि कुत्ते-बिल्ली, गाय, भैंस को छूना बुरा नहीं था लेकिन यदि चूहड़े का स्पर्श हो जाए तो पाप लग जाता था। सामाजिक स्तर पर इन्सानी दर्जा नहीं था। वे सिर्फ जरूरत की वस्तु थे। काम पूरा होते ही उपयोग खत्म, इस्तेमाल करो, दूर फेंको।"[21] दलितों के प्रति उच्च जाति का रवैया छुआछूत का था। सुशीला टाकभौरे जी अपनी आत्मकथा में जिक्र करती हुई कहती हैं – "ब्राह्मण जाति के लोग जानवर पाल सकते हैं लेकिन किसी गरीब के बच्चे को गोद लेकर नहीं पाल सकते। वे इतनी छुआछूत मानते हैं कि दलितों की छाह से भी दूर रहते हैं।"[22] सुशीला जी ने ऐसे अनुभव अपनी जिंदगी में भोगे हैं जहां मानव को एक कुत्ते जितना भी दर्जा नहीं दिया जाता। जहां वे किराये पर रहती थीं वहां उनकी सास का देहान्त हो जाने पर उनको देखने कोई नहीं आया वहीं एक उच्च वर्ण के परिवार में एक कुत्ते की मौत पर लोग सांत्वना देने जाते हैं। मानवता को कलंकित करने वाला मनुष्य का ऐसा रूप अन्दर तक झकझोर देता है। पूरी समाज व्यवस्था को उथल-पुथल करने को जी चाहता है। सिर्फ जाति के कारण ही एक मनुष्य कुत्ते के बराबर भी नहीं हो सका। स्वयं डॉ. टाकभौरे जी मनोगत में लिखती हैं। मेरी आत्मकथा दलित आत्मकथा होने के साथ एक स्त्री की भी आत्मकथा है। दलित स्त्री को दोहरे संताप से मुक्ति चाहिए हर प्रकार के शोषण से मुक्ति पाना दलित साहित्य का मुख्य उद्देश्य रहा है।

सुशीला जी अधिक दिनों तक गुलामी सहने वाली नहीं थी वे बचपन से ही शोषण के विरुद्ध संघर्ष करती रही हैं। सास, पति, ननद द्वारा बार-बार किये जाने वाले अत्याचार से तंग आ चुकी थी। वे शिकंजे से आजाद होने के लिए तड़प रही थी, लेकिन उनका दर्द दुःख पीड़ा लगातार जारी रहा। एक कॉलेज अध्यापिका जो बी.ए., बी.एड. होने के बावजूद एक झाड़ूवाली के रूप में ही नजर आती रही। उनका शिक्षा ग्रहण करने के बाद भी जाति पीछा नहीं छोड़ती। दलितोत्थान की चाहे कितनी भी बातें की जाए किन्तु यह जाति का सच ज्यों का त्यों रहता है। "सूरजपाल चौहान बेशक एक अधिकारी हैं और अन्य स्वजाति जनों की अपेक्षा साफ-सुथरे भी रहते हैं लेकिन गांव के सवर्णों के लिए आज भी इनकी पहचान एक भंगी के रूप में ही है।"[23] उच्च जाति का होने की ग्रन्थि सवर्ण समाज की मानसिकता को अन्दर ही अन्दर खोखला कर रही है।

अभिशप्त दाम्पत्य जीवन समाज की ओछी मानसिकता के कारण ही उच्च पदों पर आसीन होने पर भी दलित शोषित, पीड़ित जीवन की वेदना सहते हैं। वर्णवादी समाज के लोग इनको कभी भी समानता की नजर से नहीं देख पाते। आज भी भारत में घरों में स्त्री पति द्वारा पीड़ित दिखाई देती है। पुरुष मानसिकता की शिकार होती रही है। सुशीला जी भी पुरुषीय स्वामित्व, गुलामी ताड़ना, मारना पिटना– पैरों की जूती समझना, नौकर सा बरताव करना आदि की शिकार होती रही हैं। वे आत्मकथा में एक स्थान पर अपना दर्द बयां करती हुई कहती हैं– "स्कूल से या बाहर से आने के बाद कभी–कभी टाकभौरे जी मेरे सामने पैर लम्बे कर देते मेरा ध्यान न रहने पर हाथों से इशारा करके जूते उतारने के लिए कहते। मैं चुपचाप उनके पैरों के पास बैठकर जूते के फीते खोलती, जूते उतारती, मोजे उतारती। यह बात मुझे अजीब लगती थी।"[24] यही हालात समाज में हर स्त्री की हैं। 'दोहरा अभिशाप' में कौशल्या बैसन्त्री भी इसी अन्याय का शिकार होती नजर आती हैं। लेखिका अपनी पीड़ा को व्यक्त करती हुई कहती हैं– "देवेन्द्र कुमार (मेरे पति) को पत्नी सिर्फ खाना बनाने और उनकी शारीरिक भूख मिटाने के लिए चाहिए थी। दफ्तर का काम और लिखना यही उसकी चिंता थी। मुझे किसी चीज की जरूरत है इसका उसने कभी ध्यान नहीं दिया।"[25] लेखिका का पति इतना पढ़ा लिखा होने के बावजूद भी उनकी मानसिकता वही सड़ी गली परम्पराओं में उलझी हुई थी।

सुशीला जी को जीवनभर उपेक्षा प्रताड़ना, उलाहना, मारपीट का शिकार होकर शिकंजे का दर्द सहते रहना पड़ा और लगातार वे मुक्ति के लिए संघर्ष करती रहीं। उन्हें तब अधिक दुख होता था जब उनके ही दलित जाति के लोग उनसे उपेक्षा हीन तिरस्कार के भाव रखते हैं। सुशीला जी ने आत्मकथा में एक जगह कहती हैं– कि "जहाँ कचरा उठाने वाला कुमार जाति का सफाई कर्मचारी उनका कचरा उठाते समय भुनभुनाता और वही पड़ोसी ब्राह्मण के घर के सामने विनम्रता प्रकट करता।"[26] शायद इसके पीछे सदियों पुरानी मानसिकता रही होगी। ब्राह्मणवादी व्यवस्था स्वयं को और मजबूत करने के लिए दलित जातियों में ऊँच–नीच, श्रेष्ठ–निम्न की धारणा विकसित करती है जिसके कारण दलित जातियों के लोग आपसी एकता, इन्सानी भाईचारे और समानता की बजाय आपसी भेदभाव में उलझ गये हैं।

हमारे देश में अधिकतर महिलाओं की सोचने विचारने की दिशा एक जैसी ही रही है। वे पुराने रीति–रिवाजों का विरोध नहीं करती हैं। इस विचारधारा को व्यक्त करती हुई सुशीला जी कहती हैं कई बार कोई बात समझाने पर मुझे डांट दिया जाता था" रहने दो तुम्हारे भाषण और तुम्हारी शिक्षा। तुम क्या हमारे घरों में मदद करने वाली हो। हम अपने घर में खुश हैं तुम अपने काम में खुश रहो।"[27] समाज की यही मानसिकता तो बदलनी है। जो नारी को सबला से अबला बनाती नजर आ रही है। जब तक स्त्रियां आत्मनिर्भर नहीं बनेगी तब तक वे प्रगति के पथ पर कैसे आगे बढ़ सकेंगी। इस बात का समय रहते ही समझना होगा। स्त्री विमर्श के संदर्भ में सिमोन द बोअवा कहती हैं कि औरत होती नहीं बनाई जाती है।" इसी बात को टाकभौरे पर घटित होता देख सकते हैं लेकिन वह पूरी आत्मकथा में परिवार में, संस्थान में और समाज में अपनी पहचान के लिए संघर्ष करती है। इसी संघर्ष के चलते वह आम दलित महिला से ऊपर उठकर शिक्षा अर्जित करती है। वह हर कदम पर व्यक्तिगत स्तर पर पति और परिवार में संघर्ष करती है। शिक्षा पाने के लिए वह पति से भी दो चार होती है, विरोध सहती है। सबके विरोध के बावजूद वह शिक्षा लेकर ऊपर उठती है तब बोअवा के कथन को गलत साबित करती है। यह कथन इन पर पूरा नहीं उतरता है जबकि परिस्थितियां वैसी ही हैं। अगर वह संघर्ष नहीं करती, सामना नहीं करती तो वह सिमोन द बोअवा की दलित औरत बनकर रह जाती।

सुशीला जी एक दलित महिला होने का सन्ताप अपनी जिन्दगी में भोग चुकी हैं। दलित महिला होने के बावजूद अपना व्यक्तित्व बनाती है, पहचान कायम करती है। जहां समाज में दलित स्त्री को अपमानित किया जाता है। उसी समाज में रहकर उन्होंने अपने बच्चों की अच्छी परवरिश की उनको अच्छी शिक्षा उपलब्ध करवायी। यहां तक पहुंचने में इनको लगातार संघर्षरत रहना पड़ा। आत्मकथा में इसी संघर्ष को व्यक्त करते हुए कहती हैं कॉलेज में हमेशा मेरे साथ भेदभाव, ऊँच–नीच का व्यवहार किया जाता था लेकिन हमेशा मैं डटकर सामना करती थी। इसी बात पर एक दिन सुपरवाइजर को धमकाते हुए बोली– "आप मेरे साथ भेदभाव करते हो मेरे साथ जातिभेद मानते हो, इसलिए जानबूझकर मुझे परेशान करते हो।"[28] उनका ये रूप देखकर सब सतब्ध रह गये।

सुशीला जी न केवल अपने आपको ऊपर उठाती हैं अपितु दलित समाज को भी ऊपर उठाने में योगदान देती हैं। उन्होंने अपनी बेटियों की शादी बिना दहेज के करना और अन्तरजातीय विवाह करना जैसे काम समाज में प्रेरणादायी है। जहां समाज में खासकर दलित समाज में दहेज आवश्यक है। उसी समाज में बिना दहेज के शादी करना आसान तो नहीं रहा होगा लेकिन फिर भी यह उन्होंने किया। सुशीला जी का मानना है कि अन्तरजातीय विवाह से जातिभेद मिट सकता है। अंबेडकरी चेतना भी जाति मुक्ति पर आधारित है। स्वयं अंबेडकर दूसरी शादी ब्राह्मणी से करते हैं। जाति मुक्ति में अंतरजातीय शादी भूमिका निभा सकती है। इसकी शुरुआत इन्होंने अपने घर से ही की। अपनी बेटी का अन्तरजातीय विवाह भी बौद्ध पद्धति से करवाकर समाज के सामने एक नई मिसाल पेश की है। वह लिखती हैं कि मेरा लेखन मेरी जरूरत है मेरे समाज की जरूरत है। सामाजिक आर्थिक व्यक्तिगत जीवन में कई तरह की विसंगतियों का दर्द मैंने सहा है, लेकिन लेखन से मुझे ऊर्जा मिली है। पहचान दी है मेरा लक्ष्य निर्धारित किया है। इनका लेखन आधार जातिगत अपमान की कचोट और पीड़ा उत्पीड़न की वेदना है। दलित विमर्श के साथ–साथ नारी शोषण की स्थिति को बताने और मुक्ति पाने का आह्वान इनके लेखन का उद्देश्य रहा है। जब तक अन्याय को सहते रहोगे अन्याय उतना ही बढ़ता जायेगा। अन्ततः हम कह सकते हैं कि दलितों में भी

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-4* ISSUE-7* March- 2017
E: ISSN NO.: 2349-980X
Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika

दलित समझी जाने वाली नारी उपेक्षा प्रताड़ना, संत्रास, पीड़ा आदि का शिकार रही है। अन्याय का दर्द सहते हुए शिकंजे से मुक्त होने के लिए विद्रोह को प्रकट करती दिखायी देती है। वह समझ गयी है कि मनुवादी गुलामी से निकलकर स्वयं और समाज का विकास करना है तो समाज में परिवर्तन की लहर लानी होगी। यह परिवर्तन तब आयेगा जब शिक्षा रूपी हथियार हाथ में आयेगा।

उद्देश्य

इस लेख का उद्देश्य दलित उत्पीड़न से मुक्ति की लड़ाई है। जो सबको दिखाई दे रही है इसी तरह नारी मुक्ति की भी लड़ाई हो जिसे सब जाने और समझें। समाज में नारी के प्रति 'अबला' की मानसिकता को बदलकर नारी के सबल रूप से स्थापित करना नारी मुक्ति का उद्देश्य है। नारी शोषण अपमान के खिलाफ उठाने का उद्देश्य इस लेख में निहित है।

निष्कर्ष

दलित लेखन का समग्रतः अध्ययन करने के बाद निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है। कि पुरुषसत्ता प्रधान समाज में स्त्री शोषण उजागर होता है। आदर्शों के नाम इनके जीवन में शोषण होता रहा है। पुरुष की अपेक्षा नारी अपने जीवन में अधिक समस्याओं का सामना करती है।

इन समस्याओं से डटकर यदि वह प्रगति–पथ से पीछे हटेगी तो सफलता प्राप्त नहीं कर सकेगी। दलित लेखन ही नारी मुक्ति और नारी प्रेरणा जाग्रत कर सकता है। सदियों से तिरस्कार और अभावग्रस्त परिस्थितियों में रहने के लिए मजबूर किये गए दलित जीवन की व्यथा लेख में समाहित है। इस लेख का उद्देश्य दर्द देने वाले शिकंजे को तोड़ने का प्रयास है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *भगवानदास आत्मकथा लेखन मेरी दृष्टि में अनुत्तर अप्रैल–जून 1996, पृ.91*
2. *माता प्रसाद, दलित साहित्य की प्रमुख विधाएं, पृ.29,*
3. *मोहनदास नैमिशराय, हिन्दी दलित साहित्य में आत्मकथा लिखने का संकट अनुत्तर अप्रैल–जून 1996,पृ.11*
4. *हंस, अगस्त 2009, पृ.228*
5. *डॉ. श्रवण कुमार मीणा– दलित साहित्य समसामयिक संदर्भ*
6. *शिकंजे का दर्द– मनोगत*
7. *दोहरा अभिशाप– कौसल्या बैसन्त्री, पृ.27*
8. *अपने–अपने पिंजरे, मोहन नैमिशराय, पृ.11*
9. *शिकंजे का दर्द– सुशीला टाकभौरे, पृ.80*
10. *जूठन– ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ.72–73*
11. *दलित साहित्य– अनुभव संघर्ष यथार्थ– ओम प्रकाश वाल्मीकि, पृ.50*
12. *सूरजपाल चौहान, तिरस्कृत, पृ.32*
13. *अपने–अपने पिंजरे– मोहनदास नैमिशराय, पृ.127*
14. *झोपड़ी से राजभवन तक, माताप्रसाद गुप्त, पृ.47*
15. *सूरजपाल चौहान तिरस्कृत, पृ.13*
16. *शिकंजे का दर्द– सुशीला टाकभौरे, पृ.16*
17. *शिकंजे का दर्द– सुशीला टाकभौरे, पृ.22*
18. *कौशल्या बैसन्त्री, दोहरा अभिशाप, पृ.19*
19. *डॉ.रमेश चन्द मीणा– (एक दलित छात्र के जीवन का सच–लेख) युद्धरत आम आदमी, पृ.47–48*
20. *वही, पृ.48*
21. *श्योराज सिंह बैचेन, हंस सं.राजेन्द्र यादव, जून 2005, पृ.75*
22. *शिकंजे का दर्द– सुशीला टाकभौरे, पृ.47*
23. *ओमप्रकाश वाल्मीकि, जूठन, पृ.11–12*
24. *शिकंजे का दर्द– सुशीला टाकभौरे, पृ.48*
25. *शिकंजे का दर्द– सुशीला टाकभौरे, पृ.146*
26. *सामाजिक न्याय और दलित साहित्य– डॉ. श्योराज सिंह बैचेन, पृ.253*
27. *सुशीला टाकभौरे– शिकंजे का दर्द, पृ.141,*
28. *हंस पत्रिका दलित विशेषांक अंक1 अगस्त 2004, सं. राजेन्द्र यादव, पृ.70*
29. *शिकंजे का दर्द– सुशीला टाकभौरे, पृ.248*
30. *शिकंजे का दर्द– सुशीला टाकभौरे, पृ.251*
31. *वही, पृ.260*

ISSN (P) : 2456-5474
RNI : UPBIL/2016/68367
Bi-lingual/Monthly

Innovation

The Research Concept

Multi-disciplinary Bi-lingual International Journal

Social Research Foundation

S R F

ISSN: 2456-5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-3* Issue-1*February- 2018
Innovation The Research Concept

दलित आत्मकथाओं में दलितों का सामाजिक स्वरूप

सरिता
शोधार्थी
हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
बून्दी, राजस्थान

सारांश

आत्मकथा में लेखक नितांत व्यक्तिगत अनुभव को व्यक्त करने के साथ समसामयिक परिवेश से अपने को मुक्त नहीं कर पाता हिन्दी की प्रारम्भिक आत्मकथाओं में आनन्द मनोरंजन हर्ष उल्लास वैभव को महत्व प्रदान किया गया है तो समकालीन दलित आत्मकथाओं में गरीबी, कुपोषण कुव्यवस्था के साथ शोषण–अत्याचार के विभिन्न रूपों का चित्रण है। दलित रचनाकार आत्मकथा शैली में जब भोगी गई पीड़ा को व्यक्त करता है तो उसमें अनुभव की प्रामाणिकता का आ जाना स्वाभाविक है जिस प्रकार हिन्दी का दलित साहित्य मराठी भाषा से प्रभावित और प्रेरित है उसी प्रकार आत्मकथाएं भी। दलित समाज का अलग से कोई लिखित इतिहास नहीं है लेकिन उसकी संवेदना, चेतना और अपेक्षाएं दलित समाज के लोगों में जरूर रहती है। जिसे दलित आत्मकथाओं में देखा जा सकता है गैर दलित समाज ने अपने पराजित अतीत का गौरवशाली इतिहास का रूप देने में जितनी ऊर्जा खर्च की है। उसका लेशमात्र भी दलित जीवन की अभिव्यक्ति पर व्यय नहीं किया गया। फलतः दलित समाज का लिखित इतिहास वैसा नहीं बन पाया जैसा होना चाहिए था। लेकिन अब यह निर्माणाधीन है दलित समाज अपने अनुभवों को पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप में ही हस्तगत करता आया है।

मुख्य शब्द : शोषण, तगाओं, रूढ़, अन्याय, दर्जा, आभास, ओसारा, दुर्व्यवहार, प्रताड़ित, शूद्र, पूर्वाभ्यास, ग्रस्त, मुआवजा, पद्दी, निजीकरण, मुकाम, अछोर, जुलूस, कर्ज, बहुमूल्य।

प्रस्तावना

दलित आत्मकथाओं के संदर्भ में डॉ. जयप्रकाश कर्दम का कहना है कि "समाज के जिस विद्रूप, वीभत्स, क्रूर और अमानवीय चेहरे पर गैर दलित लेखक पर्दा डालते आए थे और समाज जिस सच से साक्षात नहीं करना चाहता था इन आत्मकथाओं ने समाज के उस नग्न सच को बेपर्दा किया।"[1] बेचैन जी की यह टिप्पणी दलित आत्मकथाओं की सार्थकता को और स्पष्ट कर देती है। "दलित आत्मकथाएं सवर्ण समाज का संबोधित संवाद हैं, इसमें दायित्वबोध से भरे अनुभवों की आग है किन्तु अपील की शक्ल में यह विचारों की वह मशाल है जिसे पिछली पीढ़ी अगली पीढ़ी को इस उम्मीद से हस्तगत करती है कि यह मुक्ति की राह रोशन करती रहे।"[2] हिन्दी साहित्य की प्रारम्भिक दलित आत्मकथाओं में मोहनदास नैमिशराय्य की 'अपने अपने पिंजरे' (1995) और ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन' (1996) अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है श्योराज सिंह बेचैन की 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' तुलसीराम की 'मुर्दहिया' रमेश कुमार सिंह की 'दुख–सुख के सफर में' डॉ. धर्मवीर की 'मेरी पत्नी और भेड़िया' कौशल्या बैसन्त्री की 'दोहरा अभिशाप' सुशीला टाकभौरे की 'शिकंजे का दर्द' आदि हैं। ये आत्मकथाएं लेखक की आत्मपीड़ा के साथ सामाजिक संघर्षों को भी व्यक्त कर रही हैं।

दलित आत्मकथाकार सर्वप्रथम अपनी बस्ती, गांव की स्थिति से परिचय करवाता है जो उनकी सामाजिक संरचना में दोयम स्थिति को स्पष्ट करता है। सदियों से हर दलित बस्ती गांव के बाहर ही होती है। तो जाहिर सी बात है कि दलित आत्मकथाकारों के घर भी गांव के बाहरी छोर पर ही रहे हैं। आत्मकथा 'अपने–अपने पिंजरे' में मोहनदास नैमिशराय जी कहते हैं कि "मेरा शहर में छोटी सी हमारी बस्ती और ढेर सारे हमारे दुख । ये दुख दर्द व्यक्तिगत भी होते और सामूहिक भी, किसी के कच्चे घर की छत टपकती तो किसी के घर में दिवारों में पानी रिसता"[3] दलितों के संघर्ष का पता उनके घरों से ही चल जाता है इसी तरीके के घर 'जूठन' आत्मकथा में भी नजर आते हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी कहते हैं कि "मेरा जन्म मुजफ्फरनगर जिले के बरला गांव की जोहड़ी के किनारे बने एक चूहड़े परिवार में होता है। एक ओर सवर्ण तगाओं के

मकान हैं तो दूसरी ओर दलितों के मकान और मकानों के पीछे गांव भर की जवान – बूढ़ी औरतों का खुला शौचालय है। इस तरह चारों ओर गन्दगी भरी होती है। ऐसी दुर्गन्ध उठती है कि मिनट भर में सांस घुट जाय। उनकी तंग गलियों में सुअर और कुत्तों के साथ नंग–धड़ंग बच्चे घूमते हैं। वर्णव्यवस्था को आदर्शव्यवस्था कहने वाले सवर्णों को यदि दो चार दिन रहना पड़ जाए तो उनकी राय बदल जाए।"[4] ऐसे माहौल में ओमप्रकाश वाल्मीकि का बचपन बीता जिसकी यादों भरी कड़वी सच्चाई उनके जेहन में मौजूद है। यही हालात 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' आत्मकथा में नजर आते हैं। "स्वतंत्र भारत की राजधानी दिल्ली से कुछ ही दूरी पर बसे हुए पश्चिमी उत्तर प्रदेश के बदायूं क्षेत्र में श्योराज सिंह की दलित बस्ती में अनेक प्रकार की यातनाओं अभावों को झेलते रहे हैं।"[5] अछूत जाति के लोगों को नियम के अनुसार गांव के बाहर बसाये जाते हैं। 'दोहरा अभिशाप' में भी कौशल्या बैसन्त्री ने यही उजागर किया है कि "दलितों की बस्ती सवर्ण बस्तियों से अलग होती थी। बस्ती से सटा नाला बहता था। सड़क के दूसरी ओर पक्की सड़कें बनी थी जो सवर्ण मकानों की ओर जाती थी। दलित बस्ती में अधिकांश अछूत थे अनपढ़ और मजदूर।"[6] समाज में दलितों और सवर्णों के घर अलग–अलग होने से समाज की वर्ण व्यवस्था का पता चलता है। उपर्युक्त बातों से स्पष्ट है कि भारतीय गांव व्यवस्था में दलितों का जीवन भेदभाव रहा है।

हिन्दू समाज में ऊँच–नीच, छोटा–बड़ा, गरीब–अमीर हमेशा से रहा है। धर्म ग्रंथों, पंडे–पुजारी, सन्त–महन्तों ने जातिवाद को फैलाया है, इसकी जड़े हिन्दू समाज में गहरे तक जाती है जिसे भोगता है दलित समाज......। दलित लेखकों ने अपने जीवन के जातीय–दंशों को और उनसे उपजी शोषण की विभीषिका को अभिव्यक्त किया है। जिससे जाति– व्यवस्था की अमानवीय विद्रूपता सामने आई है। आत्मकथा 'अपने–अपने पिंजरे' में मोहनदास नैमिशराय जी भी यही बताना चाह रहे हैं कि जाति कभी नहीं जाती। "हमारे स्कूल को बाहर के लोग अक्सर चमारों का स्कूल कहा करते थे। जैसे चमारों का नल, चमारों का नीम, चमारों की गली, चमारों की पंचायत आदि।"[7] सन् 1931 की जनगणना के अधीक्षक जे. एच. हटन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक भारत में जाति प्रथा में भारतीय जाति प्रथा के बारे में लिखा था कि "भारत में जाति व्यवस्था जितनी जटिल सुव्यवस्थित और रूढ़ है उसकी मिसाल विश्व के किसी भी भाग में कहीं भी नहीं मिलेगी। वस्तुतः जब हम गहराई से सोचते हैं तो यही पाते हैं कि यह भारत में ही मिलती है अन्यत्र नहीं।"[8] उच्च जाति का होने की ग्रन्थि सवर्ण समाज की मानवीयता को अन्दर ही अन्दर खोखला कर रही है। 'जूठन' में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने हिन्दू समाज की विकृतियों का पर्दाफाश किया है। जाति व्यवस्था ने दलितों को ऐसे घाव दिए हैं जो असहनीय है "अस्पृश्यता का ऐसा माहौल कि कुत्ते–बिल्ली, गाय भैंस को छूना बुरा नहीं था, लेकिन यदि चुहड़े को स्पर्श हो जाए तो पाप लग जाता था। सामाजिक स्तर पर इन्सानी दर्जा नहीं था। वे सिर्फ जरूरत की वस्तु थे। काम पूरा होते ही उपयोग खत्म, इस्तेमाल करो, दूर फेंको।"[9] दलितों पर होने वाले जुल्मों की शाखा गांव में अधिक रही है। दलितों की तबाही और समस्याओं का मूल कारण जाति ही रही है। 'मेरा बचपन मेरे कंधों पर' आत्मकथा में श्योराज सिंह बेचैन भी अपने हालात कुछ इस तरह ही बयान करते हैं–"जिन चमारों ने मवेशी उठाने का काम धन्धा छोड़ दिया था वे स्वयं को ऊँचे दर्जे का मानने लगे थे। जबकि माली हालत उनकी भी खराब थी। जाट– ब्राम्हणों में इस तरह का काम नहीं होता था वे ऊँची जाति के थे। दलित व्यवसाय बदल कर नई सम्भावनाएं तलाशने के पक्ष में थे। सवर्णों को दलित जाति के कार्यों का न अनुभव था न जरूरत बल्कि इसका आभास भी अपमानजनक लगता था।"[10]

दलित लेखकों की भांति दलित लेखिकाओं के साथ भी जातिगत भेदभाव हमेशा ही रहा है। 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा में सुशीला टाकभौरे कहती हैं कि "मैं देखती थी, सवर्ण घरों में स्कूल से लौटे बच्चों पर घर के बाहर ही पानी छिड़क दिया जाता था और पहने हुए कपड़े उतारकर उन्हें दूसरे कपड़े पहनने के लिए दिए जाते थे। हमारे ही सामने वे नाक–भौं सिकोड़कर नफरत से कहते थे– न जाने कौन–कौन सी जात के बच्चों के साथ बैठकर पढ़कर आते हैं। सबकी छुआछूत घर में लाते हैं।"[11] दलितोत्थान की चाहे कितनी भी बड़ी–बड़ी बातें की जाएं, किन्तु यह जाति का सच ज्यों का त्यों रहता है। 'दोहरा अभिशाप' भी इसी प्रकार की आत्मकथा है जहां जाति शब्द जुड़ा हुआ है। आत्मकथाकार बयान करती है कि– "सफाई कर्मचारियों से छुआछूत बरतते थे। उनके यहां कोई नहीं आता था न उनके बच्चे दूसरे बच्चों के साथ खेलते थे। दलित जाति के अलग–अलग रहकर अपने ही समाज में रहते थे। दलित जाति के पुरूष और औरतें सड़क बुहारने का पब्लिक लैट्रीन साफ करने का काम करती थीं। सवर्ण जाति के लोग इनसे छुआछूत रखते थे।"[12] जाति के कारण ही दलित समाज ऊपर उठने के लिए हमेशा से ही संघर्षरत रहा है। डॉ. धर्मवीर कुमार सिंह अपनी आत्मकथा 'दुख–सुख के सफर में' जाति भेदभाव को कुछ इस तरह बयान करते हैं–"तालाब में पशु लौटते थे, पंछी पंख भिगोते थे, परन्तु अछूतों को उस तालाब का पानी छूने तक की मनाही थी।"[13] दलितों को हमेशा उनके जातीय हीनता से दबा दिया जाता है तथा उनको जाति का ओछापन याद दिला दिया जाता है।

दलित को उसकी जाति के कारण हीनता का बोध होता है और स्वयं काफी अपमानित महसूस करता है। नैमिशराय जी कहते हैं कि "हम कहीं भी जायें, कितनी भी बड़ी कक्षा में पढ़ें, जातियां हमेशा पीछा नहीं छोड़ती। जहां भी हम जाते, वे भी बिना किसी रोक–टोक के आ पहुंचती थीं। बल्कि हमारे साथ–साथ चलती, उठती बैठती थीं। कभी–कभी तो सांप भी केंचुली त्याग देता है पर आदमी अपनी जाति को केंचुली नहीं छोड़ पाता। वह जीवन से मृत्यु तक उसी केंचुली के भीतर रहता है।"[14]

दलित आत्मकथाओं में जातिदंश सभी में लगभग एक जैसा ही रहा है। दलित आत्मकथाओं के साथ जातिगत दुर्व्यवहार किया गया। कदम–कदम पर दलित

जाति का होने का अहसास कराया जाता रहा। दलितों को जाति के नाम पर प्रताड़ित करना सवर्णों के लिए आम बात थी। एक आदमी स्वयं को कितना अपमानित महसूस करता है तब उसके साथ भेदभाव किया जाता है ये आत्मकथाकारों से बेहतर कौन जान सकता है। इनकी स्वयं की भोगी हुई पीड़ा है। जाति का ऐसा बहुरूपिया रूप देखकर दिल को ठेस पहुंचती है। जाति के रूप में दलित आज भी सवर्णों के जुल्मों का शिकार हो रहा है।

दलित समाज के लिए कभी भी शिक्षा का कोई प्रावधान नहीं रहा है। सवर्ण हमेशा से यही चाहते हैं कि दलित शिक्षा से दूर रहे और हमारी गुलामी करते रहे। शूद्र को शिक्षा ना मिले सारे शास्त्र इसी कोशिश में रहे हैं। दमित न पढ़े यह भावना आज भी लगातार जारी है। दलितों के लिए शिक्षा किसी मजाक से कम नहीं रही है। ओमप्रकाश वाल्मीकि 'जूठन' में अपनी पीड़ा व्यक्त करते हुए लिखते हैं– "जब मैं स्कूल में पढ़ा करता था मुझे स्कूल के कार्यक्रम से बाहर रखा जाता था। मुझे सांस्कृतिक कार्यक्रमों क्रियाकलापों से दूर रखा जाता था। ऐसे वक्त मैं सिर्फ किनारे खड़ा होकर दर्शक बना रहता था। स्कूल के वार्षिक उत्सव में जब नाटक आदि का पूर्वाभ्यास होता था, मेरी भी इच्छा होती थी कोई भूमिका मिले। लेकिन हमेशा दरवाजे के बाहर खड़ा रहना पड़ता था। दरवाजे के बाहर खड़े रहने की इस पीड़ा को तथाकथित देवताओं के वंशज नहीं समझ सकते।"[14] शिक्षा के मंदिर में एक शिक्षक का ऐसा व्यवहार देखकर मन बड़ा दुखी होता था पर मजबूरन कुछ भी नहीं कर पाते थे। श्यौराज सिंह बेचैन लिखते हैं कि–"स्कूल में जाने के बाद चोरी छिपे मरे हुए ढोर उठाने में शामिल रहता था। किन्तु वहां यह सब बहुत ही छिप–छिपाकर करना पड़ता था अन्यथा गांव में सवर्ण जाति के लड़के स्कूल में मेरा क्या हाल करते, कल्पनातीत था।"[15] दलित आत्मकथाकारों को शिक्षा के लिए बड़ी जद्दोजहद करनी पड़ती थी।

शिक्षक का व्यवहार दलितों के लिए शिक्षक की गरिमा के एकदम विपरीत रहा है। कोई दलित शिक्षा ग्रहण करने का विचार भी लाता था तो सवर्ण मानसिकता से ग्रस्त शिक्षक दलितों को विद्यालय की देहरी से ही वापिस कर देता था। सूरजपाल चौहान ने आत्मकथा 'तिरस्कृत' में शिक्षक के लिए लिखा है कि वह जाति का ओछापन किस तरह याद दिलाते रहते थे। एक दिन सूरजपाल की ओर संकेत करते हुए कहा था– "यदि देश के सारे चूहड़े–चमार पढ़–लिख गए तो गली मोहल्लों की सफाई और जूते बनाने का कार्य कौन करेगा।"[17]

इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि स्कूल का अध्यापक दलित को गली–मोहल्लों की सफाई और जूते बनाने के लिए अनपढ़ रखना चाहता है। इसी तरह आत्मकथा 'अपने–अपने पिंजरे' में जब पी.टी. इंस्ट्रक्टर स्कूल में यहीं मुआयना करते हैं तो लेखक और उनके दलित साथियों का अपमान करते हुए कहते हैं– "अबे तुमको पढ़ने के लिए कौन कहता है। बस जूते–चप्पल बनाओ और आराम से रहो। चले आते हैं ससुरे न जाने कहां–कहां से।"[18]

शिक्षकों को ऐसा घिनौना रूप देखकर शिक्षक नाम पर विचार करने की जरूरत लगती है। शिक्षक को गुरु की पदवी दी जाती है और उसी का ऐसा रूप देखने को मिलता है। दलित बस्तियों में शिक्षा का माहौल वैसे ही कम रहता है। अगर कोई पढ़ना चाहे तो दलित और सवर्ण उसकी टांग खींचने में लगे रहते हैं। यही सब डॉ. उमेश कुमार सिंह के साथ शिक्षा ग्रहण करने के दौरान हुआ था– "चुटिया और स्याही से सवर्ण छात्र पेशाब कर देते थे। शिक्षक उन्हें अधिक मारते, बात बात पर बुरी तरह से पीट डालते थे। दलित-छात्र अगर कभी शिकायत भी करे तो उनकी कौन सुनने वाला था।"[19] शिक्षा ग्रहण करने में भी दलितों को सवर्णों और शिक्षकों से दो चार होना ही पड़ता था।

डॉ. तुलसीराम द्वारा लिखित 'मुर्दहिया' अपशकुन से शिक्षा तक के सफर को वर्णित करती है। शिक्षा से कौनसा परिवर्तन हो सकता है इसका आदर्श उदाहरण 'मुर्दहिया' प्रस्तुत करता है। दलित होने के नाते सामाजिक बहिष्कार और एक आंख से अन्धा होने के कारण पारिवारिक उपेक्षा के शिकार तुलसीराम दोहरी मार झेलते हैं। ज्ञान और शिक्षा पाकर वे जिस मुकाम तक पहुंच चुके हैं जो उनके लिए बहुमूल्य है। हमारे देश की शिक्षा व्यवस्था निजीकरण के दौर से गुजर रही है और सरकारी नीतियां, प्राथमिक शिक्षा से उच्च शिक्षा तक नकारात्मक बनती जा रही है। 'मुर्दहिया' को पढ़ते हुए इसका एहसास हो जाता है कि हमारे देश में प्रतिभा को निखारने के लिए उचित शिक्षा तंत्र की आवश्यकता है। आत्मकथा में जाति बदलकर रहने का प्रकरण सामने आता है– "जातिगत यथार्थ के कारण बार–बार नए कमरे की तलाश में मैं दोहरा जीवन जी रहा था मैं विश्वविद्यालय में दलित होता था और शहर के कमरे में आते ही 'शर्मा जी' बन जाता था।"[20]

दलित आत्मकथाएं व्यक्तिगत होते हुए भी सामाजिक होती हैं। एक सामान्य व दलित बालक शिक्षा के मंदिर में अलग–अलग व्यवहार पाता है। दलित बालक शिक्षक के दो रूप देखता है एक सवर्ण के लिए दूसरा दलित के लिए। दलित अक्षर ज्ञान को हासिल करने में कदम–कदम पर अपमान का शिकार होता है। श्यौराज सिंह बेचैन हो या टाकभौरे या डॉ. उमेश कुमार सिंह। सभी की पीड़ा काफी हद तक एक सी लगती है। लगन, जुनून और सहन करने की भावना समान रही है।

डॉ. उमेश कुमार सिंह की आत्मकथा 'दुख–सुख के सफर में' दलित समाज की कथा रही है। इस आत्मकथा में दलित वर्ग, दलित समाज केन्द्र में रहा है दलित समाज की गरीबी हिन्दू समाज की देन रही है। आत्मकथा में आत्मकथाकार का बचपन, जन्म, बीमारी, समाज परिवेश और शिक्षा के अलावा कर्ज गरीबी आम दलित आत्मकथाओं से बिल्कुल अलग है। दलितों, पिछड़ों के लिए शिक्षा किसी मजाक से कम नहीं रही है। दलितों में शिक्षा का माहौल बिल्कुल भी नहीं होता। स्कूलों में भी जातिदंश बना रहता है। आत्मकथाकार ने भी जातिदंश को भोगा है आत्मकथा के कुछ अंश– "सवर्ण छात्र ठाकुर के यहां ठहरते हैं, दलित छात्र गंदी नाली के चबूतरे पर रहते हैं। पानी जब चाहे पी लेना संभव नहीं है। इन्हें पानी के लिए सवर्ण बच्चों का इंतजार करना पड़ता था।"[21] जयप्रकाश कर्दम लिखते हैं कि 'विषम परिस्थितियां

से जूझते हुए भी हमने क्या मुकाम हासिल किया है दलित आत्मकथाओं में यह बताना सही है बहुत से लोगों के लिए साथ–साथ दूसरों के लिए क्या किया है क्या दिया है इसका उल्लेख भी होना चाहिए।"[17]

शिक्षा में भी दलितों के साथ दुर्व्यवहार होता था। यहां भी सवर्ण हमेशा ही आगे रहते थे। दलित आत्मकथाओं की तुलना की बात करें तो सभी आत्मकथा लगभग एक जैसे ही रही है। 'दोहरा अभिशाप' आत्मकथा में आत्मकथाकार के साथ कम दुर्व्यवहार रहा है। समाज में भी दलित होने का दंश ज्यादा नहीं भुगतना पड़ा। यहीं स्कूल में भी शिक्षकों का व्यवहार ठीक ही रहा है। बल्कि दलित आत्मकथाकारों को जाति और शिक्षा के नाम पर सवर्ण समाज और शिक्षकों से दो चार होना ही पड़ा। लेखिक को वैसे तो अन्य दलित आत्मकथाकारों की तरह शिक्षकों से कोई कटु वचन सुनने और बिना वजह मार खाने के उदाहरण नहीं मिले। लेकिन शिक्षिका उनसे काम लेती थी जबकि अन्य विद्यार्थियों से कुछ नहीं कहती थी। कुछ भी करना होता तो लेखिका से ही करने को कहती। लेखिका को हमेशा इस बात का डर लगा। रहता था कि कहीं उसकी जाति का भेद न खुल जाए। यहां पर लेखिका को वैसा संघर्ष नहीं करना पड़ा जैसे बाकी दलित आत्मकथाकारों को करना पड़ा ।

अध्ययन का उद्देश्य

दलित आत्मकथाएं जितनी व्यक्तिगत दलन, शोषण, उत्पीड़न का परिचय करवाती है उतना ही दलित समाज की समस्याओं से भी रुबरु करवाती हैं जिसकी वास्तविकता से समाज अनभिज्ञ है। दलित आत्मकथाओं ने सवर्ण समाज व्यवस्था के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त किया है। मोहनदास नैमिशराय अपनी आत्मकथा की भूमिका में लिखते हैं:– "व्यक्ति हो या समाज उसे अपने हक, अधिकार स्वयं ही लेने होते हैं। बैसाखियों पर जीवन नहीं चलता। चलेगा भी तो कितने दिन....।"[18] दलित आत्मकथाओं में आत्मकथाकारों ने भोगे हुए यथार्थ, संघर्ष, जातिदंश, परिवेश समस्या, पारिवारिक व दाम्पत्य संबंध का दंश, आर्थिक सफलता के लिए प्रयास अपमान और शोषण का चित्रण प्रमुखता से किया है।

निष्कर्ष

उपरोक्त आत्मकथाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि भारतीय वर्ण व्यवस्था ने दलित जाति रूप में समाज के एक बड़े समुदाय को समस्त मानवीय, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा अधिकारों से हजारों वर्षों तक वंचित रखने का अमानवीय कार्य किया। शिक्षा पद्धति के विरुद्ध भी अपना आक्रोशपूर्ण विरोध दर्ज कराते हुए दलित समाज में शिक्षा के महत्व को रेखांकित किया है। अपने–अपने अनुभवों के आधार पर आत्मकथाकारों ने जाति, शिक्षा, रुढ़ि, अंधविश्वास और गलत रीति रिवाज पर गहरा आक्षेप किया है। दलित आत्मकथाकार समाज के सम्पूर्ण दलित समाज की समस्या को दर्शाते हैं लेकिन दलित महिलाओं की क्या स्थिति है? उसको उजागर करने में हिचकते है। जब इनको ये पता होता है कि एक दलित के साथ सवर्णों का व्यवहार कैसा होता है? तो ये बात तो बिल्कुल साफ है कि निचले तबके की स्त्री के साथ और भी ज्यादा अमानवीय व्यवहार होता होगा। डॉ. धर्मवीर अपनी आत्मकथा में स्त्री चेतना का वह रूप उजागर करते हैं जो दोनों महिला दलित लेखिकाओं के विपरीत जाता है। ये दलित विद्वान अंबेडकरी चेतना से सम्पन्न हैं लेकिन दलित महिला के दर्द, उत्पीड़न, पति सुख की अनुभूति से मुक्त रहा है। टाकभौरे जहां परिवार में पति से पाणिगत हक के लिए अकेली लड़ती है, वहीं धर्मवीर पत्नी के हक छीनने वाले साबित होते हैं। दलित लेखकों में धर्मवीर एकमात्र विवादास्पद आत्मकथाकार रहे है जो टाकभौरे के विपरीत हैं दूसरे छोर पर हैं। 'मेरी पत्नी और भेड़िया' में वे हर पाठ में पत्नी को दोषी, अपराधी और कटघरे में खड़ा करते हैं। वे स्वयं जज की भूमिका में पत्नी को दोषी करार देते हैं ऐसे में वे महिला विरोधी और टाकभौरे की तुलना में एक पक्षीय लगते हैं। अन्य दलित आत्मकथाओं महिला या पत्नी का जिक्र नहीं आता है। अधिकांश रचनाओं में जाति उत्पीड़न, उपेक्षा और भेदभाव के दंश होने से महिला चेतना का अभाव रहा है। बैसंत्री एक मात्र आत्मकथाकार है जिनकी महिला चेतना तुलनीय है लेकिन वे दूसरे स्तर की महिला है जो पति से मुक्ति चाहती है जबकि टाकभौरे पति के साथ रहकर लड़ती है। इस अर्थ में टाकभौरे का संघर्ष सामाजिक व दलित महिला चेतना के कई आयामों से ओत–प्रोत है। टाकभौरे न केवल धर्मवीर अपितु बैसंत्री से अधिक महिला चेतना से ओत–प्रोत रही हैं। यह रचना दलित महिलाओं में जीने का जज्बा, साथ ही चेतना भरती है तो 'मेरी पत्नी और भेड़िया' स्त्री विरोधी रचना के रूप में जानी जायेगी। मोहनदास नैमिशराय ने अपने अपने पिंजरे में महिलाओं के भोग्या रूप को ही चित्रित किया है उनकी चेतना नजर नहीं आती। 'दोहरा अभिशाप' 'शिकंजे का दर्द' आत्मकथा चूंकि इनको लिखने वाली महिलाएं हैं तो स्वाभाविक बात है कि महिला चेतना होगी। इन्होंने समाज के हर पहलू पर ध्यान दिया है जो सराहनीय है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 हंस मासिक पत्रिका, अप्रैल 2011 पृ.सं. 37
2 हंस त्रैमासिक पत्रिका, अगस्त 2004 पृ.सं. 106
3 मोहनदास नैमिशराय,अपने–अपने पिंजरे भाग–2 भूमिका पृ.सं. 11
4 ओमप्रकाश वाल्मीकि, जूठन पृ.सं. 15
5 श्यौराज सिंह बैचेन,मेरा बचपन मेरे कंधों पर पृ.सं. 11
6 दोहरा अभिशाप, कौसल्या बैसन्त्री पृ.सं. 27
7 अपने–अपने पिंजरे मोहनदास नैमिशराय पृ.सं. 22
8 भारत में जाति प्रथा जे. एच. हटन पृ.सं. 45
9 ओमप्रकाश वाल्मीकि, जूठन पृ.सं. 11–12
10 मेरा बचपन मेरे कंधों पर, श्यौराज सिंह बैचेन पृ.सं. 12
11 शिकंजे का दर्द सुशीला टाकभौरे पृ.सं. 19
12 दोहरा अभिशाप, कौसल्या बैसन्त्री पृ.सं. 31
13 डॉ. श्योराजसिंह बैचेन (एक दलित छात्र के जीवन का लेखा–जोखा) पुस्तकवार्ता पृ.सं. 48
14 अपने–अपने पिंजरे मोहनदास नैमिशराय पृ.सं. 51
15 ओमप्रकाश वाल्मीकि, जूठन पृ.सं. 35
16 हंस पत्रिका अप्रैल 2011 पृ.सं. 40
17 सूरजपाल चौहान, तिरस्कृत पृ.सं. 13
18 मोहनदास नैमिशराय, अपने–अपने पिंजरे पृ.सं. 78

ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-3* Issue-1* February- 2018
Innovation The Research Concept

19. दुख सुख के सफर में डॉ. उमेश कुमार सिंह पृ.सं. 54
20. मुर्दहिया, तुलसीराम पृ.सं. 41
21. डॉ. रमेशचन्द मीणा (एक दलित छात्र के जीवन का सच–लेख) पुस्तकवार्ता पृ.सं. 47–48
22. हंस पत्रिका अप्रैल 2011 पृ.सं. 37
23. मोहनदास नैमिशराय, अपने–अपने पिंजरे भाग–2 भूमिका